माननीय प्रकाश तातिया एवं आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्तिगण

श्रीमती सिया देवी

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

Cont. Case (Civil) No. 698 of 2010. Decided on 6th May, 2011.

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971—धारा 112—अवमान–खंडपीठ ने उसकी आरंभिक नियुक्ति की तिथि से पूरे वेतन के साथ स्थायी दर्जा प्रदान करने की याची की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था–यह संप्रेक्षित किया गया था कि चूँकि याची ने 26 वर्षों से अधिक की सेवा दी थी, वह स्थायी कर्मचारी का दर्जा पाने के लिए हकदार है–प्रश्नगत आदेश कहीं भी यह घोषणा नहीं करता है कि याची अपनी नियुक्ति की आरंभिक तिथि से नियमित कर्मचारी का वेतन पाने का हकदार नहीं होगी–अवमान याचिका में आगे कार्यवाही करने का कोई आधार नहीं। (पैराएँ 4 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s. Awnish Shankar, For the Petitioner; Mr. Faiz-ur-Rahman, For the Respondents.

आदेश

अवमान याचिका पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची की शिकायत यह है कि अपीलार्थी की नियुक्ति वर्ष 1981 में की गयी थी और उसको समेकित वेतन का भुगतान किया जा रहा था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अनेक मुकदमों के बाद, इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 23.10.2008 के आदेश के तहत आदेश दिया कि अपीलार्थी स्थायी कर्मचारी का लाभ पाने की हकदार है और समस्त आशय और प्रयोजन से वह स्थायी कर्मचारी के लाभ को पाने का हकदार होगी।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस आदेश के कारण अपीलार्थी अपनी आरंभिक नियुक्ति की तिथि से नियमित वेतन पाने का हकदार थी।

4. अवमानकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि अपीलार्थी को स्थायी कर्मचारी का दर्जा दिया गया था और दिनांक 6.3.2008 से दिनांक 30.3.2010 तक उसको स्थायी कर्मचारी को मिलने वाले वेतन का भुगतान किया गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि तत्पश्चात्, उसको स्थायी कर्मचारी के नियमित वेतन का भुगतान किया जा रहा है।

5. आगे निवेदन किया गया है कि दिनांक 23.10.2008 का आदेश कहीं भी यह घोषणा नहीं करता है कि याची उसकी आरंभिक नियुक्ति की तिथि से स्थायी कर्मचारी का नियमित वेतन पाने की हकदार होगी।

6. दिनांक 23.10.2008 के आदेश और पूर्व अवमान याचिका सं॰ 392 वर्ष 2009 में दिनांक 25.3.2010 को खंड पीठ द्वारा पारित आदेश और मामले के तथ्यों का परिशीलन करने के बाद, हमारा सुविचारित मत है कि उसकी आरंभिक नियुक्ति की तिथि से पूरे वेतन के साथ स्थायी दर्जा प्रदान करने की याची की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया गया है। यह संप्रेक्षित किया गया है कि चूँकि याची ने पहले ही 26 वर्षों से अधिक की सेवा दी हैं, अत:, वह स्थायी कर्मचारी का दर्जा पाने की हकदार है।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम इस अवमान याचिका के साथ आगे अग्रसर होने का कोई आधार नहीं पाते हैं। तद्नुसार, इस अवमान याचिका को निपटाया जाता है और नोटिसों को उन्मोचित किया जाता है।

8. किंतु, यदि किसी भी आधार पर याची अपने वेतन के लिए किसी भी अनुतोष की हकदार है, याची उस उपचार का लाभ ले सकती है यदि यह विधि के अधीन उपलब्ध है और यदि याची को कोई अधिकार है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

राम नारायण रमन

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2873 of 2007. Decided on 6th May, 2011.

सेवा विधि–दंड–नियम 834 एवं 853A—वेतन वृद्धि को रोके जाने का दंड अनिवार्य सेवानिवृत्ति तक बढ़ा दिया गया–याची की उपेक्षा के कारण चोरी का आरोप-याची द्वारा की गयी चोरी के लिए उसके विरुद्ध कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गयी अथवा कोई दांडिक कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी–नैतिक अधमता की परिधि के अंतर्गत आरोप सम्मिलित नहीं किया जा सकता है–एक वर्ष के लिए वेतनवृद्धि रोके जाने के साथ दो काले निशानों को अधिनिर्णीत किया गया था जिसे याची भुगत चुका है–अनिवार्य सेवानिवृत्ति अधिनिर्णीत करते हुए दंड को बढ़ाया जाना दोहरा परिसंकट है–इसके अतिरिक्त, चार वर्षों के अवसान के बाद द्वितीय कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था–यह अवधि युक्तियुक्त अवधि नहीं है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया गया। (पैराएँ 10 से 15)

निर्णयज विधि.–2001(1) PLJR 133; AIR 2008 SC 2862—Referred.

अधिवक्तागण.–Dr. S. N. Pathak, For the Petitioner; Mr. Allam, For the Respondents.

आदेश

याची पुलिस महानिरीक्षक-सह-महानिदेशक, झारखंड, राँची द्वारा पारित डी॰ ओ॰ सं॰ 537/06 के तहत दिनांक 21.12.2006 के आदेश को चुनौती देता है, जिसके द्वारा आरक्षी अधीक्षक, पद्मा हजारीबाग द्वारा दिनांक 27.5.2002 को याची को अधिनिर्णीत दंड के पूर्व आदेश को चार वर्षों के अवसान के बाद बढ़ा दिया गया है। आक्षेपित आदेश द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड अधिनिर्णीत किया गया है। दंड का पूर्व आदेश एक वर्ष की वेतन वृद्धि रोका जाना था जो दो काले चिन्हों के समतुल्य है।

2. याची जे॰ ए॰ पी॰, पद्मा, हजारीबाग में कांस्टेबल, डी॰ पी॰ सी॰ 50 के रूप में पदस्थापित था। दिनांक 13.1.2001 को, संतरी ड्यूटी पर होते हुए, याची को 12.30 बजे सोता हुआ पाया गया था। प्रासंगिक समय पर, कॉन्सटेबल सं॰ 132 नरेश कुमार का पाँच जिंदा कारतूस से भरे राइफल की मैगजिन संदेहास्पद परिस्थितियों में गायब पायी गयी थी। अभिकथन था कि चोरी याची की उपेक्षा के कारण हुई थी और तद्द्वारा उसे कर्तव्य की अवहेलना के लिए आरोपित किया गया था। यह आरोप-पत्र में उल्लिखित प्रथम आरोप है। दूसरा आरोप यह था कि नरेश कुमार ने याची को अपना पॉकेट का निरीक्षण कर देने को कहा जिसे उसने इनकार कर दिया और तीसरा आरोप यह था कि याची ने खोयी मैगजीन और कारतूसों को खोजने का प्रयास नहीं किया था।

3. आरोप-पत्र जारी करने के बाद, नियमित जाँच संचालित की गयी थी और उसे दो काले निशान के समतुल्य एक वर्ष के लिए वेतन वृद्धि रोके जाने का दंड अधिनिर्णीत किया गया था। याची ने अपील

नहीं किया और दंडादेश को भुगत लिया। दंड की अवधि बीत जाने के बाद, उसने अपनी प्रोन्नति के लिए उच्चतर अधिकारी के समय अभ्यावेदन दिया। डी॰ आई॰ जी॰ ने उसे प्रोन्नति देने के बजाय उसके दंड को बढ़ाने के लिए पुलिस महानिदेशक को अनुशंसित किया। परिणामस्वरुप, डी॰ आई॰ जी॰ (बजट) द्वारा दिनांक 4 सितंबर, 2004 का कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था कि उसे सेवा से क्यों नहीं बर्खास्त कर दिया जाए। याची द्वारा विस्तृत उत्तर दाखिल किया गया था किंतु दिनांक 21.12.2006 के आक्षेपित आदेश द्वारा याची को अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड दिया गया था।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, डॉ॰ एस॰ एन॰ पाठक ने तर्क किया है कि याची द्वारा पहले ही भुगत लिए गए प्रथम दंड के बाद द्वितीय दंड अधिनिर्णीत करने का याचीगण का कृत्य दोहरे दंड की कोटि में आता है जिसकी बने रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। लगभग चार वर्ष के अवसान के बाद दंड बढ़ाने के लिए कार्रवाई करने के लिए प्रत्यर्थीगण हकदार नहीं थे। यदि दंड बढ़ाया जाना था, इसे युक्तियुक्त समय के भीतर बढ़ाना था, न कि अपचारी द्वारा दंड भुगत लेने के बाद।

5. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने उनके तर्कों पर विवाद किया है एवं कहा है कि चूँकि महानिरीक्षक अथवा डी॰ आई॰ जी॰, एस॰ पी॰ हजारीबाग द्वारा पारित दंड के आदेश से अवगत नहीं थे, अत: दंड बढ़ाए जाने के लिए पहले कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी थी और केवल यह विलंब याची के अवचार की सीमा को न्यूनतम नहीं कर सकता था और इसलिए रिट अधिकारिता का प्रयोग करके दंड की वृद्धि के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

6. झारखंड पुलिस मैनुअल का नियम 853A(a) प्रावधानित करता है कि ''पुलिस महानिरीक्षक किसी मामले में फाइल मंगा सकता है यदि कोई अपील नहीं भी की गयी है और ऐसा आदेश पारित कर सकता है जिसे वह समुचित समझता है। पुलिस उपमहानिरीक्षक किसी फाइल को मंगा सकता है किंतु उसे इसपर अपनी अनुशंसा के साथ पुलिस महानिरीक्षक को उसके आदेश के लिए निर्दिष्ट करना चाहिए। उक्त कार्रवाई विभागीय कार्यवाही में अंतिम आदेश की तिथि से युक्तियुक्त समय के भीतर की जानी चाहिए।''

7. विद्वान अधिवक्ता ने **वी॰ एस॰ रेड्डी बनाम भारत संघ एवं अन्य और सदृश** मामलों, 2001 (1) PLJR 133, में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि जहाँ किसी अपचारी को उसको पहले अधिनिर्णीत किए गए दंड को भुगतने की अनुमति दी जाती है, तब समय के लंबे अवसान के बाद, पुनर्विलोकन प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को बने रहने नहीं दिया जा सकता है क्योंकि दंड का दूसरा आदेश एक ही आरोप के लिए दो बार दंड के अधिरोपण की कोटि में आता है।

8. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों को उद्धृत किया है जहाँ न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक पुनर्विलोकन के विस्तार के अंतर्गत आने वाले मामलों में भी, सामान्यत: अनुशासनिक प्राधिकारी अथवा अपीलीय प्राधिकारी को अधिरोपित दंड पर पुनर्विचार करने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए और केवल अपवादिक मामलों में मुकदमा को जल्द निपटाने के लिए न्यायालय समुचित सकारण आदेश पारित कर सकता है। अनुशासनिक कार्यवाही में न्यायालय के हस्तक्षेप की निंदा **मेघालय राज्य एवं अन्य बनाम मीकेन सिंह एन॰ मरक, AIR 2008 SC 2862,** में प्रकाशित मामले में एक अन्य निर्णय में की गयी है।

9. अधिवक्ताओं को सुनने के बाद और विद्वान अधिवक्ता द्वारा आदान-प्रदान किए गए अभिवचनों को विचार में लेने के बाद मैंने पुलिस मैनुअल के अनेक प्रावधानों का परीक्षण किया है। झारखंड पुलिस मैनुअल का नियम 824 दंड विहित करता है जो काले निशान अथवा वेतनवृद्धि का समपहरण और अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड सम्मिलित करता है।

नियम 834 काले निशान पर विचार करता है। त्वरित संदर्भ के लिए, नियम 834 (a) और (b) को नीचे उद्धृत किया जाता है:–

*"834. **काले निशान का अधिरोपण.**–(a) चूँकि समपहरण पेंशन को प्रभावित करता है, समुचित मामलों में इंसपेक्टर के रैंक और इसके नीचे के समस्त अधिकारियों और विभाग के समस्त मिनिस्ट्रीयल अधिकारियों को काला निशान अधिनिर्णीत किया जा सकता है। किसी एक अपराध के लिए एक काले निशान से अधिक अधिनिर्णीत नहीं किया जाएगा सिवाय जब नैतिक अधमता को युक्तियुक्त रूप से निष्कर्षित किया जा सकता है।*

(b) तीन काले निशान सामान्यतः समपहरण अथवा वेतनवृद्धि का रोका जाना होगा जिसे आदेश में विनिर्दिष्ट करना होगा और अवधि समाप्त हो जाने पर अधिकारी को उसके पूर्व हैसियत में पुनर्स्थापित कर दिया जाएगा। ऐसा समपहरण अथवा वेतन वृद्धि का रोका जाना किसी काले निशान का मूल्य नहीं रखेगा।"

10. पूर्वोक्त नियम के परिशीलन पर, स्पष्ट रूप से पता चलता है कि किसी एक अपराध के लिए एक काला चिन्ह अधिनिर्णीत किया जाएगा सिवाय जब नैतिक अधिमता को युक्तियुक्त रूप से निष्कर्षित किया जा सकता है और तीन काले निशान समपहरण और वेतनवृद्धि को रोके जाने में परिणत होंगे।

11. वर्तमान मामले में आरोप यह है कि अपचारी को कर्तव्य घंटों के दौरान सोता हुआ पाया गया था जिसका परिणाम किसी कॉंसटेबल के जिंदा कारतूसों और मैगजीन की चोरी में हुआ। किंतु याची द्वारा की गयी चोरी के लिए कोई प्राथमिकी नहीं है अथवा उसके विरुद्ध कोई दांडिक कार्यवाही आरंभ नहीं की गयी थी; अत: इसे नैतिक अधमता की परिधि के अंतर्गत सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।

12. याची को दो काला निशान और एक वेतन वृद्धि का रोका जाना अधिनिर्णीत किया गया था जिसे याची भुगत चुका था और नियम 834 (b) के अनुसार अवधि, जिसके लिए दंड का आदेश पारित किया गया था, के बाद वह अपनी पूर्वावस्था में पुनर्स्थापित किए जाने का हकदार था। इसके अतिरिक्त, नियम 834 का उप-खंड (b) प्रावधानित करता है कि एक वेतन वृद्धि के रोके जाने पर काला निशान प्रभावहीन हो जाएगा। किंतु वर्तमान मामले में, एक वर्ष के लिए वेतनवृद्धि रोके जाने के साथ दो काले निशानों को अधिनिर्णीत किया गया था। स्वीकृत रूप से, याची दंड भुगत चुका था और इसलिए अनिवार्य सेवानिवृत्ति के अधिनिर्णीत दंड के तौर पर पश्चातवर्ती दण्ड वृद्धि दोहरे परिसंकट के अलावा कुछ भी नहीं है।

13. याची ने अपनी मूल अवस्था में पुनर्स्थापित किए जाने का हकदार होने के बाद अभ्यावेदन दिया था। प्रत्यर्थीगण ने पूर्वोक्त नियम के खंड (b) में अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण करने के बजाय अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया और दंड का द्वितीय आदेश पारित किया। पुनर्विलोकन प्राधिकारी द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया न केवल नियमावली द्वारा अनपेक्षित थी बल्कि स्पष्टत: अवांछित थी और मनमाना एवं पूर्वोक्त नियमावली के अधिकारातीत प्रतीत होती है।

यह ऐसा मामला है जहाँ याची को वर्ष 2006 से अनिवार्य सेवानिवृत्ति के अध्यधीन किया गया है और, इसलिए, मेरे दृष्टिकोण में अनुशासनिक प्राधिकारी को मामला वापस भेजा जाना वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायोचित नहीं है।

14. मेरे मत में यह ऐसा मामला है जहाँ याची को पहले ही दंड के अध्यधीन किया जा चुका है और ऐसा पूरी जाँच करने के बाद किया गया था। याची ने दंड के आदेश को स्वीकार किया और दंड की अवधि बीतने के बाद वह प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का अथवा सेवावधि के दौरान उसका सम्यक् अधिमान दिए जाने का हकदार था। कारण बताओ बर्खास्तगी के लिए जारी किया गया था जो

अपचारी के कृत्य के साथ स्पष्टत: अनुपात में नहीं है। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ चुराए गए मैगजीन और कारतूस उसके कब्जे से बरामद किए गए थे अथवा ऐसा कोई अभिकथन नहीं था कि उसने वास्तविक अभियुक्त जिसने अपराध किया था, के साथ षड्यन्त्र किया था और, इसलिए, द्वितीय दंड अर्थात् अनिवार्य सेवानिवृत्ति अधिनिर्णीत किया जाना स्पष्ट रूप से अयुक्तियुक्त है और प्रशासनिक विधि के कसौटी पर यह न्यायिक अंतरात्मा को आघात पहुँचाने वाला मामला है। अत: वर्तमान रिट याचिका में हस्तक्षेप आवश्यक है क्योंकि याची वर्ष 2006 से सेवा से वंचित किया गया है और यदि मामला अनुशासनिक प्राधिकारी अथवा अपीलीय प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है, यह याची पर केवल प्रतिकूल प्रभाव कारित करेगा और मुकदमा को लंबा खींचेगा। स्वीकृत रूप से द्वितीय कारण बताओ चार वर्ष के बीत जाने के बाद जारी किया गया था और प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता द्वारा दिया गया एकमात्र स्पष्टीकरण यह है कि डी॰ आई॰ जी॰ अथवा आई॰ जी॰ दंड के आदेश से अवगत नहीं थे। इसे चार वर्षों के विलंब के लिए अच्छा स्पष्टीकरण नहीं माना जा सकता है। इस अवधि को युक्तियुक्त अवधि नहीं कहा जा सकता है और, इसलिए, आक्षेपित आदेश दूषित हो गया है।

15. ऊपर कही गयी बातों की दृष्टि में, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुतीकरण की तिथि से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर अपना कर्तव्य ग्रहण करने की अनुमति याची को दी जाएगी।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

बिमलदीप स्टील प्रा॰ लि॰, आदित्यपुर, जमशेदपुर

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

W. P. (C) No. 5798 of 2010. Decided on 18th May, 2011.

खनिज रियायत नियमावली, 1960—नियम 11 (3), 26 एवं 59—प्रत्यर्थी के पक्ष में खनन पट्टा प्रदान करने के लिए अनुशंसा को चुनौती–याची दर्शा नहीं सका था कि वह कैसे प्रत्यर्थी की तुलना में अधिक मेधावी है–याची द्वारा आवेदन दाखिल करने में एक दिन का विलंब उसके आवेदन को अस्वीकार करने का आधार बिल्कुल नहीं है–याची को गुणागुण पर सुना गया था–पुनरीक्षण प्राधिकारों ने पक्षों के मामलों पर अपने विवेक का इस्तेमाल किया–याची ने विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है–10,000/- रुपयों के व्यय के साथ याचिका खारिज।

(पैराएँ 7, 8, 10, 14, 15 एवं 16)

निर्णयज विधि.–2009(4) JCR 130 (Jhr)—Applied; (2010) 13 SCC 1—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Indrajit Sinha, N.K. Pasari, For the Petitioner; Mr. Md. M. Khan, For the Union of India; Mr. Anil Kumar Sinha, For the State; M/s K. Venugopal, Siddharth, Abhishek Sinha, For the Respondent no.7.

आदेश

अंतत: पक्षों को विस्तारपूर्वक सुना गया।

2. यह रिट याचिका राज्य सरकार के दिनांक 11.2.2008 के आदेश के विरुद्ध याची द्वारा दाखिल पुनरीक्षण को अस्वीकार करते हुए और प्रश्नगत क्षेत्र के ऊपर लौह अयस्क और मैंगनीज अयस्क के लिए

खनन पट्टा प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 7 (R. 7) द्वारा दाखिल आवेदन की अनुशंसा करते हुए पुनरीक्षण आवेदन फाइल सं॰ 06/10/2008-RC-1. में पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 28.10.2010 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है। याची ने R. 7 के पक्ष में उक्त खनन पट्टा प्रदान करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा प्रदान किए गए दिनांक 5.6.2008 के पूर्वानुमोदन एवं अनुशंसा को अपास्त करने के लिए भी प्रार्थना किया है। राज्य सरकार द्वारा की गयी अनुशंसा को अपास्त करने के लिए और अन्य रिट याचिका में पारित आदेशों से प्रभावित हुए बिना और झारखंड राज्य के भीतर पहले से ही स्थापित उद्योगों को प्राथमिकता देते हुए उक्त खनन पट्टा के लिए पक्षों द्वारा दिए गए समस्त आवेदनों पर पुनर्विचार करने के लिए इसको निर्देश देने के लिए अतिरिक्त प्रार्थना भी की गयी है।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री इंद्रजीत सिन्हा ने निम्नलिखित निवेदन किया है:–

टिप्पणी 'लेट अप्लीकैंट' जो याची के संबंध में तुलनात्मक चार्ट में की गयी है, ने उसके मामले पर प्रतिकूलता कारित किया है। R.-7 के आवेदन की अनुशंसा करना याची के आवेदन को अस्वीकार करने के बराबर है और इसलिए खनिज रियायत नियमावली, 1960 (संक्षेप में एम॰ सी॰ रुल्स) के नियम 26 के निबंधनानुसार याची को कारणों के बारे में संसूचित करना राज्य सरकार के लिए आवश्यक था जिसे नहीं किया गया है। खान मंत्रालय, भारत सरकार के दिनांक 24.6.2009 के परिपत्र के पैराग्राफ 8.18 में यह प्रावधानित किया गया है कि चूँकि पुनरीक्षण राज्य सरकार की अनुशंसा के विरुद्ध है, इसे अन्य आवेदक के मामले की अनुशंसा करते हुए कारणों के बारे में समस्त असफल आवेदकों को सूचित करना चाहिए। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पुनरीक्षण अस्वीकार करते हुए कारणों को नहीं बताया था। **ब्राहमी इम्पेक्स लिमिटेड 2009 (4) JCR 130 (Jhr.)** का निर्णय याची के लिए न्यायनिर्णीत (res-judicata) के रूप में प्रवर्तित नहीं होगा। एम॰ ओ॰ यू॰ के अर्थात् विगत प्रतिबद्धता के आधार पर R-7 के पक्ष में अनुशंसा दोषपूर्ण है। अत: प्रार्थना किए गए अनुतोषों को प्रदान किया जाए।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 1, 2, और 3 की ओर से उपस्थित, श्री खान, प्रत्यर्थी सं॰ 4, 5 और 6 के लिए उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं॰ 7 के लिए उपस्थित श्री के॰ वेणुगोपाल ने R-7 के पक्ष में किए गए आक्षेपित आदेश/अनुशंसाओं का समर्थन किया। निवेदन किया गया था कि R-7 के पक्ष में की गयी अनुशंसा कठोरतापूर्वक खान और खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 (एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ एक्ट) की धारा 11(3) के निबंधनानुसार है। इसे पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए जाने के बाद किया गया था। तुलनात्मक चार्ट में याची के मामले में टिप्पणी 'लेट एप्लीकैंट' ने याची पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला था बल्कि याची को राज्य सरकार द्वारा इसके आवेदन के गुणागुण पर सुनवाई का अवसर दिया गया था। खंडपीठ द्वारा अभिपुष्ट **ब्राहमी इंपेक्स (ऊपर)** के निर्णय की दृष्टि में याची को प्रश्नगत निर्णय लेने की प्रक्रिया को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह निवेदन भी किया गया था कि यह अनुशंसा का चरण है और न कि खनन पट्टा प्रदान करने का चरण जो अन्य आकस्मिकताओं पर निर्भर करता है। अतएव, रिट याचिका खारिज कर दी जाए।

5. अभिलेख से निम्नलिखित अवस्था सामने आती है।

राज्य सरकार ने मेघाताबुरु तालुक, करमपदा आरक्षित वन, जिला पश्चिमी सिंहभूम, झारखंड में 500 एकड़ क्षेत्र के ऊपर लौह अयस्क और मैंगनीज अयस्क के लिए खनन पट्टा प्रदान करने के लिए आवेदनों को आमंत्रित करते हुए एम॰ सी॰ नियमावली के नियम 59 के अधीन दिनांक 2.4.2007 को अधिसूचना जारी किया। R-7 ने अनुबंधित समय के भीतर आवेदन दिया जबकि याची द्वारा एक दिन का

विलंब किया गया था। किंतु ऐसे विलंब को माफ करते हुए याची सहित समस्त आवेदकों को राज्य सरकार द्वारा दिनांक 17.12.2007 को और तब दिनांक 18.1.2008 को सुनवाई के लिए बुलाया गया था। उनको सुनने और उनके तुलनात्मक गुणागुणों पर विचार करने के बाद राज्य सरकार ने तुलनात्मक चार्ट तैयार किया और खनन पट्टा प्रदान करने के लिए इसके अनुमोदन के लिए केंद्र सरकार को दिनांक 11.2.2008 को R-7 के आवेदन को अनुशंसित किया। केंद्र सरकार ने कतिपय स्पष्टीकरणों को इप्सित किया। तद्नुसार, राज्य सरकार ने आवेदकों के गुणावगुणों को पुनर्मूल्यांकित किया और अनुमोदन के लिए केन्द्र सरकार को R-7 का आवेदन पुनः अनुशंसित करते हुए दिनांक 22.5.2008 को एक अन्य तुलनात्मक चार्ट अग्रसारित किया। द्वितीय अनुशंसा के आधार पर, केंद्र सरकार ने दिनांक 5.6.2008 को R-7 के आवेदन को अनुमोदन प्रदान किया।

6. याची ने केवल राज्य सरकार द्वारा दिनांक 11.2.2008 को दी गयी प्रथम अनुशंसा को चुनौती देते हुए दिनांक 8.11.2008 को पुनरीक्षण याचिका दाखिल किया।

पुनरीक्षण आवेदन के कॉलम 9 और 12 का पठन निम्नलिखित है:-

*"9. यदि नहीं, विहित सीमा के भीतर, जैसा खनिज रियायत नियमावली, **1960** के नियम **54** के उप नियम **(1)** के परन्तुक में प्रावधानित किया गया है, इसे प्रस्तुत नहीं करने के कारण बताये जायें।*

आज तक हमें आदेश की संसूचना नहीं दी गयी है। हमने अन्य पक्ष को खानों की अनुशंसा के लिए पत्र की एक प्रति का प्रबंध किया है और तद्नुसार अब पुनरीक्षण आवेदन दाखिल कर रहे हैं।''

"12. पुनरीक्षण का आधार :

यहाँ पुनरीक्षण आवेदक माननीय खान मंत्रालय (भारत सरकार) के ध्यान में लाना चाहेंगे कि हमें प्लांट स्थापित करने और राज्य में लगभग 60 करोड़ रुपयों का विपुल निवेश करने के बाद भी खानों का आवंटन नहीं किया जा रहा है जबकि पक्षों, जिन्होंने राज्य सरकार के साथ काफी पहले एम० ओ० यू० हस्ताक्षरित किया है किंतु जिन्हें अभी भी झारखंड के औद्योगिक आधार पर आना है, को खानों का आवंटन किया गया है। लौह अयस्क लोहा एवं स्टील निर्माण में मुख्य कच्ची सामग्री है। उद्योग का जीवित रहना कच्ची सामग्री की पर्याप्त गुणवत्ता एवं मात्रा की अनुपलब्धता के कारण खतरे में पड़ गया है।''

7. पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पक्षों को सुनने और उनके परस्पर मामलों पर विचार करने के बाद दिनांक 28.10.2008 को पुनरीक्षण अस्वीकार कर दिया। इसने अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-राज्य सरकार ने एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ अधिनियम की धारा 11(3) के अधीन आवेदनों का मूल्यांकन किया था और केंद्र सरकार ने भी पूर्वानुमोदन प्रदान किया था। पुनरीक्षण आदेश से प्रतीत होता है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी ने पक्षों के परस्पर मामलों पर अपने विवेक का इस्तेमाल किया था। मेरे मत में, याची का प्रतिवाद कि पुनरीक्षण प्राधिकारी ने कारण नहीं बताया है, स्वीकार्य नहीं है।

8. यह भी स्पष्ट है कि याची द्वारा आवेदन दाखिल करने में हुआ एक दिन का विलंब इसके आवेदन को अस्वीकार करने का आधार बिल्कुल नहीं था। बल्कि यह प्रतीत होता है कि ऐसे विलंब को अनदेखा कर दिया गया था और राज्य सरकार, केंद्र सरकार और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा याची को उसके आवेदन के गुणावगुणों पर सुना गया था। अतः, यह पूर्णतः गलत है कि याची के आवेदन को अस्वीकार करने के लिए टिप्पणी 'लेट एप्लीकैंट' को अधिमान दिया गया था।

9. याची के अनुसार, R-7 के पक्ष में की गयी अनुशंसा याची के आवेदन को अस्वीकार करने के बराबर है और इसलिए उसके कारणों को इसे संसूचित किया ही जाना चाहिए था।

10. एम॰ सी॰ नियमावली का नियम 26 खनन पट्टा प्रदान करने से इनकार करने के कारणों को संसूचित किया जाना प्रावधानित करता है। वर्तमान मामले में, वह चरण अभी नहीं आया है। यह R-7 के पक्ष में मंजूरी की अनुशंसा प्रदान किए जाने का चरण है। R-7 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि अनेक आकस्मिकताएँ उद्भूत हो सकती है जो R-7 के पक्ष में खनन पट्टा प्रदान किए जाने को रोक सकती है। केंद्र सरकार इसे R-7 को प्रदान करने से इनकार कर सकती है यदि किसी अन्य आवेदक को बेहतर पाया जाता है अथवा यदि यह पाया जाता है कि अधिनियम और नियमावली की अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं किया गया है। तब R-7 के पक्ष में पट्टा प्रदान किया जाना वन संरक्षण अधिनियम, पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम के अधीन अनेक अनुज्ञाओं और सांविधिक अनुमोदनों के अध्यधीन है। R-7 स्वयं अपने आवेदन के साथ अग्रसर होना नहीं चाह सकता है, आदि, आदि।

11. याची द्वारा विश्वास किया गया केंद्र सरकार का दिनांक 24.6.2009 का परिपत्र केवल यह अनुध्यात करता है कि चुँकि राज्य सरकार की अनुशंसा के विरुद्ध पुनरीक्षण दाखिल किया जा सकता है, अत: असफल आवेदकों को उन कारणों के बारे में सूचित किया जाना चाहिए कि क्यों अन्य आवेदक की अनुशंसा की गयी है। उक्त परिपत्र याची का सहायक नहीं है। प्रथमत:, प्रतीत होता है कि याची को कारण की जानकारी थी। द्वितीयत:, याची को राज्य सरकार, केंद्र सरकार और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा सुनवाई का अवसर दिया गया था। इसके अतिरिक्त, उक्त परिपत्र दिनांक 24.6.2009 को अर्थात् दिनांक 11.2.2008 को राज्य सरकार द्वारा की गयी अनुशंसा के काफी बाद जारी की गयी थी। अत:, याची किसी भी प्रतिकूलता से पीड़ित बिल्कुल नहीं हुआ है।

12. तुलना एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ अधिनियम की धारा 11(3) के निबंधानुसार कठोरतापूर्वक की गयी है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"11(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट मामलें निम्नलिखित हैं:–

(a) वीक्षण संक्रियाओं पूर्वेक्षण संक्रियाओं, अथवा खनन संक्रियाओं, जैसा भी मामला हो, में आवेदक को कोई विशेष ज्ञान अथवा अनुभव;

(b) आवेदक के वित्तीय स्रोत/संसाधन;

(c) आवेदक द्वारा नियोजित अथवा नियोजित किए जाने वाले टेक्नीकल स्टॉफ की प्रकृति और गुणवत्ता;

(d) निवेश जिसे खानों और खनिजों पर आधारित उद्योगों में करने के लिए आवेदक प्रस्ताव देता है;

(e) ऐसे अन्य मामले जिन्हें विहित किया जा सकता है।''

13. तुलनात्मक चार्ट में, यह प्रकट है कि R-7 प्रौद्योगिक, निवेश, अनुभव आदि में याची की तुलना में अधिक मेधावी है। R-7 के साथ एम॰ ओ॰ यू॰ केवल एक, न कि एकमात्र, मापदंड है। याची दर्शा नहीं सका था कि वह उक्त मामलों में R-7 की तुलना में अधिक मेधावी कैसे है। याची का मामला यह है कि उसने विपुल निवेश करने के बाद झारखंड में पहले ही उद्योग स्थापित कर लिया है और इसलिए R-7 जो अभी भी निवेश करने का प्रस्ताव दे रहा है, की तुलना में उसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए थी।

ऐसे प्रतिवाद को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। दोनों पक्षों द्वारा विश्वास किया गया **संदूर मैंगनीज एण्ड आयरन ओर्स लि॰, (2010)13 SCC 1,** का निर्णय याची की मदद नहीं करता है बल्कि यह आर॰ 7 के प्रतिवाद का समर्थन करता है। प्रासंगिक अंश का पठन निम्नलिखित है:–

"76. ..... धारा 11(3)(d) ''निवेश जिसे खानों में और खनिजों पर आधारित उद्योग में करने का प्रस्ताव आवेदक देता है'' ऐसे मामलों में से एक के रूप में विनिर्दिष्ट करता है और सरल व्याख्या पर यह स्पष्ट है कि केवल प्रस्तावित निवेश ही प्रासंगिक कारक है। यदि विधान मंडल का आशय यह था कि यह विगत निवेशों को भी सम्मिलित करे, शब्द ''प्रस्तावित'' का प्रयोग फालतू है जैसा मामला कभी नहीं हो सकता था.....''

"80. ..... जैसा सही प्रकार से इंगित किया गया है, राज्य सरकार को एम० एम० डी० आर० अधिनियम के अधीन किसी व्यक्ति के प्रति वचनबद्धता करने का प्राधिकार नहीं है कि किसी प्रोजेक्ट में किसी व्यक्ति द्वारा निवेश किए जाने की स्थिति में भविष्य में वह उसे खनन पट्टा प्रदान करेगा। यह उपधारित करते हुए कि राज्य सरकार ने ऐसा कोई प्रतिबद्धता व्यक्त किया था, असंगत रवैया अख्तियार करना और किसी क्षेत्र विशेष को अधिसूचित करने के लिए अग्रसर होना उसके लिए संभव नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त, क्षेत्र अधिसूचित करके राज्य सरकार निश्चय ही तत्पश्चात अन्य आवेदकों को बाहर निकालकर अभिकथित प्रतिबद्धता का सम्मान नहीं कर सकती थी भले ही मेधा/मापदंड पर वे अधिक सुयोग्य हों जैसा धारा 11 (3) में प्रावधानित किया गया है।''

"82. उक्त सुनिश्चित विधिक अवस्था के परिशीलन से, यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार एम० एम० डी० आर० अधिनियम और एम० सी० नियमावली में उल्लिखित अनुचिंतनों के अतिरिक्त किसी अन्य अनुचिंतन को ध्यान में लेते हुए खनन पट्टा प्रदान नहीं कर सकती है। इन परिस्थितियों में, कोई बाह्य अनुचिंतन जैसे जिंदल और कल्याणी, जो पहले ही स्टील प्लांट स्थापित कर चुके हैं, के प्रति राज्य सरकार द्वारा की गयी विगत प्रतिबद्धता खनन पट्टा प्रदान करते हुए राज्य सरकार द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है और उसे अधिनियम एवं नियमावली का पालन करना ही होगा।''

14. इसके अतिरिक्त याची का मामला **ब्राहमी इंपेक्स (ऊपर)** के मामले द्वारा पूरी तरह आच्छादित है। याची का प्रतिवाद कि उसका मामला उस मामले द्वारा आच्छादित नहीं है, तंग करने वाला है। वही निर्णय लेने की प्रक्रिया, जिसमें R-7 के पक्ष में अनुशंसा की गयी है, उस मामले में अन्य बातों के साथ साथ उस आधार पर चुनौती के अधीन था कि मुकदमा के लंबित रहने को गुणागुण पर विचार नहीं करने के लिए अधिमान दिया गया था जबकि वर्तमान मामले में, याची के अनुसार आवेदन देर से दाखिल किए जाने के कारण याची के मामले पर विचार नहीं किया गया था। दोनों मामलों में, प्रत्यर्थी राज्य का दृष्टिकोण यह था/है कि जब केंद्र सरकार ने कतिपय स्पष्टीकरणों को इप्सित किया, आवेदनों को पुनर्मूल्यांकन किया गया था। दूसरे शब्दों में, गलती, यदि हुई थी, को सुधारा गया था। दोनों मामलों में, यह दावा किया गया था/है कि निर्णय के लिए कारणों को नहीं बताए जाने के कारण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है। अन्य बातों के साथ साथ उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि **ब्राहमी इंपेक्स** की विश्वसनीयता पर विचार किया गया था। ऐसी ही अवस्था इस मामले में भी है क्योंकि याची की विश्वसनीयता पर विचार किया गया था जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है **(ब्राहमी इंपेक्स (ऊपर)** के पैराग्राफों 10, 11, 17, 19, 20, 21 और 22 को देखा जा सकता है।) अत:, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामला पूरी तरह **ब्राहमी इंपेक्स (ऊपर)** के निर्णय द्वारा आच्छादित है जिसे एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 369 वर्ष 2009 में खंड पीठ द्वारा दिनांक 22.5.2010 को अभिपुष्ट भी किया गया था।

15. मामले से अलग होने के पहले, मैं यह संप्रेक्षित करने के लिए मजबूर हूँ कि यद्यपि **ब्राहमी इंपेक्स (ऊपर)** का उक्त निर्णय और आदेश पूरी तरह याची के मामले को आच्छादित करता था, फिर भी, इस रिट याचिका को दिनांक 22.11.2010 को दाखिल किया गया था। आगे परेशान करने वाली बात यह है कि उसी अधिवक्ता के माध्यम से इसे दाखिल किया गया था। या तो याची को गलत परामर्श दिया गया था अथवा उसने विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने का प्रयास किया है। वर्तमान परिदृश्य में, जब हजारो लोग न्यायालय में अपनी बारी आने की प्रतीक्षा में है, ऐसे मुकदमों की निंदा होनी चाहिए।

16. परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका 25,000/- (पच्चीस हजार रुपये मात्र) के प्रतीकात्मक खर्च के साथ खारिज की जाती है जिसे याची को सीनियर सिटिजन होम, बरियातू रोड, राँची के पास चार सप्ताहों के भीतर जमा करना होगा।

माननीय प्रकाश तातिया एवं आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्तिगण

हेमेंद्र प्रताप देहाती

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 4663 of 2009. Decided on 6th May, 2011.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—पी॰ आई॰ एल॰–पलामू डिविजन में गंभीर रूप से प्रभावित सूखा क्षेत्र में बांध का निर्माण–बांध के निर्माण की योजना वर्ष 1974 में बनायी गयी थी–बांध/बराज के निर्माण के लिए पूरी निधि देने पर भारत सरकार पहले ही सहमत हो चुकी है–किसी विलंब के बिना सर्वेक्षण कार्य तुरन्त आरंभ किया जा सकता है–काम करने के सुस्त तरीके के चलते पलामू डिविजन के लोग अत्यन्त पीड़ित है–प्रत्यर्थीगण को किसी विलंब के बिना सर्वे आरंभ करने का निर्देश दिया गया–प्रत्यर्थीगण को सकारात्मक कार्रवाई करनी चाहिए।

(पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tiwari, For the Petitioner; JC to A.G., For the Respondent-State; Mr. Mokhtar Khan, For the Union of India.

आदेश

पलामू डिविजन जो गंभीर रूप से प्रभावित सूखा क्षेत्र है, के लोगों की शिकायत के लिए बहुत पहले दिनांक 9 अक्टूबर, 2009 को जनहित याचिका दाखिल की गयी है। स्वयं सरकार ने बारीडीह में कन्हार नदी के किनारे बांध का निर्माण करने का फैसला किया था। याचिका में किए गए प्रकथन के अनुसार, बांध बनाने की योजना वर्ष 1974 में बनायी गयी थी। उक्त प्रयोजन के लिए विशेषत: एक डिविजन गठित किया गया था और वर्ष 2010 तक विशेष डिविजन में नियुक्त अधिकारीगण और कर्मचारीगण को वेतन का भुगतान करना छोड़कर कुछ भी नहीं किया गया है। याची द्वारा इस रिट याचिका को दाखिल किए जाने तक उन्नीस करोड़ रुपयों से अधिक खर्च किया जा चुका था और आज वर्ष 2011 में अर्थात् 36 वर्षों से अधिक के बाद हमें कहा गया है कि राज्य सरकार ने बांध का निर्माण करने का फैसला किया है किंतु उसके लिए छत्तीसगढ़ राज्य की सहमति भी आवश्यक है। अत: यह स्पष्ट है कि विगत 36 वर्षों तक प्रत्यर्थी को ज्ञात ही नहीं था कि क्या करना है, इसे कैसे किया जाए की बात ही दूर। रिट याचिका में किए गए प्रकथनों से प्रकट होता है कि भारत संघ बांध अथवा बराज जैसा भी मामला हो, के निर्माण के लिए पूरी निधि देने के लिए पहले ही सहमत हो चुका था। आज भी, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने और जल संसाधन बोर्ड के माध्यम से भारत संघ के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने भी स्वीकार किया कि सूखे के समस्या के समाधान के लिए साइट पर बांध के निर्माण की आवश्यकता है और 36 वर्षों में वे ऐसे किसी प्रस्ताव के साथ सामने नहीं आए हैं कि बांध अथवा बराज का निर्माण व्यवहार्य नहीं होगा अथवा जनहित में नहीं होगा। यह स्पष्टत: प्रदर्शित किया गया है कि सभी पक्षों अर्थात् झारखंड राज्य और भारत संघ के जल संसाधन विभाग के माध्यम से भारत संघ द्वारा पलामू डिविजन के

लोगों की जरूरत को पहले ही स्वीकार किया जा चुका है और कल अर्थात् दिनांक 5 मई, 2011 को इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत रिपोर्ट की दृष्टि में छत्तीसगढ़ और झारखंड के अभियंताओं ने संप्रेक्षित किया कि अंतिम निर्णय पर पहुँचने से पहले कुछ सर्वेक्षण की आवश्यकता है। पूरक प्रति शपथ पत्र के पैरा-5 में यह कथन किया गया है कि विस्तृत सर्वेक्षण और डूबने वाले क्षेत्र के सत्यापन के लिए तीन गैर-मानसून माह लगेंगे और इसलिए, बैठक के अनुसार यह सर्वेक्षण मध्य दिसंबर, 2011 तक ही पूरा किया जा सकता है। यदि 36 वर्षों में अथवा कम से कम याची द्वारा इस याचिका को दाखिल किए जाने के बाद पूर्व अवसरों पर दिमाग का इस्तेमाल किया गया होता, बांध/बराज के निर्माण में सारवान प्रगति हो सकती थी। सर्वे और डूबने वाले क्षेत्र के सत्यापन के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा इप्सित कुल अवधि केवल तीन माह है, किंतु तथ्यों और परिस्थितियों में, जिसे हमने ऊपर ध्यान में लिया है, किसी विवरण को दिए बिना सिद्ध किया गया है, और स्पष्टत: प्रदर्शित करता है कि यह काम किसी विलंब के बिना तत्काल आरंभ किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, जब किसी बड़े क्षेत्र का सर्वेक्षण किया जाना है और यह विवाद में नहीं है कि सर्वेक्षण के अधीन अधिकतर क्षेत्र अथवा कुछ क्षेत्र सूखा-प्रभावित क्षेत्र होंगे और यह भी विवाद में नहीं है कि यह ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ लगातार बारिश होती है अथवा इस प्रकार की समस्या सृजित कर सकती है जो संपूर्ण सर्वेक्षण को बाधित करे। इप्सित किए गए सर्वेक्षण को तुरन्त संचालित किया जा सकता है और उनको क्षेत्र का आवंटन करके अनेक अभियंताओं की मदद से शुरू किया जा सकता है और सर्वेक्षण के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा इप्सित अधिकतम अवधि तीन माह है और तब, इसे मानसून शुरू होने के पहले ही दो माह में पूरा भी किया जा सकता है। यदि इसे पूरा नहीं भी किया जा सकता है, तब भी सर्वेक्षण का सारवान/मुख्य भाग मानसून शुरू होने के पहले भी पूरा किया जा सकता है।

2. हम यह संप्रेक्षित करने के लिए मजबूर हैं कि इस मामले में कोई विवाद नहीं है जैसा इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित वर्तमान समस्त अधिवक्ताओं द्वारा स्वीकार किया गया है, और फिर भी काम करने के सुस्त तरीके के चलते पलामू डिविजन के लोग गंभीर रूप से पीड़ित हैं जो यह देखते हुए झारखंड राज्य और जल संसाधन विभाग के गवर्नेंस के प्रति गंभीर प्रश्न उत्पन्न करता है क्योंकि दोनों बांध/बराज का निर्माण करना चाहते हैं किंतु प्रतीत होता है कि उन्हें यह भी ज्ञात नहीं है कि काम कैसे शुरू किया जाए।

3. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम प्रत्यर्थीगण को सर्वेक्षण विलंब के बिना तत्काल शुरू करने का, जैसा उनके द्वारा प्रति शपथ पत्र में प्रस्तावित किया गया है, और दिनांक 19 मई, 2011 तक की गयी सकारात्मक कार्रवाई रिपोर्ट कि वे कैसे अग्रसर होंगे प्रस्तुत करने का निर्देश देते हैं। हम इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं कि सर्वेक्षण और डूबने वाले क्षेत्र के सत्यापन जैसे मामलों में कुछ रुकावटें आ सकती हैं किंतु रुकावटें तभी आएँगी जब प्रोजेक्ट पर काम शुरू किया जाए। अत: हम प्रत्यर्थीगण से सकारात्मक कार्रवाई की अपेक्षा करते हैं जो भारत संघ के जल संसाधन विभाग के अधिकारियों सहित प्रत्यर्थी भारत संघ के अधिकारियों के साथ और छत्तीसगढ़ के अधिकारियों की मदद से मामले को हाथ में ले सकते हैं।

4. याची की कीमत पर, हम संप्रेक्षित करेंगे कि ऐसे मामलों में 36 वर्षों के विलंब को माफ नहीं किया जा सकता है किंतु लोग पीड़ित है और उनकी पीड़ा को तब तक घटाया नहीं जा सकता है जब तक कि न्यायालय द्वारा काम का पूरा और प्रभावकारी पर्यवेक्षण नहीं किया जाए और जहाँ तक काम की प्रगति का संबंध है इसे केवल प्रत्यर्थीगण के हाथ में नहीं छोड़ा जाए और जहाँ तक क्रियान्वयन का संबंध है, यह प्रत्यर्थीगण का काम है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि दिनांक 14 मार्च, 2011 को इस न्यायालय की खंडपीठ ने इस तथ्य को ध्यान में लिया कि दोनों राज्यों अर्थात् झारखंड राज्य

और छत्तीसगढ़ राज्य के सचिवों की बैठक दिनांक 5 और 10 अप्रैल, 2011 को होनी थी। कुछ भी नहीं कहा गया है कि वस्तुत: ऐसी बैठक हुई या नहीं। यह प्रतीत होता है कि उक्त तिथियों पर दोनों राज्यों के सचिवों की बैठक नहीं बुलायी गयी थी। किंतु, हम झारखंड राज्य के सचिवों को यह देखने का निर्देश देते हैं कि छत्तीसगढ़ के संबंधित सचिवों के साथ बैठक दिनांक 19 मई, 2011 के पहले कर ली जाए और दिनांक 19 मई, 2011 को अथवा इसके पहले बैठक के परिणाम को इस न्यायालय के समक्ष दाखिल किया जाए।

5. जल संसाधन विभाग के माध्यम से प्रत्यर्थी भारत संघ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि निर्णय लेने के लिए कुछ तकनीकी सूचनाओं और विवरणों की आवश्यकता होगी। हमारा दृष्टिकोण है कि यह प्रोजेक्ट के क्रियान्वयन का अभिन्न अंग है और यह देखना न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि बांध/बराज के निर्माण के लिए सकारात्मक कदमों को उठाने के लिए क्या-क्या जरुरी है और हम इसे स्पष्ट करते हैं कि इस प्रोजेक्ट के पक्षों, जो झारखण्ड राज्य और छत्तीसगढ़ राज्य और भारत संघ और जल संसाधन विभाग को सम्मिलित करते हैं, में से प्रत्येक की हर आवश्यकता के लिए वे स्वयं बांध/बराज के निर्माण के प्रयोजन के लिए अंतिम निर्णय लेने के लिए अपेक्षित सूचना प्राप्त करने और इन्हें एक-दूसरे को देने के लिए बाध्य हैं और इसलिए इस न्यायालय के समक्ष किसी भी पक्ष को यह कहने की अनुमति नहीं है कि कौन सी सूचना अपेक्षित है और उस प्रयोजन के लिए उनको सूचना देने का निर्देश देते हुए इस न्यायालय द्वारा पृथक आदेशों को पारित किया जाए। इस प्रोजेक्ट में अंतर्ग्रस्त प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपेक्षित विवरण, सूचना, तकनीकी समर्थन को इप्सित, प्राप्त और प्रदान करे, और तब अग्रसर हो।

इस मामले को दिनांक 19 मई, 2011 को प्रस्तुत किया जाए।

इस आदेश की प्रति को पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को आज ही दी जाए।

माननीय एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति

चंचल कुमार गंगोपाध्याय एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 482 of 2002. Decided on 2nd May, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 245—घर बेचने के लिए करार–घर बेचने से इनकार किया गया और अग्रिम राशि वापस नहीं की गयी–उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति–परिवाद याचिका केवल सिविल दायित्व का मामला बनाती है–पक्षों के बीच केवल संविदा का भंग हुआ है–मात्र इसलिए कि गृह संपत्ति बेचने का करार था जिस करार को पूरा नहीं किया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई दांडिक अपराध किया गया था–दांडिक कार्यवाही को संपोषित नहीं किया जा सकता है। (पैराएँ 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–(2005) 10 SCC 336; (2005) 13 SCC 699—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s P. Chatterjee, A.K. Das, For the Petitioners; A.P.P., For the State; None, For the O.P. No.2.

निर्णय

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। बार-बार बुलाए जाने पर भी इस मामले में विपक्षी पक्षकार उपस्थित नहीं हुआ है।

2. परिवादी नंदिनी मोदक ने याचीगण चंचल कुमार गंगोपाध्याय, तृप्ति कुमार बोस और प्रभात कुमार गंगोपाध्याय के विरुद्ध सी॰ पी॰ केस सं॰ 284 वर्ष 2000 वाली परिवाद याचिका को दाखिल किया था जिसमें अभिकथन किया गया था कि दोनों पक्षों के बीच घर बेचने के लिए करार हुआ था जिसके लिए याचीगण को 10,000/- रुपयों की अग्रिम राशि भी दी गयी थी। आगे अभिकथन किया गया है कि शेष प्रतिफल के लिए बैंक ड्राफ्ट बनवाने के क्रम में परिवादी ने 4000/- रुपयों का अतिरिक्त नुकसान उपगत किया था, किंतु अभियुक्तगण ने परिवादी को घर बेचने से इनकार कर दिया और अग्रिम राशि भी वापस लौटायी नहीं गयी थी। उक्त परिवाद पर, संज्ञान लिया गया था और सी॰ पी॰ सं॰ 284 वर्ष 2000 में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 22.8.2002 के आक्षेपित आदेश द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 245 (i) के अधीन दाखिल उन्मोचन आवेदन को भी अस्वीकार कर दिया गया था। अतः यह पुनरीक्षण दाखिल किया गया है।

3. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि परिवाद याचिका में कथित तथ्यों से याचीगण के विरुद्ध कोई दांडिक अपराध नहीं बनता है, क्योंकि पक्षों के बीच का विवाद सिविल प्रकृति का है, किंतु याचीगण को झूठे रूप से और असद्भावपूर्वक दांडिक मामले में खींचा गया है। विद्वान अधिवक्ता ने **उमा शंकर गोपालिका बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (2005)10 SCC 336** और **मुरारी लाल गुप्ता बनाम गोपी सिंह, (2005)13 SCC 699,** मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि संविदा का प्रत्येक भंग छल के अपराध को उद्भूत तब तक नहीं करेगा जबतक आरंभ से ही कोई प्रवंचना नहीं की जाती है। उक्त आधार पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्तगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही अभिखंडित कर दी गयी है।

4. तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि परिवाद मामला में कथित तथ्य केवल सिविल दायित्व का मामला बनाते हैं यद्यपि घर बेचने के लिए करार हुआ था और अभिकथित रूप से कुछ धन भी बतौर अग्रिम दिया गया था। तद्नुसार विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि परिवाद याचिका में किए गए अभिकथनों से अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है और आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है जिसमें पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप किया जाए।

6. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि परिवाद याचिका में किए गए अभिकथन, यदि उन्हें संपूर्णता में स्वीकार किया भी जाए, केवल सिविल दायित्व का मामला बनाते हैं क्योंकि पक्षों के बीच केवल संविदा का भंग हुआ है और याचीगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। मात्र इसलिए कि गृह संपत्ति बेचने का करार हुआ था, जिस करार को पूरा नहीं किया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचीगण द्वारा कोई दांडिक अपराध किया गया था और इस प्रकार, याचीगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही संपोषित नहीं की जा सकती है।

7. तद्नुसार, यह पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और सी॰ पी॰ केस सं॰ 284 वर्ष 2000 के तहत अवर न्यायालय के याचीगण के विरुद्ध लंबित संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

माननीय प्रकाश तातिया एवं आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्तिगण

सरुला मुंडा

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Criminal Appeal (D.B.) No. 94 of 1992. Decided on 10th May, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–अपीलार्थी ने दंडादेश की संपूर्ण अवधि भुगत लिया है और तत्पश्चात् उसे निर्मुक्त किया गया था–किंतु गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय के आदेश की दृष्टि में अपीलार्थी को पुनः जेल में बन्द कर दिया गया है–अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त करना होगा। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–None, For the Appellant; M/s S. N. Rajgarhia, M.B. Lal, For the Respondent.

आदेश

यह दांडिक अपील (डी॰ बी॰) सत्र केस सं॰ 225 वर्ष 1986 में दिनांक 31 मार्च, 1992 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है क्योंकि अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध करने के लिए दोषसिद्ध किया गया था और कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. अपील को दिनांक 3 जुलाई, 1992 को ग्रहण किया गया था। अपीलार्थी के आवेदन पर, उसे चतुर्थ अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची के संतोषानुसार समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ 5,000/- रुपया का जमानत बंध पत्र प्रस्तुत करने पर जमानत पर निर्मुक्त करने का आदेश दिया गया था।

3. जब दिनांक 9 मई, 2010 को मामला सुनवाई के लिए बुलाया गया था, कोई भी उपस्थित नहीं हुआ और यह ध्यान में लिया गया था कि अपीलार्थी को दिनांक 3 मई, 1993 के आदेश के तहत जमानत पर निर्मुक्त कर दिया गया था। अतः, अपीलार्थी की गिरफ्तारी सुनिश्चित करने के लिए आदेश दिया गया था।

4. विचारण न्यायालय से एक रिपोर्ट आयी कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की दृष्टि में अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया गया है और बिरसा मुंडा केंद्रीय कारा, राँची में बन्द कर दिया गया है। यहाँ यह उल्लिखित करना उपयोगी है कि विचारण न्यायालय ने दिनांक 17 फरवरी, 2011 के पत्र के तहत सूचित किया कि बिरसा मुंडा केन्द्रीय कारा अधीक्षक, राँची ने इंगित किया कि अभियुक्त को सत्र केस सं॰ 225 वर्ष 1986 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और वह आजीवन कारावास भुगत रहा था और उसने दंडादेश की संपूर्ण अवधि को भुगत लिया था और तत्पश्चात् उसे दिनांक 12 अप्रैल, 2002 को निर्मुक्त किया गया था। किंतु गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए इस न्यायालय के आदेश की दृष्टि में, अपीलार्थी को पुनः जेल में बंद कर दिया गया है।

5. ऊपर निर्दिष्ट तथ्यों से स्पष्ट है कि अभियुक्त, जिसे सत्र केस सं॰ 225 वर्ष 1986 में दोषसिद्ध किया गया था, पहले ही दंडादेश भुगत चुका है और इसलिए उसे अभिरक्षा में नहीं रखा जा सकता है।

अत: यह आदेश दिया गया है कि अपीलार्थी-अभियुक्त (सरुला मुंडा) को किसी बंधपत्र अथवा प्रतिभूति के बिना तुरन्त निर्मुक्त किया जाए (यदि किसी अन्य मामले में उसे गिरफ्तार नहीं किया गया है) क्योंकि वह पहले ही दंडादेश भुगत चुका है जैसा कारा अधीक्षक द्वारा कहा गया है।

6. चूँकि अपीलार्थी ने सत्र केस सं॰ 225 वर्ष 1986 में पारित दिनांक 31 मार्च, 1992 के निर्णय और आदेश के अधीन संपूर्ण दंडादेश पहले ही भुगत लिया है, इस अपील में कुछ भी बचा नहीं रहता है, अत: इसे खारिज किया जाता है क्योंकि यह निष्फल हो गया है क्योंकि दोषसिद्धि का आदेश अपास्त करवाने के लिए कोई भी इसके लिए अपील का अनुसरण करना नहीं चाहता था।

7. तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

सुनील चंद्र शर्मा

बनाम

भारतीय जीवन बीमा निगम, जमशेदपुर एवं अन्य

W.P. (C) No. 5306 of 2003. Decided on 9th May, 2011.

भारतीय जीवन बीमा निगम (एजेंट) विनियमन, 1972—विनियमन 8, 16, एवं 19—युक्तियुक्त जाँच किए बिना जीवन पॉलिसियों को सुरक्षित करने के लिए एजेन्सी की समाप्ति—याची से बीमाधारक के जीवन के संबंध में युक्तियुक्त जाँच करने की उम्मीद की जाती थी—यदि याची ने जाँच किया होता, वह आसानी से बीमाधारक (मृतक) की बीमारी के बारे में जान सकता था—एजेंसी की समाप्ति का आदेश गैर-कानूनी नहीं है—किंतु समस्त कमीशनों के समपहरण से संबंधित आदेश बिल्कुल गैर-कानूनी है चूँकि केवल कपट के मामले में समपहरण प्रभावकारी बनाया जा सकता है—मामला यह नहीं है कि याची जानता था कि बीमाधारक अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त था और फिर भी उसने प्रस्ताव में इनका उल्लेख नहीं किया था—समपहरण का आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 14, 15, 17 एवं 18)

अधिवक्तागण.—M/s M. M. Sharma, Suraj Kumar, For the Petitioner; M/s R. Kumar, R.R. Prasad, R. Ranjan, For the Respondents.

आदेश

जब याची प्रत्यर्थी—भारतीय जीवन बीमा निगम का एजेंट था, उसने श्री ओ॰ पी॰ वर्मा-बीमाधारक के जीवन के लिए एक लाख रुपये प्रत्येक के दो प्रस्तावों को दिनांक 12.8.1998 को सुरक्षित किया था। प्रस्ताव देते हुए, नैतिक जोखिम रिपोर्ट भी उसी दिन प्रस्तुत किया गया था जिसमें याची द्वारा कथन किया गया था कि वह श्री ओ॰ पी॰ वर्मा को विगत दो दिनों से जानता है। उक्त रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने पर एल॰ आई॰ सी॰ के डॉक्टर द्वारा श्री वर्मा का परीक्षण किया गया था जिन्होंने श्री ओ॰ पी॰ वर्मा के स्वास्थ्य के प्रति कुछ भी गलत नहीं पाया था। उस पर, विकास प्राधिकारी (प्रत्यर्थी सं॰ 5) ने वस्तुत: प्रमाणित किया कि नैतिक आपदा रिपोर्ट में दी गयी सूचना सही है।

2. पूर्वोक्त औपचारिकताओं को पूरा करने पर, दिनांक 11.9.1998 को प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया था। परिणामस्वरुप, जीवन बीमाधारक श्री ओ॰ पी॰ वर्मा के पक्ष में दो पॉलिसियाँ जारी की गयी थी। किंतु, दिनांक 30.9.1998 को श्री ओ॰ पी॰ वर्मा की मृत्यु हो गयी जिसने निर्धारित समय से पूर्व मृत्यु

दावा को उद्‌भूत किया। उनकी मृत्यु के बाद जब जाँच की गयी, तो पता चला कि बीमाधारक विगत 3-4 वर्षों से डायबेटिक नेफ्रोपैथी से पीड़ित रहा था और उसे क्रोनिक रेनल फेल्यर था और उसी समय उसे बृहत प्लूरल एफ्यूजन हुआ था जिसके लिए दिनांक 28.7.1998 से दिनांक 6.8.1998 तक अपोलो अस्पताल, राँची में उसका उपचार किया गया था। ऐसे प्रकटीकरण पर, तत्कालीन विकास अधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी थी, जिसके द्वारा उसपर निंदा का एक दण्ड अधिरोपित किया गया था। तत्कालीन विकास अधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही पूरा किए जाने पर, याची को दिनांक 3.7.2002 को नोटिस जारी किया गया था और कारण बताने के लिए कहा गया था कि तात्विक सूचना दबाने के लिए उसको भुगतान योग्य समस्त कमीशनों के समपहरण के साथ उसकी सेवाएँ समाप्त क्यों नहीं कर दी जाए।

3. उक्त नोटिस पाने पर, एक पत्र लिखा गया था जिसमें प्रभावकारी कारण बताओ प्रस्तुत करने के लिए कतिपय दस्तावेजों को उसे प्रदान करने के लिए अनुरोध किया गया था, जिसकी आपूर्ति उसको की गयी थी। बाद में, याची ने महसूस किया कि कुछ और दस्तावेज आवश्यक होंगे और इसलिए उसने कतिपय दस्तावेजों जैसे जाँच रिपोर्ट पर विकास अधिकारी के विरुद्ध दिए गए निष्कर्ष, मृतक के नामनिर्देशिती द्वारा प्रस्तुत दावा फॉर्म और मृतक की पत्नी द्वारा जारी किये गये पत्र की आपूर्ति करने का अनुरोध किया गया था। तत्कालीन डिविजनल मैनेजर (प्रत्यर्थी सं॰ 3) ने उन दस्तावेजों की आपूर्ति करने के बजाय दिनांक 18.12.2002 को एक आदेश (परिशिष्ट-11) पारित किया जिसके द्वारा समस्त कमीशनों के समपहरण के साथ याची की एजेंसी समाप्त कर दी गयी थी।

4. उस आदेश से व्यथित होकर, याची ने रिट आवेदन डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 191 वर्ष 2003 दाखिल किया, जिसे अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल करने का निर्देश याची को देते हुए निपटाया गया था।

5. उस आदेश के अनुपालन में, अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल की गयी थी जिसे दिनांक 18.6.2003 को खारिज कर दिया गया था।

6. परिशिष्टों 11 और 13 में अंतर्विष्ट दोनों आदेशों का अभिखंडन इस रिट आवेदन में इप्सित किया गया है।

7. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री शर्मा निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थीगण ने दस्तावेजों, जो याची की निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए कारण बताओ दाखिल करने के लिए अत्यन्त तात्विक थे, की आपूर्ति करने के बजाय याची की एजेंसी को समाप्त करने का आदेश पारित किया जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है और कि याची ने किसी तात्विक तथ्य को दबाया नहीं था बल्कि मोरल हजार्ड रिपोर्ट में यह दृढ़तापूर्वक कहा गया है कि वह विगत दो दिनों से बीमाधारक को जानता है और इन दो दिनों के दौरान याची ने बीमाधारक के साथ कुछ भी गलत नहीं पाया था और कि एल॰ आई॰ सी॰ के डॉक्टर ने बीमाधारक का परीक्षण करने पर उसे किसी भी बीमारी से पीड़ित नहीं पाया था जो उसे एल॰ आई॰ सी॰ का पॉलिसी पाने का गैरहकदार बनाए और कि विकास अधिकारी ने भी इसे प्रस्ताव स्वीकार किए जाने योग्य मामले के रूप में प्रमाणित किया था और इस स्थिति के अधीन, याची की एजेंसी समाप्त करने का आदेश दोषपूर्ण है क्योंकि याची ने बीमाधारक को एल॰ आई॰ सी॰ पॉलिसी पाने से गैर हकदार बनाने वाले किसी तात्विक तथ्य को कभी नहीं दबाया था और इसलिए आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य हैं।

8. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि ऊपर कथित तथ्यों और परिस्थितियों में, याची को किसी तरीके से कपटपूर्वक कृत्य करता हुआ कभी नहीं कहा जा सकता है और इसलिए, याची के समस्त कमीशनों के समपहरण के लिए पारित आदेश बिल्कुल गैर-कानूनी और दोषपूर्ण है।

9. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थी–एल॰ आई॰ सी॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची द्वारा पहली बार जो भी दस्तावेज मांगे गए थे, उन दस्तावेजों की आपूर्ति की गयी थी और उन दस्तावेजों की आपूर्ति किए जाने के बाद याची ने कतिपय दस्तावेजों को मांगा, जो कारण बताओ दाखिल करने के लिए कभी प्रासंगिक नहीं थे और कि इसे मामले में विलंब करने की दृष्टि से दाखिल किया गया था और, इसलिए, प्राधिकारी ने परिस्थितियों को ध्यान में लेते हुए कि बीमाधारक अनेक प्रकार की बीमारियों से पीड़ित था और उसे अपोलो अस्पताल, राँची में भी लंबे समय तक के लिए भरती किया गया था और कि बीमाधारक की सामान्य दशा अच्छी नहीं थी फिर भी इस संबंध में कोई रिपोर्ट नहीं किया गया था बल्कि पॉलिसी जारी करने के लिए प्रस्ताव दिया गया था, याची की एजेंसी समाप्त करने का आदेश पारित किया था जो एल॰ आई॰ सी॰ अधिनियम के अधीन विरचित विनियमन के प्रावधानों के अनुकूल है, क्योंकि याची बीमाधारक के जीवन के प्रति समस्त युक्तियुक्त जाँच करने में विफल रहा और इस प्रकार, आक्षेपित आदेशों में इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

10. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि ब्लैक के विधि शब्दकोष के मुताबिक किसी को क्षति कारित करने के लिए दूसरे को उत्प्रेरित करने हेतु किसी तात्विक तथ्य को छुपाना अथवा सत्य का जानबूझकर दुर्व्यपदेशन कपट की कोटि में आएगा और मामले के उस दृष्टिकोण में जो स्वयं को कपट के कृत्य में लिप्त करता है, वह विनियमन के खंड 19 के निबंधनानुसार पहले अर्जित किए गए कमीशनों से खुद को गैर हकदार बनाएगा।

11. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर विनिश्चित किए जाने वाला प्रश्न यह है कि क्या याची की एजेंसी की समाप्ति का आदेश न्यायोचित है या नहीं?

12. भारतीय जीवन बीमा निगम (एजेंट्स) विनियमन, 1972 (संक्षेप में विनियमन) का विनियम 16 कतिपय व्ययगमन के लिए एजेंसी की समाप्ति पर विचार करता है। विनियमन के खंड 16(1) के उपखंड (a) और (b) प्रासंगिक प्रावधान होंगे जिनका पठन निम्नलिखित है:–

"16. (1) सक्षम प्राधिकारी आदेश द्वारा किसी एजेंट की नियुक्ति विनिश्चित कर सकता है–

(a) यदि वह सक्षम प्राधिकारी के संतोषानुसार अपने कार्यों का निर्वहन करने में विफल रहता है जैसा विनियमन 8 में उपवर्णित है,

(b) यदि वह निगम के हित अथवा पॉलिसीधारकों के हित के विरुद्ध प्रतिकूल तरीके से कृत्य करता है।''

13. इस प्रकार, दो स्थितियों में से एक कर्तव्य का निर्वहन करने में विफलता है, जैसा विनियम 8 में स्थापित किया गया है और एक अन्य स्थिति है जिसमें कोई यदि निगम के हित के अथवा पॉलिसी धारक के हित के प्रतिकूल कार्य करता है, एजेंसी समाप्त की जा सकती है। विनियम 8(2) विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करता है कि नया जीवन बीमा बिजनेस प्राप्त करने के लिए एजेन्ट–

(a) जीवन बीमा के प्रस्तावक की आवश्यकता और प्रीमियम का भुगतान करने की क्षमता को विचार में लेगा;

(b) स्वीकार किए जाने के लिए प्रस्तावों की अनुशंसा करने से पहले बीमा किए जाने वाले व्यक्ति के जीवन के संबंध में समस्त युक्तियुक्त जाँच करेगा और किन्हीं परिस्थितियों जो निम्नांकन करने के जोखिम को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित कर सकता है, को निगम के ध्यान में लाएगा;

(c) यह सुनिश्चित करने के लिए कि बीमाधारक की आयु को पॉलिसी को आरंभ करते समय स्वीकार किया जाता है, समस्त युक्तियुक्त कदम उठाएगा; और

(d) किसी अन्य एजेन्ट द्वारा पुरःस्थापित किसी प्रस्तावक के साथ हस्तक्षेप नहीं करेगा।

14. उक्त प्रावधानों के परिशीलन पर, यह कहा जा सकता है कि यदि एजेन्ट प्रस्ताव पर आगे बढ़ने से पहले बीमाधारक के जीवन के संबंध में युक्तियुक्त जाँच नहीं करता है, उसकी एजेन्सी विनियमन के खंड 16 के उपखंड (1) के खंड (b) के निबंधनानुसार समाप्त किए जाने की दायी होगी और याची की एजेन्सी समाप्त करने के लिए प्राधिकारीगण द्वारा इस प्रावधान का अवलंब लिया गया है। याची का मामला यह है कि प्रस्ताव देते हुए उसने तथ्य का दुर्व्यपदेशन कभी नहीं किया बल्कि मोरल हजार्ड रिपोर्ट में उसने दृढ़तापूर्वक उल्लिखित किया कि वह बीमाधारक को दो दिनों से जानता है और स्वीकार किए जाने के लिए प्रस्ताव देते हुए यह याची की ओर से पर्याप्त नहीं है क्योंकि विनियमन के खंड 8(2) के खंड (b) के निबंधनानुसार उससे बीमाधारक के जीवन के संबंध में युक्तियुक्त जाँच करने की अपेक्षा की जाती थी। वर्तमान मामले में, यदि याची ने जाँच किया होता, वह आसानी से बीमाधारक जिसे दिनांक 28.7.1998 से दिनांक 6.8.1998 तक अपोलो अस्पताल, राँची में भरती किया गया था, की बीमारी के बारे में जान सकता था क्योंकि उसने अस्पताल से छुट्टी पाने के छह दिन के भीतर प्रस्ताव दिया था। इन स्थितियों के अधीन, प्राधिकारीगण ने सही प्रकार से पाया है कि याची अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा था जैसा विनियमन 8 में प्रावधानित किया गया है और, इसलिए, विनियमन 16 (1) के उपखंड (a) का अवलंब लेते हुए याची की एजेन्सी की समाप्ति के आदेश को किसी भी तरीके से दोषपूर्ण अथवा गैर कानूनी नहीं कहा जा सकता है। अतः, मैं परिशिष्टों 11 और 13 में अंतर्विष्ट आदेशों में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ।

15. जहाँ तक उक्त विनियमन के विनियमन 19(1) के निबंधनानुसार समस्त कमीशनों के समपहरण से संबंधित आक्षेपित आदेश के अन्य भाग का संबंध है, याची की ओर से निवेदन किया गया था कि चूँकि याची ने कोई कपट नहीं किया है, समपहरण अवैध है जबकि निवेदन यह है कि किसी को क्षति कारित करने के लिए दूसरे को उत्प्रेरित करने हेतु किसी तात्विक तथ्य को छिपाना अथवा सत्य का जानबूझकर दुर्व्यपदेशन कपट को आच्छादित करेगा और याची ने इस तथ्य कि बीमाधारक बीमारी से पीड़ित था, को प्रकट नहीं करके निश्चय ही तात्विक तथ्य को छुपाया है और इस प्रकार उसके कमीशन को सही प्रकार से समपहृत किया गया है।

16. ब्लैक के विधि शब्दकोष, आठवें संस्करण में कपट का निम्नलिखित अर्थ दिया गया है:–

''किसी को क्षति कारित करने के लिए दूसरे को उत्प्रेरित करने हेतु किसी तात्विक तथ्य को छिपाना अथवा सत्य का जानबूझकर दुव्यपदेशन।''

17. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थीगण का यह मामला कभी नहीं है कि प्रस्ताव देते हुए या तो सत्य का दुर्व्यपदेशन था अथवा तात्विक तथ्य को छिपाया गया था, बल्कि प्रत्यर्थीगण का मामला यह है कि प्रस्ताव करने के पहले बीमाधारक के जीवन के संबंध में युक्तियुक्त जाँच नहीं की गयी है। दूसरे शब्दों में, अनुशासनिक प्राधिकारी ने यह उपधारित करते हुए आदेश पारित किया कि यदि युक्तियुक्त जाँच की गयी होती, याची आसानी से उस बीमारी के बारे में जान सकता था जिससे बीमाधारक पीड़ित था क्योंकि उसे अस्पताल में काफी लंबी अवधि के लिए भरती किया गया था और कुछ दिन पहले ही उसकी छुट्टी की गयी थी, किंतु यह मामला कभी नहीं है कि याची इस तथ्य को जानता था कि बीमाधारक अनेक

प्रकार की बीमारियों से पीड़ित था और उसे अस्पताल में भरती किया गया था, फिर भी उसने इन समस्त तात्विक तथ्यों को प्रस्ताव में उल्लिखित नहीं किया था। यदि ऐसा था, याची को कपट करने वाला कहा जा सकता था किंतु यहाँ यह मामला नहीं है, बल्कि मामला प्रस्ताव दिए जाने के पहले बीमाधारक के जीवन के बारे में युक्तियुक्त जाँच नहीं किए जाने वाला प्रतीत होता है और इस प्रकार आक्षेपित आदेश के अधीन आदेशानुसार समस्त कमीशनों का समपहरण पूर्णत: गैरकानूनी होगा क्योंकि उक्त विनियमन के विनियमन 19 के निबंधनानुसार केवल कपट के मामले में समपहरण प्रभावकारी बनाया जा सकता है। उक्त प्रावधान का पठन निम्नलिखित है:–

"19. एजेन्सी के समाप्ति पर कमीशन का भुगतान.–(1) किसी एजेन्ट की नियुक्ति की समाप्ति की स्थिति में कपट को छोड़कर उसके द्वारा सुरक्षित किए गए व्यवसाय के संबंध में प्राप्त प्रीमियमों पर कमीशन का भुगतान उसको किया जाएगा यदि ऐसे एजेन्ट:

(a) ने अपनी नियुक्ति से कम से कम पाँच वर्षों के लिए लगातार काम किया है और उसके ऐसे एजेन्ट के रूप में कृत्य करना बंद करने के एक वर्ष पहले की तिथि पर उसके माध्यम से प्रभावकारी बनायी गयी दो लाख रुपयों से अन्यून कुल राशि आश्वासित करती पॉलिसियाँ पूर्ण बल में थी; अथवा

(b) अपनी नियुक्ति से कम से कम 10 साल तक के लिए उसने एजेन्ट के रूप में लगातार काम किया है; अथवा

(c) कोई एजेन्ट, जिसकी नियुक्ति विनियम 16 के उप विनियम (1) के खंड (e) के अधीन समाप्त कर दी गयी है, जिसने एजेन्ट के रूप में अपनी नियुक्ति की तिथि से कम से कम दो वर्षों के लिए लगातार काम किया है और उसकी सेवा समाप्ति के तुरन्त पहले की तिथि पर उसके माध्यम से प्रभावकारी बनायी गयी एक लाख रुपयों से अन्यून कुल राशि आश्वासित करती पॉलिसियाँ पूर्ण बल में थी:

परन्तु यह कि आमेलित एजेन्ट के संबंध में खंड (a) के प्रावधान लागू होंगे मानो ''दो लाख रुपयों'' के अक्षरों, आंकड़ों और शब्द के लिए "50,000/- रुपयों'' के अक्षरों, तथा आंकड़ों को प्रतिस्थापित किया गया है।''

18. चूँकि याची का कृत्य कपट के कृत्य की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है, प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित कमीशन के समपहरण से संबंधित आदेश, जैसा अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट किया गया है, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

परिणामस्वरुप, यह रिट आवेदन अंशत: अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

आलोक कुमार मल्लिक

बनाम

जनार्दन महादानी एवं एक अन्य

Misc. Appeal No. 220 of 2007. Decided on 6th May, 2011.

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 68—वसीयत–प्रशासन पत्र प्रदान करने के लिए आवेदन की खारिजी–वसीयत को दो गवाहों द्वारा अनुप्रमाणित किए जाने की आवश्यकता होती है–यदि अनुप्रमाणक गवाहों का साक्ष्य देकर वसीयत सिद्ध नहीं किया जाता है, इसे साक्ष्य में विचार नहीं किया जा सकता है?–वसीयत के दोनों अनुप्रमाणक गवाह जीवित हैं–अवर न्यायालय ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया कि वसीयत को विधि के अनुरुप सिद्ध नहीं किया गया है–अपील खारिज। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s Amar Kumar Sinha, Kundan Kumar Ambastha, For the Appellant; None, For the Respondents.

आदेश

यह विविध अपील प्रशासन पत्र केस सं॰ 1 वर्ष 2001 में जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 19.6.2007 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन प्रशासन पत्र प्रदान किए जाने के लिए आवेदन को खर्च के साथ खारिज कर दिया गया है।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने निष्कर्ष दिया है कि वसीयत को सिद्ध नहीं किया गया है, अत:, इसका परिशीलन नहीं किया जा सकता है। निवेदन किया गया है कि लेखक (स्क्राइब) अ॰ सा॰ 2 ने प्रश्नगत वसीयत को सिद्ध किया है, अत: अवर न्यायालय का निष्कर्ष कि वसीयत को सिद्ध नहीं किया गया है, पूर्णत: गलत है, और इसलिए, इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

3. निवेदनों को सुनने पर, मैंने आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है। इसके परिशीलन से मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी की ओर से किया गया निवेदन पूर्णत: भ्रामक है। यह विवाद में नहीं है कि वसीयत को दो गवाहों द्वारा अनुप्रमाणित किए जाने की आवश्यकता होती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 किसी दस्तावेज, जिसे अनुप्रमाणित करने की अपेक्षा विधि में की जाती है, के प्रमाण के लिए प्रक्रिया विहित करती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 का पठन निम्नलिखित है:–

> *''**ऐसी दस्तावेज के निष्पादन का साबित किया जाना जिसका अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है.**–यदि किसी दस्तावेज का अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है, तो उसे साक्ष्य के रूप में उपयोग में न लाया जाएगा, जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी, यदि कोई अनुप्रमाणक साक्षी जीवित और न्यायालय की आदेशिका के अध्यधीन हो तथा साक्ष्य देने के योग्य हो, उसका निष्पादन साबित करने के प्रयोजन से न बुलाया गया हो।''*

4. अत: उक्त प्रावधान की दृष्टि में, यदि किसी वसीयत (जिसे विधि के अधीन गवाह द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना आवश्यक है) को अनुप्रमाणक गवाहों का साक्ष्य देकर सिद्ध नहीं किया जाता है, साक्ष्य में इसका परिशीलन नहीं किया जा सकता है जब तक वादी/आवेदक यह नहीं दर्शाता है कि उक्त अनुप्रमाणक गवाह जीवित नहीं है अथवा साक्ष्य देने के लिए सक्षम नहीं है। वर्तमान मामले में, विद्वान अवर न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि वसीयत के दोनों अनुप्रमाणक गवाह जीवित है। उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया है कि विधि के अनुरुप वसीयत को सिद्ध नहीं किया गया है और इसलिए इसका परिशीलन नहीं किया जा सकता है।

5. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

बलराम टूडू एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 364 of 2008. Decided on 16th May, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 143 एवं 429/34—रिष्टि–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–याचीगण के साथ दुश्मनी होने के कारण समस्त गवाहगण हितबद्ध थे और अन्य गवाहों के बयानों की तुलना में परिवादी के बयान में महत्वपूर्ण विरोधाभास था–न तो रासायनिक

विश्लेषक का रिपोर्ट और न ही कोई शव परीक्षण रिपोर्ट अभिलेख पर लाया गया था ताकि तालाब को विषमय करके, जिसका परिणाम मछलियों की मृत्यु में हुआ, रिष्टि करने के अभिकथन को सिद्ध किया जा सके–अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा कि कतिपय दांडिक कृत्य करने के लिए याचीगण ने विधिविरुद्ध जमाव निर्मित किया था–दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s M.K. Dey, R.P. Mukherjee, Satyajit Bakshi, For the Petitioners; Mr. S.K. Srivastava, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–यह दांडिक पुनरीक्षण दांडिक अपील सं॰ 63 वर्ष 2005 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, पूर्वी सिंहभूम, घाटशिला द्वारा पारित दिनांक 30.11.2007 के उस निर्णय के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा सी॰/1 केस सं॰ 93 वर्ष 2000, टी॰ आर॰ सं॰ 921 वर्ष 2005 के तत्सम, में विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, घाटशिला द्वारा उन्हें दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और उनकी दोषसिद्धि के विरुद्ध याचीगण द्वारा दाखिल अपील को खारिज किया गया था और निर्णय अभिपुष्ट किया गया था। विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, घाटशिला ने याचीगण (1) बलराम टूडू (2) लासो टूडू उर्फ लक्ष्मी टूडू, (3) सुनाराम टूडू और (4) कृष्णा सरदार को भारतीय दंड संहिता की धारा 143 के अधीन अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया और उनमें से प्रत्येक को चार माह की अवधि का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। इसके अतिरिक्त उन्हें भारतीय दंड संहिता की धाराओं 429/34 के अधीन अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और उनमें से प्रत्येक को दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। याची सं॰ 5 चांदराय टूडू को भी दोषी अभिनिर्धारित किया गया था किंतु उसे शांति बनाए रखने और अच्छा आचरण करने के लिए एक वर्ष की अवधि के लिए दो प्रतिभूतियों के साथ 5000/- रुपयों के परिवीक्षा बंधपत्र के निष्पादन पर निर्मुक्त करने के सिवाय कोई सारवान दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया गया था। अन्य चार याचीगण को अधिनिर्णीत दंडादेश को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था। विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत उनकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अपील में अभिपुष्ट किया गया था जैसा पहले उल्लिखित किया गया है।

2. परिवादी-सूचक होपना टुडू द्वारा कथित अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 11.4.1996 की रात्रि में लगभग 7 बजे कोई गोपाल कालिंदी दैनिक कर्म से निपटने के लिए सरकारी तालाब की ओर गया था जहाँ उसने अपने टार्च की रोशनी में याची बलराम टूडू को अन्य याचीगण लासो टूडू उर्फ लक्ष्मी टूडू, सुनाराम टूडू, कृष्णा सरदार, चांदराय टूडू और किसी मोतीलाल सरदार (इसमें याची नहीं) के साथ तालाब से तेजी से लौटते देखा था। शोर मचाए जाने पर सूचक-परिवादी के साथ गवाहगण तालाब के निकट आए और तालाब की मछलियों को कूदते और मछलियों में से कुछ को मृत दशा में तैरते पाया। घाटशिला पुलिस थाना में होपना टूडू द्वारा लिखित रिपोर्ट दर्ज की गयी थी जिस पर दिनांक 14.4.1996 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 429/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए घाटशिला पी॰ एस॰ केस सं॰ 44/96 संस्थापित किया गया था किंतु, अन्वेषण के बाद, अन्वेषण अधिकारी ने अभियुक्तगण को दांडिक दायित्व से विमुक्त करते हुए फाइनल फॉर्म दाखिल किया क्योंकि अभिकथन को सत्य नहीं पाया गया था। सूचक को नोटिस जारी किया गया था जिस पर सूचक उपस्थित हुआ और विरोध याचिका को दाखिल किया जिसे परिवाद मामला के रूप में दर्ज किया गया था। जाँच के दौरान, अभियुक्तगण में से एक मोतीलाल सरदार की मृत्यु हो गयी थी। समस्त पाँचों अभियुक्तगण, जो वर्तमान याचीगण हैं, के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 429/34 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/429/34 के अधीन उनके विरुद्ध आरोप विरचित किया गया था।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री एम॰ के॰ डे ने निवेदन किया कि दांडिक अपील सं॰ 63 वर्ष 2005 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, पूर्वी सिंहभूम, घाटशिला के निर्णय में अभिलेख की गलती है जिसमें उन्होंने संप्रेक्षित किया:–

> *''अतः, मेरे मत में, विद्वान अवर न्यायालय ने सही प्रकार से अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147 और 429 सह-पठित धारा 34 के अधीन अपराध के लिए दोषी पाया और एस० डी० जे० एम०, घाटशिला द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश न्यायोचित है क्योंकि यह विधि के अनुरुप है और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।''*

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री डे॰ के अनुसार, शायद विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश को विधि के सिद्धांत का मूल ज्ञान नहीं था भारतीय दंड संहिता की धारा 34 की मदद से भारतीय दंड संहिता की धारा 147 के अधीन अभियुक्तगण की दोषसिद्धि को संपोषित नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार, यह अभिकथन नहीं था कि दंगा करने के लिए बल अथवा हिंसा का प्रयोग करने के आशय के साथ अभियुक्तगण द्वारा विधि विरुद्ध जमाव निर्मित किया गया था और इसलिए, विद्वान अपीलीय न्यायालय ने संपूर्ण तथ्यों और विधि को गलत समझा और तथ्यों एवं विधि की प्रयोज्यता का अधिमूल्यन किए बिना अपीलार्थीगण-याचीगण की दोषसिद्धि को संपुष्ट किया।

5. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए श्री डे ने आगे निवेदन किया कि लिखित रिपोर्ट, जिसे सूचक द्वारा पुलिस थाना के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, का अन्वेषण किया गया था और जब पुलिस ने याचीगण के विरुद्ध अभिकथनों को झूठा पाया, पुलिस ने निश्चय ही इन कारणों के चलते याचीगण को दांडिक दायित्व से विमुक्त करते हुए अंतिम फॉर्म दाखिल किया कि सूचक इस अभिकथन की पृष्ठभूमि में कि उसे 20,000-25,000/- रुपयों की सीमा तक गलत नुकसान के अध्यधीन किया गया था, कागज का कोई टुकड़ा तक दाखिल नहीं कर सका था कि वह किसी भी रूप में सरकारी तालाब के साथ जुड़ा हुआ था। यह मामला नहीं है कि सरकारी तालाब का व्यवस्थापन उसके पक्ष में किया गया था और उसके समर्थन में, उसने प्रासंगिक अवधि के लिए पट्टा पर व्यवस्थापन अथवा अन्यथा से संबंधित कोई कागजात प्रस्तुत किया था। विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दूसरा बिंदु यह था कि शायद पुलिस ने विचार किया कि तालाब में जहर मिलाने का कोई साक्ष्य नहीं था जिसका परिणाम मछलियों की मृत्यु में हुआ था। किसी मछली का कोई शव परीक्षण रिपोर्ट तक नहीं था जो इस अभिकथन को सिद्ध कर सके कि मछलियों की मृत्यु का कारण जहर था। जहाँ तक याचीगण की सह-अपराधिता का संबंध था, पुरानी दुश्मनी का एक उदाहरण था कि याची बलराम टूडू के कहने पर परिवादी और उसके गवाहों सहित चौदह अभियुक्तगण को विधि के न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था और जी॰ आर॰ सं॰ 638 वर्ष 1991 में जिसमें उनमें से प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था, उनकी दोषसिद्धि के तुरन्त बाद होपना टुडू द्वारा घाटशिला पुलिस के समक्ष लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था। इस संपुष्टिकारक साक्ष्य को मामले, जिसे द्वेषपूर्वक संस्थापित किया गया था, की सत्यता पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया था। याचीगण के साथ दुश्मनी होने के कारण समस्त गवाहगण हितबद्ध थे और अन्य गवाहों के बयान के तुलना में सूचक-परिवादी के बयान में महत्वपूर्ण विरोधाभास था।

6. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री डे ने आगे निवेदन किया कि परिवादी-सूचक घटना का चश्मदीद गवाह नहीं था बल्कि उसने सी॰ डब्ल्यू॰ 1 गोपाल कालिंदी से सूचना प्राप्त किया था जिसने कथन किया था कि उसने अन्य याचीगण के साथ याची बलराम टूडू को अपने हाथ में बोतल लिए तालाब से लौटते देखा था किंतु परिवादी और अन्य गवाहों ने मामले को सारवान रूप से विकसित किया जिन्होंने याचीगण

में से कुछ को तालाब में जहर मिलाते देखा था और तत्पश्चात तालाब की मछलियाँ मृत पायी गयी थी। अ॰ सा॰ 3 होपना मंडी के बयान के संदर्भ में, जैसा प्रतिपरीक्षण के अधीन पैरा 12 में अंतर्विष्ट है, गवाह ने स्वीकार किया कि प्रश्नगत तालाब विगत सात वर्षों से याची बलराम टूडू के कब्जा में था और इसलिए प्रश्न उद्भूत होता है कि जब याची बलराम टूडू तालाब का स्वामी था, वह तालाब में जहर क्यों मिलाएगा और इसलिए संपूर्ण अभिकथन याचीगण को झूठे रूप से और द्वेषपूर्वक आलिप्त करने के आशय के साथ किया गया था और पुलिस ने आरंभ में ही उनके पक्ष में अंतिम फॉर्म दाखिल करके उनके दांडिक दायित्व से उनको विमुक्त कर दिया था।

7. राज्य की ओर से विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री एस॰ के॰ श्रीवास्तव को सुना गया जिन्होंने याचीगण की ओर से किए गए प्रतिवादों का विरोध किया और निवेदन किया कि परिवादी की ओर से प्रस्तुत गवाहगण याचीगण की सह-अपराधिता के बारे में, संगत थे जिन्होंने 20,000-25,000/- रुपयों की सीमा तक का नुकसान कारित करते हुए तालाब में जहर मिलाने की रिष्टि को किया और इसलिए, विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, घाटशिला द्वारा याचीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 429/34 के अधीन सही प्रकार से दोषसिद्ध किया गया था जिसे दांडिक अपील सं॰ 63 वर्ष 2005 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा अभिपुष्ट किया गया था।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं याचीगण की ओर से दिए गए तर्क में सार पाता हूँ कि दोषसिद्धि इस आधार पर संपोषित नहीं की जा सकती है कि परिवादी यह दर्शाने में विफल रहा कि वह किसी भी तरीके से सरकारी तालाब से जुड़ा था और याचीगण द्वारा अभिकथित रूप से की गयी रिष्टि द्वारा उसे गलत रूप से 20,000-25,000/- रुपयों का नुकसान कारित किया गया था। परिवादी का विनिर्दिष्ट मामला यह था कि याची सं॰ 1 ने तालाब में जहर मिलाया था जिसके परिणामस्वरुप मछलियों की मृत्यु हुई थी किंतु न तो रासायनिक विश्लेषक के रिपोर्ट को और न ही उक्त तालाब से प्राप्त की गयी मछलियों के किसी शव परीक्षण रिपोर्ट को अभिलेख पर लाया गया था ताकि जहर मिलाने की रिष्टि करने के अभिकथन को सिद्ध किया जा सके और इसलिए, मैं याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता के दृष्टिकोण के साथ सहमत हूँ कि तथ्यों और परिस्थितियों में भारतीय दंड संहिता की धारा 429 के अधीन अपराध को याचीगण के विरुद्ध स्थापित नहीं किया जा सका था। इसी प्रकार से, अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा कि कतिपय दांडिक कृत्य करने के लिए याचीगण ने विधिविरुद्ध जमाव निर्मित किया था क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 429 के अधीन अभिकथित अपराध को स्थापित नहीं किया गया था और इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 143 के अधीन अपराध के लिए याचीगण को दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि परिवादी साक्ष्य देकर यह सिद्ध करने में विफल रहा कि याचीगण ने अपराध करने के लिए विधिविरुद्ध जमाव निर्मित किया था। अंत में मैं संप्रेक्षित करता हूँ कि विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने, जिन्होंने याचीगण की दोषसिद्धि को अभिपुष्ट किया, अपने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147 और 429 सह-पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के अधीन दोषसिद्धि को अभिपुष्ट किया जिसे विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है और ऐसे निष्कर्ष की निंदा की जाती है।

9. उक्त कथित कारणों से, सी॰/1 केस सं॰ 93 वर्ष 2000 में विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, घटशिला द्वारा दर्ज और दांडिक अपील सं॰ 63 वर्ष 2005 में अपर सत्र न्यायाधीश, पूर्वी सिंहभूम, घाटशिला द्वारा अभिपुष्ट निर्णयों को अपास्त किया जाता है और याचीगण (1) बलराम टूडू, (2) लासो टूडू उर्फ लक्ष्मी टूडू, (3) सुनाराम टूडू (4) कृष्णा सरदार और (5) चांदराय टूडू को दोषमुक्त किया जाता है।

10. तद्नुसार, इस दांडिक पुनरीक्षण को अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रकाश तातिया एवं ध्रुव नारायण उपाध्याय, न्यायमूर्तिगण

अखवरी शंकर

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

W.P. (S) No. 4730 of 2008. Decided on 28th April, 2011.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि–सेवा समाप्ति–कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति–अपने पिता की बीमारी के कारण याची कर्तव्य पर उपस्थित नहीं हो सका था–नियोक्ता द्वारा छुट्टी न तो मंजूर किया गया था और न ही इनकार किया गया था–यदि कर्मचारी छुट्टी लेना चाहता है, तब छुट्टी इप्सित करना उसका कर्तव्य है–अवकाश आवेदन का मात्र प्रस्तुतीकरण और कार्यालय छोड़ना सदैव कर्मचारी के जोखिम पर है–याची आदतवश अनुपस्थित रहता था और जाँच में सहयोग नहीं किया था–अपने अनुचित आचरण की दृष्टि में याची किसी अनुतोष का हकदार नहीं है–याचिका खारिज। (पैराएँ 6 से 10)

निर्णयज विधि.–(2003)9 SCC 480—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajiv Sinha, For the Petitioner; Mr. S. Srivastava, For the Respondent.

प्रकाश तातिया, न्यायमूर्ति.–पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना पीठ (राँची में पीठासीन सर्किट) द्वारा पारित दिनांक 27 जून, 2008 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा याची का ओ॰ ए॰ सं॰ 62 वर्ष 2006 खारिज कर दिया गया था।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्यों के मुताबिक याची को आरंभ में दिनांक 25.7.1983 को लिपिक के पद पर नियुक्त किया गया था और तब दिनांक 1.1.1992 को संपरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया था और आगे दिनांक 9.1.1995 को वरीय संपरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया था। याची के अनुसार, उसका पिता दिनांक 13.10.2000 और दिनांक 15.12.2000 के बीच बीमार था और उसके साथ रहने वाला इकलौता पुत्र होने के नाते याची ने दिनांक 13.10.2000 से दिनांक 15.12.2000 तक छुट्टी प्रदान करने के लिए आवेदन दाखिल करके अवकाश पर चला गया था। यह आवेदन असाधारण अवकाश प्रदान करने के लिए था। याची ने पुन: अपने पूर्व आवेदनों की निरंतरता में दिनांक 15.1.2001 से दिनांक 17.2.2001 तक 33 दिनों के असाधारण अवकाश और दिनांक 13 दिसंबर, 2000 से दिनांक 15.12.2000 तक अर्जित अवकाश के लिए आवेदन के साथ दिनांक 21.12.2000 से दिनांक 14.1.2001 तक अर्द्धवेतन अवकाश प्रदान करने के लिए आवेदन दाखिल किया था। तब याची के अनुसार दिनांक 20.2.2001 को, उसने पी॰ जी॰ आई॰ लखनऊ में अपने पिता के विशिष्ट सुविधायुक्त उपचार के लिए अवकाश के लिए एक अन्य आवेदन दाखिल किया और साढ़े आठ माह बाद लखनऊ से लौटने के बाद उसने अंतत: दिनांक 3 दिसंबर, 2001 को रिपोर्ट किया। याची के अनुसार, उसके उक्त अवकाश आवेदन लंबित पड़े थे और उन्हें अस्वीकार नहीं किया गया था। किंतु, दिनांक 2.5.2002 को याची के विरुद्ध अप्राधिकृत अवकाश के आधार पर अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ की गयी थी और याची को कर्तव्य फिर से संभालने की अनुमति नहीं दी गयी थी। तब याची ने कर्तव्य फिर से संभालने के लिए उसको अनुमति देने के लिए ओ॰ ए॰ सं॰ 246 वर्ष 2002 दाखिल किया। किंतु याची के विरुद्ध जाँच जारी रहा और याची के अनुसार उसे किसी जाँच की तिथि की सूचना नहीं दी गयी थी।

4. चाहे जो भी हो, अंतत: दिनांक 14 फरवरी, 2003 को जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था और तत्पश्चात् दिनांक 7.1.2004 को याची की सेवाएँ समाप्त कर दी गयी थी। बर्खास्तगी के आदेश के विरुद्ध

अपील के उपचार को नि:शेष करने की स्वतंत्रता याची को देते हुए दिनांक 26.5.2004 को पूर्वोक्त ओ॰ ए॰ सं॰ 246 वर्ष 2002 अंतत: निपटा दिया गया था। तब, याची ने अपील के उपचार को नि:शेष किए बिना रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 912 वर्ष 2005 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया और तीन माह के भीतर अपील दाखिल करने की अनुमति याची को देते हुए दिनांक 4.5.2005 को इस न्यायालय द्वारा उक्त याचिका को निपटा दिया गया था और संप्रेक्षित किया गया था कि याची अपीलीय प्राधिकारी के साथ सहयोग करेगा। तब याची ने अपील दाखिल किया जिसे दिनांक 22.8.2005 के एकपक्षीय आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। अत: याची द्वारा इस रिट याचिका को दाखिल किया गया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निष्पक्षत: निवेदन किया कि इस तथ्य की दृष्टि में कि याची इस न्यायालय के माध्यम से नियोक्ता से सहानुभूतिपूर्ण अनुतोष इप्सित कर रहा है, अब याची दंड की मात्रा को चुनौती दे रहा है। याची के विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि याची वह व्यक्ति नहीं था जिसने अवकाश के लिए आवेदन नहीं दिया था। किंतु, अवकाश मंजूर नहीं किया गया था किंतु साथ ही नियोक्ता द्वारा अवकाश अस्वीकार भी नहीं किया गया था। केवल यही नहीं, याची का पिता बीमार था और आपातकालिक स्थिति में याची के पास नियोक्ता के समक्ष अवकाश आवेदन छोड़ने और अपने पिता की सेवा के लिए जाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था और उस स्थिति में भी दंड का आदेश पारित करने के पहले यह जाँच करना नियोक्ता का कर्तव्य था कि क्या याची द्वारा दिया गया आधार वैध और वास्तविक था यदि यह अभिनिर्धारित किया भी जाता है कि याची ने समय पर अवकाश आवेदन दाखिल नहीं करके अवचार किया। याची के विद्वान अधिवक्ता **2003 (9) SCC 480 (कैलाश नाथ गुप्ता बनाम जाँच अधिकारी (आर॰ के॰ राय) इलाहाबाद बैंक एवं अन्य)** में दिए गए निर्णय पर विश्वास करते हैं। याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया केंद्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियमावली, 1964 के नियमों में यह विनिर्दिष्टत: प्रावधानित नहीं किया गया है कि कोई कर्मचारी अवकाश की पूर्व मंजूरी प्राप्त किए बिना कार्यस्थल छोड़ नहीं सकता है और यह भी उल्लिखित नहीं किया गया है कि कर्मचारी के लिए रोजगार स्थल छोड़ने के लिए पूर्वापेक्षा क्या है, फिर भी मामले के तथ्यों में याची को अधिनिर्णीत दंड न्यायोचित नहीं माना जा सकता है।

6. हमने नियमावली, आक्षेपित आदेश, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और याची के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का परिशीलन किया है। अभिलेख से सामने आने वाले तथ्य ये हैं कि याची को भविष्य में अवकाश पर जाने से पहले अवकाश मंजूर करवाने की चेतावनी देते हुए जिसमें विफल रहने पर उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है, दिनांक 29.10.1999 को मेमो तामील किया गया था। किंतु, याची अवकाश प्रदान करने के लिए आवेदन देकर दिनांक 13.10.2000 से अवकाश पर चला गया। स्वीकृत रूप से, अवकाश मंजूर नहीं किया गया था और याची ने कार्यस्थल छोड़ दिया था। तत्पश्चात, उसने अवकाश बढ़ाने के लिए आवेदन भेजा। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रतिवाद भी किया गया है कि नियोक्ता ने कोई आधार दर्ज नहीं किया था कि अपने पिता की बीमारी के आधार पर अवकाश के संबंध में दिया गया कारण झूठा था। किंतु आरोप के परिशीलन पर, यह प्रकट होगा कि याची के विरुद्ध आरोप यह नहीं था कि उसने झूठा आधार लिया था बल्कि आरोप यह था कि याची पूर्व मंजूरी के बिना अवकाश पर बना रहा। अत:, जहाँ तक याची के विरुद्ध आरोप का संबंध है, वस्तुत: वह एक स्वीकृत तथ्य था और स्वयं कर्मचारी की स्वीकृति ने आरोप को पूर्णत: सिद्ध किया कि वह मंजूरी प्राप्त किए बिना अवकाश पर बना रहा। यदि हम उपर निर्दिष्ट सी॰ सी॰ एस॰ नियमावली, 1964 के प्रावधानों का परिशीलन करते हैं जो कहीं नहीं प्रावधानित करता है कि कर्मचारी अवकाश प्राप्त किए बिना कार्यस्थल छोड़ सकता

है अथवा कार्यालय से अनुपस्थित रह सकता है। उक्त प्रावधानों से यह स्पष्टत: प्रकट होगा कि कार्यालय में उपस्थित होना कर्मचारी का कर्तव्य है और यदि वह अवकाश लेना चाहता है, तब अवकाश इप्सित करना कर्मचारी का कर्तव्य है। मात्र अवकाश आवेदन की प्रस्तुति और कार्यालय छोड़ना सदैव कर्मचारी के जोखिम पर होता है और नियोक्ता कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई कर सकता है। वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि याची आदतवश अनुपस्थित था और उसे चेतावनी भी दी गयी थी।

7. जहाँ तक याची के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद कि नियोक्ता ने अपना निष्कर्ष दर्ज नहीं किया था कि याची द्वारा अपने पिता की बीमारी का लिया गया आधार झूठा आधार था, का संबंध है, यह सिद्ध करने का बोझ कर्मचारी पर था कि इस आधार पर वह उदार दृष्टिकोण का पात्र है। तथ्यों से, जिनको हमने पूरी तरह ध्यान में लिया है, प्रतीत होता है कि समय के किसी बिंदु पर याची ने जाँच में सहयोग नहीं किया था और याची पर नोटिस तामील करने का अनेक प्रयास किया गया था। किंतु उसने सहयोग नहीं किया था। जाँच कार्यवाही में सहयोग करने में याची की विफलता सिद्ध करती है कि याची के विरुद्ध आरोप पूरी तरह स्थापित था। यदि वह किसी सहानुभूति का लाभ लेना चाहता था, यह सिद्ध करना उसका कर्तव्य था कि कुछ आपात स्थिति सामने आयी थी जिसका परिणाम मंजूरी प्राप्त किए बिना कार्यालय छोड़ने के चलते याची की अनुपस्थिति में हुआ था।

8. जहाँ तक याची के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद कि डाकिया जिसने डाक लिफाफा में पृष्ठांकन किया कि पत्र दिए जाते समय पर याची उपलब्ध नहीं था का संबंध है, इसे सिद्ध करने के लिए डाकिया का परीक्षण किया जाना चाहिए था। मामले के तथ्यों में, यह तथ्य शायद ही इन सरल कारणों से प्रासंगिक है कि नोटिस तामील करने के लिए प्राधिकारीगण द्वारा अनेक प्रयास किए गए थे किंतु याची द्वारा सारे प्रयासों को नाकाम कर दिया गया था और तब समाचारपत्रों में नोटिस प्रकाशित भी किया गया था।

9. जहाँ तक दंड की मात्रा का संबंध है, हमारा दृष्टिकोण है कि याची के अनुचित आचरण को देखते हुए, जिसे विस्तारपूर्वक ध्यान में लिया गया है, याची किसी तरीके से किसी अनुतोष का हकदार नहीं है। याची का प्रतिवाद कि वह अपने पिता की बीमारी के कारण लंबी अवधि के लिए अनुपस्थित रहा, स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे ईमानदारी से जाँच में सहयोग करना चाहिए था। यह पता करना नियोक्ता का कर्तव्य नहीं है कि क्या याची का पिता बीमार था या नहीं उसे प्राधिकारी के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहिए था। यह सुनिश्चित सिद्धांत है कि जो अभिकथन करता है उससे इसे सिद्ध करने की अपेक्षा की जाती है। याची द्वारा अभिवचन किया गया था कि उसका पिता बीमार है और इसलिए प्रत्यर्थी-नियोक्ता को सिद्ध नहीं करना था कि याची का पिता बीमार नहीं था।

10. उक्त की दृष्टि में, हम आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। अत: यह याचिका खारिज की जाती है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मो॰ मोख्तार

बनाम

बीबी इरफाना एवं एक अन्य

Criminal Revision No. 13 of 2003. Decided on 13th May, 2011.

विविध केस सं॰ 5 वर्ष 1997 (भरण-पोषण टी॰ आर॰ सं॰ 391 वर्ष 2002) में श्री रमेश कुमार गुप्ता, सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 2.12.2002 के आदेश के विरुद्ध।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986—धारा 3—भरण-पोषण—पत्नी और अवयस्क पुत्र में से प्रत्येक को 400/- रुपया प्रतिमाह भरण-पोषण का भुगतान करने का निर्देश—अंतिम आदेश पारित किए जाने के बाद पति द्वारा कोई भरण-पोषण नहीं दिया गया—कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान याची द्वारा परिवादी को तलाक दिया गया था—परिवादी ने मांग का चार्टर दिया है जिसे विशेष विधि के अधीन उसको युक्तियुक्त और उचित भरण-पोषण देने के अतिरिक्त उसको इसे लौटाए जाने की अपेक्षा की जाती थी—पुत्र ने भी वयस्कता प्राप्त नहीं किया है और वह भी भरण-पोषण पाने का हकदार है—परिवादी को 1986 के अधिनियम के अधीन याचिका दाखिल करने की अनुमति दी गयी—तब तक वह बकाया के साथ 400/- रुपया प्रतिमाह की दर से भरण-पोषण पाने की हकदार होगी। (पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.—M/s Afaque Ahmad, H. Hoda, Sayendra Singh, For the Petitioner; Mr. Manoj Kumar Sah, For the O.P. No. 1 & 2.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—यह दांडिक पुनरीक्षण विविध केस सं॰ 5 वर्ष 1997 (भरण-पोषण टी॰ आर॰ सं॰ 391 वर्ष 2002) में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 2.12.2002 के उस आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा याची को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन दाखिल आवेदन की तिथि पर वि॰ प॰ सं॰ 1 और 2 प्रत्येक को 400/- रुपया की दर से भरण-पोषण भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

2. परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 1 ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया था कि 20 वर्ष पहले देन मेहर की राशि को विनिर्दिष्ट किए बिना याची मो॰ मोख्तार के साथ उसका विवाह हुआ था। उसने आगे कथन किया कि उनके विवाह से सादिर हुसैन (वि॰ प॰ सं॰ 2) नामक पुत्र का जन्म हुआ था जिसकी आयु उसकी याचिकाओं को दाखिल किए जाने के समय पर लगभग 10 वर्ष थी। चूँकि उसे वर्ष 1987 में अपना दांपत्य गृह छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था, वह अभित्यक्त महिला होने के नाते अपने पैतृक गृह चली आयी और अपनी माता के साथ रहने लगी किंतु उसके पति ने उसका भरण-पोषण नहीं किया। उसने आगे कथन किया कि उसके याची-पति को कृषि भूमि से पर्याप्त आमदनी होती थी। उसके कहने पर उसके भविष्य की व्यवस्था के लिए पंचायती की गयी थी जिसमें उसकी माता और अन्य संबंधियों ने सम्यक् रूप से भाग लिया था किंतु उसका पति अथवा कोई अन्य संबंधी नहीं आया था बल्कि इसके बजाय उसे उसके दांपत्य ग्राम से बाहर निकाल दिया गया था। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन के लंबित रहने के दौरान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 ने दांडिक विविध केस सं॰ 5 वर्ष 1997 में सी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा के समक्ष पूरक याचिका दाखिल किया था जिसमें उसने कथन किया था कि उसने अपनी पत्नी अर्थात् परिवादी-वि॰ प॰ सं॰ 1 को तलाक दे दिया था और इसलिए बदलती परिस्थितियों के अधीन वह मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रावधानों के अधीन अनुतोष इप्सित करने की इच्छुक थी जिसमें पति को उसके 'निकाह' के अवसर पर उसकी पत्नी को दी गयी देन मेहर एवं अन्य उपहारों को वापस लौटाना था। उसने ऐसी वस्तुओं की सूची को पूरक याचिका की अनुसूची A के रूप में उपाबद्ध किया। आगे कथन किया गया था तलाक की उद्घोषणा के बाद भी उसकी अत्यावश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इद्दत अवधि के भीतर युक्तियुक्त और उचित भरण-पोषण के जरिए अपने जीवनकाल तक वह भरण-पोषण पाने की हकदार थी। परिवादी-विपक्षी

पक्षकार सं॰ 1 ने अपनी पूरक याचिका में युक्तियुक्त और उचित भरण-पोषण की व्याख्या करने का प्रयास किया था जो उसके निवासस्थान, वस्त्र, भोजन आदि को सम्मिलित करता था जैसा मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3 (1)(a) के अधीन प्रावधानित किया गया है। अंत में कथन किया गया था कि वह संतुष्ट होगी यदि निवास स्थान के लिए एक लाख पचास हजार रुपयों की सीमा तक का भुगतान उसे किया जाता है और 1000/- रुपया प्रतिमाह जीवनपर्यंत उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त होगा और तद्नुसार उसके पति-याची से पूरक याचिका की अनुसूची A के मुताबिक 2,10,950/- रुपयों की कुल राशि की मांग की गयी थी। किंतु मूल याचिका में उसके और उसके अवयस्क पुत्र प्रत्येक के लिए 400/- रुपया प्रतिमाह भरण-पोषण की राशि की मांग की गयी थी जिसके लिए वर्ष 1987 में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही आरंभ की गयी थी किंतु कार्यवाही दाखिल और आरंभ किए जाने के माह से उनकी प्रार्थना अनुज्ञात करते हुए दिनांक 2.12.2001 को अंतिम आदेश पारित किया गया था।

3. याची पति की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 की ओर से गवाहों को प्रस्तुत किया गया था और उनका परीक्षण किया गया था जिन्होंने निम्नलिखित अभिसाक्ष्य दिया था:-

अ॰ सा॰ 1 बीबी इरफाना परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 है। उसने अपने बयान में स्वीकार किया कि यह तथ्य नहीं है कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान याची-पति द्वारा उसे तलाक दिया गया था। उसने स्वीकार किया कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान न्यायालय के आदेशों के अधीन उसे 200/- रुपए प्रति माह की राशि का भुगतान किया जाता था। अ॰ सा॰ 2 नसरानू मोसमात परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 की माता है। उसने परिसाक्ष्य दिया कि उसकी पुत्री अपने पति के साथ केवल 10 वर्षों तक रही थी किंतु तत्पश्चात उसे अभित्यक्त कर दिया गया था। अ॰ सा॰ 3 भुनेश्वर मांझी ने याची और विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 के बीच हुए विवाह का समर्थन किया। अ॰ सा॰ 4 एस॰ के॰ लतीफ ने भी परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 के मामले का समर्थन किया किंतु याची पति द्वारा अपनी पत्नी को तलाक देने की उद्घोषणा के बारे में कोई जानकारी होने से इनकार किया। याची-पति की ओर से प्रस्तुत गवाहों में से एक ओ॰ पी॰ डब्ल्यू॰ 1 मधुसूदन गोस्वामी था जिसने कार्यवाही में परिसाक्ष्य दिया कि बीबी इरफाना का विवाह पहले किसी अन्य व्यक्ति के साथ हुआ था और अपने पहले पति से तलाक लेने के बाद ही उसका विवाह याची मो॰ मोख्तार के साथ हुआ था और कि उसने उसे इस कारण से तलाक दिया था कि उसने सह-ग्रामीण राजेंद्र ताँती के साथ अवैध संबंध विकसित कर लिया था जिसके लिए पंचायती भी की गयी थी किंतु वह पंचायती से भाग गयी थी। ओ॰ पी॰ डब्ल्यू॰ 2 मो॰ आशिक अली ने भी ओ॰ पी॰ डब्ल्यू॰ 1 के विवरण का समर्थन किया और परिसाक्ष्य दिया कि इरफाना का विवाह पहले किसी अन्य व्यक्ति के साथ हुआ था और बाद में उसका विवाह याची के साथ हुआ था और उसने लगभग 18-19 वर्ष पहले गाँव छोड़ दिया था और तत्पश्चात याची मोख्तार ने उसे तलाक दिया था। ओ॰ पी॰ डब्ल्यू॰ 3 मो॰ अब्दुल अजीज संगत था कि याची मोख्तार ने लगभग 18 वर्ष पहले अपनी पत्नी विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 को तलाक दिया जिसके लिए पंचायती की गयी थी किंतु वह पंचायती से इस कारण भाग गयी थी क्योंकि सह-ग्रामीण के साथ उसका अवैध था। ऐसा ही बयान ओ॰ पी॰ डब्ल्यू 4 मो॰ नूर आलम द्वारा भी दिया गया था।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वि॰ प॰ सं॰ 2 आयु 16 वर्ष पूरा कर लेने के चलते वयस्कता प्राप्त कर चुका था और इस प्रकार वह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन भरण-पोषण पाने का हकदार नहीं था। विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि याची की ओर से परीक्षित किए गए गवाह संगत थे कि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 सह-ग्रामीण के साथ अवैध संबंध होने के कारण जारता की दशा में रह रही थी और जब उसने स्वयं को नहीं सुधारा, याची ने उसे तलाक

दे दिया और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के प्रावधान के अधीन कोई पत्नी अपने पति से भत्ता प्राप्त करने की हकदार नहीं होगी यदि वह जारता की दशा में रह रही हो अथवा उसे पर्याप्त कारणों के बिना अपने पति का साथ छोड़ दिया हो और याची का वर्तमान मामला विधि के ऐसे प्रावधानों द्वारा पूरी तरह आच्छादित था। अंत में विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी-वि॰ प॰ सं॰ 1 ने सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष पूरक याचिका दाखिल करके निष्पक्षत: स्वीकार किया कि पति-याची द्वारा उसको तलाक दिए जाने के बाद स्थिति बदल गयी थी और वह मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रावधान के मुताबिक देन मेहर और अन्य वस्तुओं की हकदार थी।

5. विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री मनोज कुमार साह को सुना गया जिन्होंने स्वीकार किया कि वि॰ प॰ सं॰ 2 ने 16 वर्ष पूरा कर लिया है और इस तथ्य कि वह अभी भी अपनी माता और नानी पर आश्रित था, पर विचार करते हुए समुचित आदेश पारित किया जा सकता है।

6. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों को ध्यान में लेते हुए, मैं पाता हूँ कि विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने के लिए याचिका दाखिल करने की तिथि से 400/- रुपया की दर से वि॰ प॰ सं॰ 1 और 2 प्रत्येक को प्रतिमाह भरण-पोषण का भुगतान करने का निर्देश याची-पति को देते हुए दिनांक 2.12.2002 को आदेश पारित किया किंतु कोई साक्ष्य नहीं है कि कार्यवाही में अंतिम आदेश पारित किए जाने के बाद एक माह के लिए भी पति ने अपनी पत्नी और पुत्र को भरण-पोषण की राशि का भुगतान किया था या नहीं।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में लेते हुए मैं पाता हूँ कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने के लिए आवेदन दाखिल करने के माह से याची-पति पर जिम्मेदारी डालते हुए वि॰ प॰ सं॰ 1 और 2 प्रत्येक को 400/- रुपया प्रतिमाह भरण-पोषण का भुगतान अधिनिर्णीत किया गया था। मैं आगे पाता हूँ कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 द्वारा यह स्वीकार करते हुए एक पृथक याचिका दाखिल की गयी थी कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान याची-पति द्वारा उसे तलाक दिया गया था और अब बदलती स्थिति के कारण उसने मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रावधान के अधीन उसने अनुतोष इप्सित किया। पूरक याचिका में अनुसूची A को संलग्न करके उसने मांग का चार्टर प्रस्तुत किया था जिसे विशेष विधि के अधीन पुनर्विवाह तक उसके शेष जीवन काल के लिए उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इद्दत अवधि के दौरान उसके द्वारा व्यतीत की जा रही जीवन स्तर पर विचार करते हुए युक्तियुक्त और उचित भरण-पोषण उसे देने और देन मेहर राशि लौटाने के अतिरिक्त उसको लौटाए जाने की अपेक्षा की जाती थी। जहाँ तक दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन अपने पिता से भरण-पोषण का दावा करने के लिए वि॰ प॰ सं॰ 2 के अधिकार का संबंध है, मैं पाता हूँ कि यद्यपि उसने 16 वर्ष की आयु पूरा कर लिया है किंतु उसने 18 वर्ष की आयु को पूरा नहीं किया है ताकि उसे वयस्कता अधिनियम, 1875 के अधीन वयस्क घोषित किया जा सके और इस कारण से वह अधिनियम के अधीन अपनी वयस्कता प्राप्त करने तक अपने पिता-याची से भरण-पोषण पाने का हकदार है।

8. जहाँ तक वर्तमान वि॰ प॰ सं॰ 1 के दावा का संबंध है, अपनी शिकायतों के निवारण के लिए समुचित न्यायालय के समक्ष युक्तियुक्त समय के भीतर मुस्लिम महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के समुचित प्रावधानों के अधीन समुचित याचिका दाखिल करने की अनुमति उसे दी जाती है क्योंकि उसने निष्पक्षत: स्वीकार किया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान उसके पति ने उसे तलाक दिया था और इसलिए पति-पत्नी का संबंध अस्तित्वहीन हो जाता है किंतु युक्तियुक्त अवधि के भीतर विशेष अधिनियम के अधीन ऐसी याचिका दाखिल किए

जाने तक वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 याची से अनुज्ञेय बकाया के साथ 400/- रुपया प्रतिमाह की दर से भरण-पोषण पाने की हकदार होगी और वि॰ प॰ सं॰ 2 वयस्कता अधिनियम, 1875 के अधीन अपनी वयस्कता प्राप्त करने तक अपने पिता याची से अपनी भरण-पोषण राशि प्राप्त करता रहेगा।

9. इस संप्रेक्षण के साथ यह दांडिक पुनरीक्षण निपटाया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्तिगण

गुमदी बनरा

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 853 of 2003. Decided on 4th July, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 191 वर्ष 1998 में दूसरे अपर सत्र न्यायाधीश, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 21.5.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—हत्या—आजीवन कारावास—तलवार से प्रहार जिसके कारण अपीलार्थी मृतक की मृत्यु—चश्मदीद गवाह अपने अभिसाक्ष्यों में सुसंगत—उनके साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं—चश्मदीद गवाहों की साक्ष्य की दृष्टि में अभियोजन के लिए मंशा सिद्ध करना आवश्यक नहीं था—मृतक के पुत्र एवं भाई को हितबद्ध गवाह नहीं कहा जा सकता एवं उनके साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता—चिकित्सीय साक्ष्य अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य द्वारा पूर्णतः सम्पोषित—अपील खारिज।

(पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.—M/s R.C. Khatri, Satyanand Sharma, For the Appellnat; Mr. Ravi Prakash, For the Respondent.

आदेश

सत्र विचारण सं॰ 191 वर्ष 1998 (जी॰आर॰ केस॰ सं॰ 25 वर्ष 1998) में श्री सत्य एन॰ प्रसाद, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 21.5.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश से यह अपील उद्भूत है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि की गयी है एवं तदनुसार आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। अपीलार्थी को भा॰दं॰सं॰ की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्धि की गयी है तथा पांच वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। तथापि, दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया है।

2. जैसा कि सूचनादाता जिसु बनरा (अ॰सा॰ 3) की दिनांक 16.1.1998 की लिखित रिपोर्ट से उद्भूत होता है, अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि पिछली तिथि (15.1.1998) को लगभग 7:30 बजे अपराह्न में वह कैरा बनरा, मानसिंह बनरा (अ॰सा॰ 2) (मृतक का पुत्र), एवं बदुर काबरी के साथ असुरा मुर्गी पाड़ा से अपने गाँव की ओर लौट रहा था। गाँव से लगभग डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर, दो व्यक्ति अपने हाथों में तलवार लिये हुए तेजी से रंगों बासा गाँव की ओर से आये तथा उसके कजिन कैरा बनरा (मृतक) पर तलवार से प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। इसके उपरांत, सूचनादाता एवं अन्य ने कैरा बनरा को हमलावरों से बचाने का प्रयास किया, जो विजय बनरा (फरार) एवं गुमदी बनरा (अपीलार्थी)

थे। सूचनादाता एवं अन्य ने हमलावरों से कैरा बनरा को नहीं मारने का आग्रह किया, परन्तु उन्होंने नहीं सुना और वे दोनों ही कैरा बनरा को कुछ दूरी पर ले गये और उसे मार दिया। तत्पश्चात, सूचनादाता एवं अन्य भय के कारण भाग गये तथा कुछ गाँव वाले एंव गाँव के मुंडा को घटना के बारे में बताया। अगली सुबह प्रातःकाल में, वे घटना स्थल पर गये और कैरा बनरा को मृत पड़ा पाया। उन्होंने मृतक के भाई मिचराई बनरा (अ०सा० 1) को घटना के बारे में बताया तथा उसे पुलिस के यहां सूचना दर्ज करने को कहा। यह कथित किया गया है कि कैरा बनरा की पत्नी मिनी बनरा (अ०सा० 4) मृतक द्वारा उठायी गयी अभ्यापत्ति के बावजूद अपने मामा (अपीलार्थी) के घर रहा करती थी और इस कारण, उसे मार दिया गया था। लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-3) शंकर बनरा द्वारा लिखी गयी थी जैसा कि उसे सूचनादाता (अ०सा० 3) द्वारा बताया गया था, जिसने इस पर हस्ताक्षर किये थे।

3. सूचनादाता के उक्त फर्दबयान/लिखित रिपोर्ट के आधार पर, मुफस्सिल चाईबासा पुलिस थाना केस सं० 8 वर्ष 1998 दर्ज किया गया था। अन्वेषण के उपरांत, अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया था। यह प्रतीत होता है कि विजय बनरा भाग गया था एवं अपीलार्थी ने विचारण का सामना किया था तथा यथा उपरोक्त दोषसिद्ध किया गया था।

4. अ०सा० 1 मृतक के भाईयों में से एक भाई है वह एक अनुश्रुत गवाह है। अ०सा० 2 मानसिंह बनरा मृतक का पुत्र है एवं चश्मदीद गवाहों में से एक है। अ०सा० 3 जीसु बनरा एक अन्य चश्मदीद गवाह है जो मृतक का भाई है। अ०सा० 4 मिनी बनरा मृतक की पत्नी है जिसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। अ०सा० 5 डॉ० जवाहर खान है जिसने मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया था। अ०सा० 6 औपचारिक गवाह है।

5. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री आर० सी० खत्री ने निवेदन किया कि अभियोजन ने अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं किया है। उन्होंने विभिन्न आधारों पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि की आलोचना करते हुए, अन्य के साथ-साथ, निवेदन किया कि अ०सा० 3 एवं 4, जिन्हें चश्मदीद गवाह बताया गया है, के साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है और न ही अभियोजन द्वारा कोई मंशा सिद्ध की गयी है कि अपीलार्थी ने मृतक को क्यों मारा था जो उसका अपना 'भगिन दामाद' था। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क रखा कि अ०सा० 2 एवं 3 के साथ जाने वाले अन्य गवाहों, मामले के अन्वेषण पदाधिकारी; एवं शंकर बनरा, जिसने (प्रदर्श-3) फर्दबयान लिखा था को परीक्षित नहीं किया गया है।

6. दूसरी ओर, विद्वान अपर लोक अभियोजक ने अपीलार्थी की दोषसिद्धि एवं दंडादेश का समर्थन किया।

7. हम अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों से विश्वस्त नहीं हैं। चश्मदीद गवाह अपने अभिसाक्ष्यों में सुसंगत हैं तथा उनके साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य की दृष्टि में, अभियोजन के लिए मंशा सिद्ध करना आवश्यक नहीं था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट एवं डॉ० जवाहर खान (अ०सा० 5) का साक्ष्य चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य का पूर्णतः सम्पोषण करता है। यद्यपि अ०सा० 4 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था, परन्तु उसने अपनी प्रति परीक्षा में स्वीकार किया है कि मृतक अ०सा० 2 एवं 3 समेत अन्य के साथ एक साथ लौट रहा था। इस प्रकार, अ०सा० 4, जो पक्षद्रोही बन गयी थी, द्वारा भी अ०सा० 2 एवं 3 की मौजूदगी स्वीकार की गयी है। अ०सा० 4 ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है, प्रकटतः इस कारण कि उसका अपीलार्थी द्वारा पालन पोषण किया गया था। अन्वेषण पदाधिकारी की परीक्षा नहीं की जा सकी थी क्योंकि विचारण के दौरान उसकी मृत्यु हो गयी थी। अभियोजन के लिए उन सभी गवाहों की परीक्षा करना आवश्यक नहीं था जो अ०सा० 2 एवं 3 तथा मृतक के साथ थी। अ०सा० 2 एवं 3 घटना के चश्मदीद

गवाह हैं। डॉक्टर (अ०सा० 5) ने मृतक के शरीर के अति महत्वपूर्ण हिस्सों पर तीक्ष्ण धारदार हथियार द्वारा कारित चार विदीर्ण उपहतियाँ पाईं हैं जो मृतक के मृत्यु का कारण थी। चिकित्सीय साक्ष्य अ०सा०2 एवं 3 के बयानों का पूर्ण समर्थन करता है। कई व्यक्तियों में से, अ०सा० 2 एवं 3 को चश्मदीद गवाहों के तौर पर परीक्षित किया गया था, केवल इस कारण कि ये मृतक के पुत्र एवं भाई हैं, उन्हें हितबद्ध गवाह नहीं कहा जा सकता तथा इस आधार पर, उनके साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता या इन्हें त्यक्त नहीं किया जा सकता।

8. अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों का सावधानीपूर्वक अवलोकन करने एवं पक्षकारों की सुनवाई करने के उपरांत, हमारे विचार में विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि एवं दंडादेश के साथ हमारे हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं बनता है। यह अपील गुण से रहित है और खारिज किये जाने योग्य है।

तदनुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश

हृदय नारायण राय

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr.) No. 248 of 2010. Decided on 17th June, 2011.

भारत का संविधान—अनुच्छेद 226—एक ही अनुतोष के लिए दूसरी याचिका ग्रहण की जा सकती है जब आदेश को निरस्त करने के लिए अधिकारिता का आलम्ब लेने हेतु पश्चातवर्ती घटना उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करती हो इस उपरिका के साथ कि यह उच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वीक आदेश का पुनर्विलोकन करने के तुल्य नहीं है—याची बाद वाली याचिका में अधिक तथ्य प्रस्तुत करके अपने मामले का सुधार नहीं कर सकता—याचिका खारिज। (पैराएँ 6 से 8)

निर्णयज विधि.—AIR 1975 SC 1002—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. P.P.N. Roy, For the Petitioner; S.C. III, For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. दिनांक 23.6.2006 के आदेश के विरुद्ध यह रिट याचिका दाखिल की गयी है जिसके द्वारा सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है।

3. पहले भी याची दां०वि०या० सं० 1372 वर्ष 2008 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया था इसी अभिवाक् के साथ कि चूँकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202(2) के आज्ञापक प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है जो किसी मामले में परिवादी द्वारा नामजद सभी गवाहों की परीक्षा आवश्यक बनाता है, जहां अभिकथित रूप से कारित अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होता है, अतएव, संज्ञान का आदेश विधि में दूषित है। उक्त दांडिक विविध याचिका दिनांक 9 नवम्बर, 2009 के आदेश से खारिज कर दी गयी थी इस आधार पर कि याची यह दर्शाने में विफल रहा था कि पूर्वोक्त प्रावधान के गैर-अनुपालन के कारण अभियुक्त व्यक्ति को किस प्रकार हानि कारित हुई थी या कारित होने की

संभावना थी। **रोजी एवं एक अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य (AIR 2000 SC 637)** के मामले में प्रदत्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, जिस पर याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया, पर विचार करने के उपरांत इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उक्त निर्णय दिया गया था।

4. इसी अनुतोष के लिए वर्तमान याचिका दाखिल करके याची पुनः इस न्यायालय के पास आया तथा याची के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार रूप से निवेदन किया कि चूँकि विधि के आज्ञापक प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है और, अतएव, विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना विधि में दोषपूर्ण है। यह भी निवेदन किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 9 नवम्बर, 2009 के आदेश से रिट याची की पूर्वीक याचिका खारिज कर दिया था इस आधार पर कि याची यह दर्शाने में विफल रहा था कि किस हानि के कारित होने की संभावना है तथा वर्तमान याचिका में याची ने यह दर्शाने के लिए तथ्य प्रदान किये हैं कि याचिका में उल्लिखित इन्हीं तथ्यों के कारण वह गवाहों की अपरीक्षा की वजह से प्रतिकूलता से ग्रस्त होगा। याची के विद्वान अधिवक्ता ने **AIR 1975 SC 1002** में रिपोर्ट किये गये **अधीक्षक एवं विधिक मामलों के परामर्शी, पश्चिम बंगाल बनाम मोहन सिंह** के मामले में प्रदत्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आरोप को निरस्त करने के लिए पूर्वीक आवेदन का अस्वीकरण आरोप को निरस्त करने हेतु द्वितीय याचिका को ग्रहण करने के संबंध में कोई वर्जन नहीं है। पुरानी दं०प्र०सं०, 1898 के अधीन उक्त मामला विचाराधीन था। तथापि, याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, निर्णयाधार यह है कि दूसरी अपील पोषणीय है।

5. हमने याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है तथा 9 नवम्बर, 2009 के आदेश में दिये गये कारणों तथा **अधीक्षक एवं परामर्शी (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी परिशीलन किया है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मामले में, विचाराधीन मामला यह था कि कार्यवाहियों को निरस्त करने हेतु एक याचिका दाखिल की गयी थी इस आधार पर कि दांडिक कार्यवाही के कारण न्यायालय की आदेशिका का दुरुपयोग हुआ था। उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया था इस आधार पर कि उठाये गये बिंदु तथ्य के कतिपय प्रश्नों पर निर्भर थे जिन्हें तथ्यों के न्यायालय द्वारा साक्ष्य पर अभिनिश्चित किया जाना था और, अतएव, उच्च न्यायालय ने उक्त मामले में याची के विरुद्ध कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं किया। जब याचिका पुनः प्रस्तुत की गयी थी तथा जब मामला सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि:–

> *''अतएव, उच्च न्यायालय को आवश्यक रूप से अपनी अंतर्निहित शक्तियों का इस्तेमाल करना है समय के उस विशिष्ट बिंदु पर प्रचलित स्थिति को ध्यान में रखकर जब इसकी अंतर्निहित अधिकारिता का आलम्ब लेने की इप्सा की जाती है।''*

यह भी सम्परीक्षित किया गया कि:–

> *''यह देखना कठिन है कि इन परिस्थितियों में किस प्रकार कभी भी ऐसा तर्क दिया जा सकता था कि पश्चातवर्ती आवेदन करके उच्च न्यायालय से जो करने की मांग की जा रही थी वह पूर्वीक आवेदन पर उसके द्वारा किये गये आदेश का पुनर्विलोकन करने या संशोधित करने की मांग थी।''*

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी सम्परीक्षित किया कि:–

> *''उच्च न्यायालय उन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी सं० 1 एवं 2 के पश्चातवर्ती आवेदन को ग्रहण करने तथा इस पर विचार करने का हकदार था कि क्या उस समय प्राप्त होने*

वाले तथ्यों एवं परिस्थितियों में प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध कार्यवाही का जारी रहना न्यायालय के आदेशिका का एक दुरुपयोग था या न्याय के उद्देश्य प्राप्त करने हेतु इसका निरस्तीकरण आवश्यक था।''

मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि:–

''प्रत्यर्थी सं॰ 1 एवं 2 के पश्चातवर्ती आवेदन के समय प्राप्त होने वाले तथ्य एवं परिस्थितियां उनसे स्पष्ट रूप से भिन्न थीं जो पहले प्रत्यर्थी के पूर्वीक आवेदन के समय थी क्योंकि, पहले प्रत्यर्थी के पूर्वीक आवेदन के अस्वीकरण के बावजूद, अभियोजन दांडिक मामले में कोई प्रगति करने में विफल रहा था यद्यपि यह काफी पहले 1965 में दाखिल किया गया था और दांडिक मामला डेढ़ वर्ष से अधिक अवधि तक ज्यों–का–त्यों पड़ा रहा था।''

6. माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का एक पठन स्पष्टत: इंगित करता है कि समान अनुतोष के लिए द्वितीय याचिका ग्रहण की जा सकती है जब पश्चातवर्ती घटना आदेश का निरस्तीकरण करने हेतु अधिकारिता का आलम्ब लेने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करती हो इस उपरिका के साथ कि यह उच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वीक आदेश के पुनर्विलोकन के तुल्य नहीं हो। इस मामले में, रिट याची द्वारा विनिर्दिष्ट मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए उठाया गया था कि विधि के आज्ञापक प्रावधान का अनुपालन नहीं किया गया है, जिस पर इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया था एवं सुसंगत पैराओं को उत्कथित किया गया है तथा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की सहायता लेने के उपरांत, इस न्यायालय ने संपरीक्षित किया कि प्रावधान का मात्र गैर–अनुपालन सभी मामलों में आगे की कार्यवाही को दूषित नहीं करेगा जैसा कि ऐसी ही परिस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिकथित किया गया है और इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि याची उस प्रतिकूलता को दर्शाने में विफल रहा था जो पूर्वोक्त प्रावधान के गैर–अनुपालन के कारण अभियुक्त व्यक्ति द्वारा कारित हुई थी या कारित किये जाने की संभावना थी।

7. वे तथ्य एवं परिस्थितियां, जो उस समय थी जब इस न्यायालय द्वारा पूर्वीक याचिका का निर्णय किया गया था, आज भी वहीं है कि कुछ गवाहों को परीक्षित नहीं किया गया था एवं याची उसे हुई प्रतिकूलता को दर्शाने में विफल रहा था, और अब वह पश्चातवर्ती याचिका में और तथ्य प्रस्तुत करके बाद में अपने मामले को सुधार नहीं सकता जो सभी औचित्यता के विरुद्ध होगा, इस तथ्य की दृष्टि में कि वस्तुत:, इसके द्वारा इस न्यायालय को घोषित करना होगा, कि याची को प्रतिकूलता कारित होगी जिसे कोई प्रतिकूलता दर्शाने में विफल पाया गया था। स्वीकार्यत:, यह कुछ और नहीं बल्कि बाद में दाखिल याचिका में उच्च न्यायालय की सहवर्ती पीठ द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष को चुनौती देने का एक अन्य मार्ग है। वस्तुत:, वर्तमान रिट याचिका में यथा जिरह किये गये सभी तथ्य एवं परिस्थितियां एवं अन्य पहलू पूर्वीक याचिका में याची को पहले से ही उपलब्ध थे।

8. अतएव, मैं नहीं पाता हूँ कि वर्तमान याचिका ग्रहण की जा सकती है। अतएव, रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति

अडोर वेल्डिंग लिमिटेड

बनाम

श्री बी॰ गोप

L.P.A. No. 234 of 2009. Decided on 16th May, 2011.

(क) भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष को रिट अधिकारिता में भी सम्यक् सम्मान दिए जाने की आवश्यकता है और एल॰ पी॰ ए॰ के अधीन अधिकारिता संकुचित है–किंतु, यदि वर्तमान मामले को अनदेखा किया जाता है, तथ्य का निष्कर्ष रिट न्यायालय अथवा एल॰ पी॰ ए॰ न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है। (पैरा 6)

(ख) बिहार दुकान एवं स्थापन अधिनियम, 1953—धारा 4—कर्मकार–सेवा समाप्ति–श्रम न्यायालय को 25% पिछली मजदूरी के साथ पुनर्बहाली करने का निर्देश–याची विक्रय अभियंता के रूप में कार्यरत था किंतु प्रबंधक का काम कर रहा था–1953 के अधिनियम के लाभों से अपवर्जन ऊपर से हो सकता है और न कि नीचे के पर्यवेक्षकों के प्रबंधकों से–चूँकि प्रत्यर्थी प्रबंधक के कार्य का निर्वहन कर रहा था और पर्यवेक्षण का काम भी कर रहा था, वह दर्जा सं॰ 1 धारित कर रहा था और 1953 के अधिनियम के अधीन आच्छादित नहीं था–आक्षेपित आदेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 8, 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–Mr. K.P. Choudhary, For the Appellant; Mr. S.L. Agrawal, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी, नियोक्ता विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 16 अप्रिल, 2009 के आदेश से व्यथित है, जिसके द्वारा बी॰ एस॰ केस सं॰ 5 वर्ष 1995 में, श्रम न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा दिनांक 29 नवम्बर, 2006 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए रिट याचिका सं॰ डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 856 वर्ष 2007 को खारिज कर दिया गया है।

3. संक्षेप में, तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी-रिट याची ने दावा किया कि वह बिहार दुकान एवं स्थापन अधिनियम, 1953 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 4 की उपधारा (2) के अधीन दी गयी परिभाषा के अधीन कर्मकार है और उसकी सेवाओं को अवैध रूप से समाप्त कर दिया गया है। अत:, याची ने दिनांक 15 फरवरी, 1995 के सेवा समाप्ति के आदेश को चुनौती दिया। साक्ष्य के बाद, श्रम न्यायालय, जमशेदपुर ने अपीलार्थी का अभिवचन कि प्रत्यर्थी प्रबंधकीय पद धारित कर रहा था, को अस्वीकार करने के बाद और अपीलार्थी के अभिवचन कि सेवा समाप्ति के पहले याची को सम्यक् मुआवजा का भुगतान किया गया था, को भी अस्वीकार करने के बाद प्रत्यर्थी-दावेदार का दावा अनुज्ञात किया। श्रम न्यायालय ने अपीलार्थी को रिट याची-प्रत्यर्थी को सेवा में पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया और 25 प्रतिशत बकाया मजदूरी अधिनिर्णीत किया।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष अपीलार्थी का प्रतिवाद था कि प्रत्यर्थी 1953 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (2) की परिभाषा में कर्मकार नहीं था क्योंकि वह प्रबंधक के कार्य और कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था और जमशेदपुर स्थित संगठन में दर्जा सं॰ 2 धारित कर रहा था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान प्रत्यर्थी-परिवादी के बयान की ओर आकृष्ट किया और इंगित किया कि प्रत्यर्थी-परिवादी ने अपने बयान में स्वीकार किया कि जमशेदपुर कार्यालय में वरीयतम अधिकारी अभियंता थे और अभियंताओं में से प्रत्यर्थी वरिष्ठतम था। उसने स्वीकार किया कि उसको अपीलार्थी के डीलरों को प्रमाण पत्र जारी करना था और वह न केवल बैंक खाता ऑपरेट करने के लिए प्राधिकृत था बल्कि उसने स्वयं अपने हस्ताक्षर द्वारा बैंक खाता खोला था। यह निवेदन भी किया गया है कि अपीलार्थी ने स्वीकार किया कि जमशेदपुर स्थित संगठन में 17 कर्मचारीगण थे और धारा 4 की उपधारा (2) सह-पठित

अनुसूची के क्रमांक 5 के मुताबिक अपीलार्थी के दो वरिष्ठतम व्यक्ति 1953 के अधिनियम के अधीन कर्मकार की परिभाषा में सम्मिलित नहीं किए जा सकते थे।

5. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि यह शुद्धत: तथ्य का प्रश्न था कि क्या प्रत्यर्थी प्रबंधकीय कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था और तथ्य का यह निष्कर्ष श्रम न्यायालय द्वारा साक्ष्य के अधिमूल्यन के बाद दर्ज किया गया है और इसे एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा मान्य ठहराया गया है। अत:, लेटर्स पेटेन्ट के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, खंडपीठ तथ्य के ऐसे निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। यह निवेदन भी किया गया है कि ऊपर निर्दिष्ट अनुसूची में दी गयी प्रबंधक की अनन्य परिभाषा पूर्णत: अस्पष्ट है और इसलिए कर्मकार को लाभ मिलना चाहिए और यह निवेदन भी किया गया है कि अपीलार्थी कोई ऐसा तथ्य सिद्ध नहीं कर सका था जिसके आधार पर यह एकत्रित किया जा सके कि केवल दो वरीयतम व्यक्तियों को उनको प्रबंधकीय पद पर कार्यरत व्यक्तियों के रूप में मानते हुए कर्मकार की परिभाषा से अपवर्जित किया जा सकता था। यह निवेदन भी किया गया है कि साक्ष्य, जिन पर अपीलार्थी द्वारा विश्वास किया गया है, इस तथ्य को स्थापित नहीं करते हैं कि प्रत्यर्थी प्रबंधकीय कार्य का निर्वहन कर रहा था। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थी का न तो कार्यालय पर नियंत्रण था और न ही वह अनुशासनिक प्राधिकारी था और न ही उसके पास अन्य समस्त कर्मचारीगण के ऊपर पर्यवेक्षीय प्राधिकार था। अत:, प्रत्यर्थी के अभिकथित स्वीकृतियों से भी यह स्थापित नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी प्रबंधक के कार्य का निर्वहन कर रहा था अथवा प्रबंधकीय श्रेणी की प्रकृति का पद धारित कर रहा था।

6. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है। यह सत्य है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट अधिकारिता में भी श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष को उचित सम्मान देने की आवश्यकता है और लेटर्स पेटेन्ट के अधीन अधिकारिता संकुचित है। किंतु जहाँ तक विधि का संबंध है, यह भी सुनिश्चित है कि तथ्य के निष्कर्ष में कब हस्तक्षेप किया जा सकता है। यदि प्रासंगिक साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है अथवा निष्कर्ष पर आने के लिए अप्रासंगिक साक्ष्य पर विचार किया गया है, तब तथ्य का वह निष्कर्ष तथ्य का निष्कर्ष नहीं है क्योंकि यह प्रासंगिक तथ्यों पर अविचार और अप्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने के कारण दूषित हो जाता है। यदि वर्तमान मामले को अनदेखा किया जाता है और निष्कर्ष दर्ज किया जाता है, तब भी तथ्य का निष्कर्ष रिट न्यायालय अथवा लेटर्स पेटेन्ट अपील की सुनवाई कर रहे न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है। अत:, हमें पता लगाना है कि क्या इस मामले में अपीलार्थी द्वारा कोई ऐसा मामला बनाया गया है जो तथ्य के ऐसे निष्कर्ष में इस न्यायालय के हस्तक्षेप को आवश्यक बनाता है।

7. विद्वान एकल न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया है कि स्वीकृत रूप से, 17 कर्मचारीगण थे एवं जिसका 10% दो होता है और नियोक्ता-अपीलार्थी यह स्थापित करने में विफल रहा कि प्रत्यर्थी-कर्मचारी दर्जा सं॰ 2 धारित कर रहा था, जो अभिलेख पर उपलब्ध तथ्य और प्रत्यर्थी की स्वीकृति के विपरीत है। श्रम न्यायालय, जमशेदपुर के समक्ष शपथ पर अपने बयान में प्रत्यर्थी ने स्वीकार किया है कि जमशेदपुर कार्यालय में वरीयतम व्यक्तियों को विक्रय अभियंता के रूप में पदनामित किया जाता था और उसके साथ वहाँ तीन विक्रय अभियंता थे। तब उसने विनिर्दिष्टत: स्वीकार किया है कि समस्त विक्रय अभियंताओं के बीच वह वरीयतम था। तब प्रत्यर्थी ने कथन किया कि वह बैंक खाता खोलने के लिए प्राधिकृत था और उसने जमशेदपुर में अपीलार्थी का बैंक खाता खोला था। उसने यह भी स्वीकार किया कि वह अपीलार्थी-कंपनी की ओर से चेक पर हस्ताक्षर करने के लिए प्राधिकृत था और उसके हस्ताक्षर के साथ

के॰ एन॰ मूर्ति के एक और हस्ताक्षर की आवश्कता थी, अत:, उसने स्वीकार किया कि वह कंपनी का बैंक खाता भी संभाल रहा था। तब प्रत्यर्थी ने अपने बयान में स्वीकार किया कि उसने स्वयं अपने हस्ताक्षर में कंपनी के डीलरों को प्रमाण पत्र जारी किया किंतु उसने स्पष्ट किया कि उन प्रमाण पत्रों को मुख्यालय, जो बॉम्बे में अवस्थित था, के निर्देश के मुताबिक जारी किया गया था।

8. उक्त कारणों की दृष्टि में, प्रत्यर्थी न केवल विक्रय अभियंता के रूप में कार्यरत था बल्कि प्रबंधक का काम भी कर रहा था। प्रबंधक का कर्तव्य क्या है अथवा प्रबंधकीय पद की प्रकृति क्या है, यह मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रबंधक के पास कर्मचारीगण को नियुक्त करने अथवा हटाने का अधिकार होना चाहिए जो शक्ति नियुक्ति प्राधिकारी में निहित है। प्रबंधकीय कार्य अनेक प्रकार के कार्यों से गठित होता है और संगठन में अनेक व्यक्ति अथवा उनके मजदूर हो सकते हैं और एक अथवा कुछ प्रबंधकीय कार्यों का निर्वहन कर सकते हैं जबकि नियुक्ति प्राधिकारी केवल एक ही हो सकता है। उक्त कारणों की दृष्टि में, हम प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में कोई सार नहीं पाते हैं चूँकि प्रत्यर्थी नियुक्त करने और हटाने के लिए प्राधिकृत नहीं था, अत: वह प्रबंधक के रूप में कार्यरत नहीं था। यह सुनिश्चित विधि है कि कोई अपना मामला स्वयं अपने साक्ष्य द्वारा अथवा विरोधी के साक्ष्य द्वारा सिद्ध कर सकता है। इस मामले में, दावेदार प्रत्यर्थी था और उसके अपने साक्ष्य ने सिद्ध किया कि वह कर्मचारी मात्र का कर्तव्य नहीं कर रहा था बल्कि प्रबंधक के कर्तव्य का निर्वहन भी कर रहा था।

9. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एक अन्य प्रश्न 1953 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (2) सह-पठित अनुसूची I का क्रमांक 5 की व्याख्या के संबंध में है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

''धारा 4 की उपधारा (2) का पठन निम्नलिखित है:-

इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद, अनुसूची के तृतीय कॉलम में विनिर्दिष्ट उसके प्रावधान द्वितीय कॉलम में तत्सम प्रविष्टि में निर्दिष्ट स्थापन, कर्मचारियों और अन्य व्यक्तियों पर लागू नहीं होंगे:

परन्तु यह कि राज्य सरकार राज्य के एक अथवा अधिक क्षेत्र के संबंध में अनुसूची में प्रविष्टियों में से किसी को अधिसूचना द्वारा जोड़, लोपित अथवा परिवर्तित कर सकती है और ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन पर अनुसूची के किसी भी कॉलम में प्रविष्टियाँ तद्नुसार संशोधित समझी जाएँगी।

अधिनियम की अनुसूची I के क्रमांक 5 का पठन निम्नलिखित है:-

क्रम सं०	*कर्मचारीगण स्थापन या अन्य व्यक्ति*	*अधिनियम के प्रावधान*
5.	*पाँच से अधिक व्यक्तियों को नियोजित करने वाले स्थापन में प्रबंधकीय अथवा पर्यवेक्षीय चरित्र के पदों को धारित करने वाले व्यक्ति परन्तु यह कि किसी स्थापन में कर्मचारीगण की कुल संख्या के दस प्रतिशत से अधिक को इस प्रकार छूट नहीं दी जाएगी:*	*सभी प्रावधान*
	परन्तु यह कि जहाँ किसी स्थापन में कर्मचारीगण	

की कुल संख्या का दस प्रतिशत एक से कम होता है, ऐसा अंश एक बना दिया जाएगा।

10. उक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि परिभाषा में कर्मकार समुदाय के व्यापक हित में प्रयोजनपूर्वक अपवर्जन खंड बनाया गया है ताकि 1953 के अधिनियम के लाभ से उनको बाहर निकालने के लिए कर्मचारीगण की बड़ी संख्या को नियोक्ता प्रबंधकों का नाम अथवा कार्य नहीं दे सकता है। अत:, प्रावधानित किया गया है कि जहाँ किसी स्थापन में प्रबंधकीय हैसियत से अथवा पर्यवेक्षक की हैसियत से अधिक व्यक्ति कार्य कर रहे हैं, तब जहाँ पाँच से अधिक कर्मचारीगण हैं, तब किसी स्थापन में कर्मचारीगण की कुल संख्या के दस प्रतिशत से अधिक को छूट नहीं दी जाएगी। इस प्रकार, इस प्रावधान द्वारा उन व्यक्तियों, जो प्रबंधक के पद पर अथवा पर्यवेक्षक के पद पर काम कर रहे हैं, को भी 1953 के अधिनियम का लाभ दिया जा सकता है। प्रकटत:, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों में बल हो सकता है कि 1953 के अधिनियम की अनुसूची I के क्रमांक 5 के कॉलम में प्रयुक्त भाषा में इस कारण अस्पष्टता है कि यह प्रावधानित नहीं किया गया है कि उस दस प्रतिशत में से किन व्यक्तियों, जिन्हें प्रबंधक अथवा पर्यवेक्षक का नाम दिया गया है, को अपवर्जित किया जाएगा किंतु तार्किक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यक्ति जिन्हें आच्छादित करने की आवश्यकता है, के पास कमतर लाभदायी दर्जा होने की अपेक्षा की जाती है। यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि अपवर्जन ऊपर से शुरू हो सकता है ताकि उनको 1953 के अधिनियम में आच्छादित किया जा सके और नीचे स्थित व्यक्तियों, जो प्रबंधक अथवा पर्यवेक्षक के रूप में कार्यरत हैं, को अपवर्जित करना होगा। अधिक लाभों को पाने वाले और बेहतर हैसियत में कार्यरत व्यक्तियों को आच्छाछित किया जाएगा किंतु निम्नतर व्यक्तियों को अपवर्जित किया जाएगा, यह व्याख्या नहीं की जा सकती है। यह सुनिश्चित विधि है कि विधि के प्रावधानों पर सामंजस्यपूर्वक विचार करने और अधिनियम के लक्ष्य और उद्देश्य को परिपूर्ण करने की आवश्यकता है। उक्त कारणों की दृष्टि में, भले ही 1953 के अधिनियम की अनुसूची I के क्रमांक 5 में विनिर्दिष्टत: प्रावधानित नहीं किया गया है, तब भी 1953 के अधिनियम के लाभ से अपवर्जन ऊपर से हो सकता है और न कि प्रबंधकों अथवा पर्यवेक्षकों के निचले स्तर से। उक्त कारणों की दृष्टि में, चूँकि प्रत्यर्थी प्रबंधक के कार्य का निर्वहन कर रहा था और पर्यवेक्षीय कार्य भी कर रहा था और इस तथ्य को प्रत्यर्थी द्वारा अपने बयान में स्वीकार किया गया है और चूँकि वहाँ 17 कर्मचारीगण थे और दो उच्चतर दर्जा में थे, उनमें से प्रबंधकीय पद पर कार्यरत व्यक्तियों को 1953 के अधिनियम के प्रवर्तन से अपवर्जित किए जाने की आवश्यकता है, तब प्रत्यर्थी दर्जा सं॰ 1 धारित कर रहा था और दर्जा सं॰ 2 से कम तो कभी नहीं। किसी भी सूरत में, वह संगठन में वरीयता में अन्य विक्रय अभियंताओं के नीचे नहीं हो सकता है। अत:, प्रत्यर्थी, जो जमशेदपुर में अपीलार्थी के स्थापन में दर्जा सं॰ 1 अथवा 2 धारित कर रहा था, 1953 के अधिनियम के अधीन आच्छादित नहीं था और इसलिए, तथ्य का निष्कर्ष अभिलेख को देखते ही प्रकट गलती से पीड़ित है और श्रम न्यायालय एवं विद्वान एकल न्यायाधीश प्रत्यर्थी के तात्विक स्वीकृतियों का अधिमूल्यन करने में विफल रहे।

11. उक्त की दृष्टि में, इस लेटर्स पेटेन्ट अपील को अनुज्ञात किया जाता है। रिट याचिका खारिज करने वाला विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 16 अप्रिल, 2009 का आदेश और श्रम न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29 नवम्बर, 2006 का आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल परिवाद खारिज किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

आशीष कुमार गुप्ता उर्फ आशीष गुप्ता

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 616 of 2010. Decided on 14th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 376/323/504—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—बलात्कार–उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति–विवाह के आश्वासन पर याची द्वारा यौन संबंध स्थापित किया गया–जब याची ने पहली बार सूचक के साथ जबरन शारीरिक संबंध बनाया, वह अवयस्क थी–इस चरण पर यह विनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि क्या याची ने जबरन सूचक के साथ शारीरिक संबंध बनाया और क्या सूचक अवयस्क थी और उसकी सहमति का विधि की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है–यह पूर्णतः विचारण का मामला है–न्यायालय आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं है–आवेदन खारिज। (पैरा 8)

निर्णयज विधि.–1977 SCC (Cr.) 533; AIR 1982 SC 1297—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s. Nilesh Kumar, Vijayant Verma, For the Petitioner; Mr. P.K. Appu, For the State; M/s Mahesh Tiwary, Anjana Tiwari, For the Opp. Party No.2.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने यह दांडिक पुनरीक्षण आवेदन अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ॰ टी॰ सी॰ VII राँची द्वारा पारित दिनांक 2.6.2010 के आदेश को अपास्त करने के लिए दाखिल किया है, जिसके द्वारा अवर न्यायालय ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 227 के अधीन उन्मोचन के लिए याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 गुंजा जायसवाल ने महिला पुलिस के पास लिखित रिपोर्ट दाखिल किया कि वह 23 वर्ष की है और ओम प्रकाश जायसवाल की पुत्री है और कोकर, राँची की निवासी है। विगत छह वर्षों से याची के साथ उसकी अंतरंगता थी और उसने जबरन उसके साथ यौन संबंध स्थापित किया था। आगे कथन किया गया है कि दिनांक 20.4.2009 को भी विवाह के आश्वासन पर याची द्वारा उसके साथ यौन संबंध स्थापित किया गया था। दिनांक 21.4.2009 को याची ने सूचक को सूचित किया कि उसके परिवार के सदस्य उसका विवाह एक अन्य लड़की के साथ दिनांक 23.4.2009 को करने जा रहे हैं। इस पर, सूचक उनके पास गयी और आपत्ति किया जिस पर दुल्हन पक्ष ने याची के साथ विवाह करने से इनकार कर दिया और वहाँ से चले गए। तत्पश्चात्, याची के परिवार के सदस्यों ने सूचक को सूचित किया कि वे उसके साथ याची का विवाह करने को तैयार हैं और दिनांक 28.6.2009 को सूचक और उसकी माता को अपने घर बुलाया। किंतु विवाह संपन्न करने के बारे में बात करने के बजाय, उन्होंने सूचक और उसकी माता को धमकी दिया कि यदि उसने अथवा उसकी माता ने कभी भी विवाह के लिए कहा, उन्हें गंभीर परिणामों का सामना करना पड़ेगा। उन्होंने सूचक पक्ष को जान से मारने की धमकी दी और कहा कि पुलिस भी उन्हें बचा नहीं पाएगी। तत्पश्चात्, उन्होंने सूचक और उसकी माता को अपने घर से निकाल दिया। यह भी अभिकथित किया गया है कि दिनांक 20.4.2009 को याची सूचक को विवाह करने के लिए रजरप्पा

मंदिर ले गया किंतु यद्यपि याची ने विवाह करने का नाटक किया किंतु उक्त विवाह के संबंध में उसे कोई प्रमाण पत्र नहीं दिया गया था। किंतु विवाह के बहाने, याची ने अपने मित्र के घर में सारी रात उसके साथ संभोग किया। पूर्वोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, औपचारिक प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और याची के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376/323/504 के अधीन मामला दर्ज किया गया है। अन्वेषण के बाद पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल किया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी की विषय वस्तु से बिल्कुल स्पष्ट है कि याची के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 376 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है। दूसरी ओर, यह दर्शाता है कि सूचक ने वर्षों तक शारीरिक सुख के लिए प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दी और केवल याची द्वारा उसके साथ विवाह करने से इनकार करने पर वर्तमान मामला दर्ज किया। आगे प्रतिवाद किया गया है कि स्वयं अपने कथन के मुताबिक सूचक वयस्क है और स्वीकृत रूप से किसी भय अथवा धमकी के अधीन शारीरिक संबंध के लिए सहमति नहीं दी गयी है। अत:, याची के विरुद्ध बलात्कार का मामला नहीं बनता है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि सूचक के बयान के अनुसार उसकी आयु 23 वर्ष है, अत: प्राथमिकी दर्ज किए जाने के समय पर अथवा अभिकथित घटना के समय पर वह अवयस्क नहीं है। डॉक्टर जिन्होंने दिनांक 28.7.2009 को सूचक का परीक्षण किया, की रिपोर्ट ने भी मत दिया कि ''रेडियोलॉजिकल तौर पर व्यक्ति 21-22 वर्ष की आयु का है।'' इस संदर्भ में उन्होंने **जय माला बनाम गृह सचिव, जम्मू एवं कश्मीर सरकार एवं अन्य, AIR 1982 SC 1297** में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया है:-

> *"9. .... किंतु यह दृष्टतापूर्ण है और कोई भी न्यायिक ध्यान ले सकता है कि रेडियोलॉजिकल परीक्षण द्वारा अभिनिश्चित आयु में गलती का मर्जिन दो वर्ष कम-ज्यादा होता है .....''*

विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि अभियोक्त्री वयस्क, सुशिक्षित थी और यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि वह तथ्य के भ्रम के अधीन थी। अत:, केवल उसकी मुक्त सहमति के साथ आशीष यौन संभोग कर सकता है और इस प्रकार याची के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनाया जा सकता है।

6. सूचक के विद्वान अधिवक्ता श्री महेश तिवारी ने निवेदन किया है कि यह स्वीकार करते हुए भी कि वह वयस्क है, किंतु लिखित रिपोर्ट के अनुसार याची ने विगत छह वर्षों से जबरन उसका बलात्कार किया है। अत:, स्वीकृत रूप से उसके साथ तब बलात्कार किया गया जब वह अवयस्क थी। अत:, विधि की दृष्टि में, उसकी सहमति का कोई मूल्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने निवेदन किया है कि अन्वेषण में यह भी आया है कि याची ने सूचक के साथ जबरन शारीरिक संबंध बनाया है।

7. सूचक के विद्वान अधिवक्ता श्री महेश तिवारी ने अपने मामले के समर्थन में अनेक निर्णयों को उद्धृत किया है। उद्धरणों में से एक **बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह, 1977 SCC (Cr.) 533** है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:-

> *''इस चरण पर न्यायालय को यह देखना नहीं है कि क्या अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है अथवा क्या विचारण निश्चय ही उसकी दोषसिद्धि में समाप्त होगा। अभियुक्त के विरुद्ध मजबूत संदेह, यदि मामला संदेह के क्षेत्र में बना रहता है, विचारण के समापन पर उसके दोष के प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता है। किंतु आरंभिक चरण पर, यदि मजबूत संदेह है जो न्यायालय को यह सोचने की ओर ले जाता*

है कि यह उपधारित करने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तब न्यायालय को यह कहने की छूट नहीं है कि अभियुक्त के विरुद्ध अग्रसर होने का कोई आधार नहीं है। अभियुक्त के दोष की उपधारणा, जिसे आरंभिक चरण पर किया जाना है, फ्रांस में दांडिक मामलों के विचारण को शासित करने वाली विधि के अर्थ में नहीं है जहाँ अभियुक्त को तब तक दोषी उपधारित किया जाता है जब तक विपरीत सिद्ध नहीं कर दिया जाता है। किंतु यह केवल प्रथम दृष्टया विनिश्चित करने के प्रयोजन से है कि क्या न्यायालय को विचारण के साथ अग्रसर होना चाहिए या नहीं। यदि साक्ष्य, जिसे अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने के लिए देने का प्रस्ताव अभियोजक देता है, प्रति परीक्षण में चुनौती दिए जाने अथवा बचाव साक्ष्य यदि हो, द्वारा खंडित किए जाने के पहले स्वीकार भी कर लिया जाता है, जो यह दर्शा नहीं सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया, तब विचारण के साथ अग्रसर होने का कोई पर्याप्त आधार नहीं होगा, यह उपदर्शित करने के लिए कि एक अथवा दूसरे निष्कर्ष की ओर क्या ले जाएगा, परिस्थितियों की संपूर्ण सूची न तो संभव है और न ही परामर्श योग्य। हम विधि की भिन्नता को एक और उदाहरण द्वारा चित्रित कर सकते हैं। यदि अभियुक्त के दोष अथवा निर्दोषिता के प्रति तराजू का पलड़ा विचारण के समापन पर संतुलित है, संदेह के लाभ के सिद्धांत पर मामला उसकी दोषमुक्ति में समाप्त होगा। किंतु, यदि दूसरी ओर, धारा 227 अथवा धारा 228 के अधीन आदेश पारित करने के आरंभिक चरण पर यदि ऐसा है, तब ऐसी स्थिति में सामान्यतः और साधारणतः आदेश धारा 228 के अधीन, न कि धारा 227 के अधीन पारित करना होगा।''

8. पक्षों द्वारा किए निवेदनों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करते हुए, मैं पाता हूँ कि अन्वेषण पूरा करने के बाद याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। केवल यही नहीं, गवाहों के बयान जो केस डायरी में आए हैं, स्पष्टत: दर्शाते हैं कि याची ने विवाह के आश्वासन पर विगत कुछ वर्षों से सूचक के साथ शारीरिक संबंध बनाया था। उक्त गवाहों ने सूचक द्वारा दर्ज प्राथमिकी की विषय वस्तु का भी समर्थन किया है। उन्होंने आगे कथन किया कि याची सूचक को रजरप्पा मंदिर ले गया और उसके साथ विवाह करने का नाटक किया और उसके साथ अपने मित्र के घर में रात भर संभोग किया। इसके अतिरिक्त, अभियोजन मामले के अनुसार, जब याची ने पहली बार सूचक के साथ शारीरिक संबंध बनाया था, वह अवयस्क थी। गवाहों के बयान में यह भी आया है कि याची ने जबरन सूचक के साथ शारीरिक संबंध बनाया। अत:, इस चरण पर यह विनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि क्या याची ने जबरन सूचक के साथ शारीरिक संबंध बनाया था या नहीं और समय के उक्त बिंदु पर सूचक अवयस्कीय नहीं और अवयस्क होने के चलते विधि की दृष्टि में उसकी सहमति का कोई मूल्य नहीं है। यह पूरी तरह विचारण का मामला है। इन पहलुओं पर विचार करते हुए, मैं आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं हूँ, तद्नुसार पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

लाल रंजन नाथ सहदेव

बनाम

झारखंड राज्य

Cr.M.P. No. 1190 of 2008. Decided on 13th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 147/148/149/364A/387/414/201/212—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 190 एवं 482—फिरौती के लिए अपहरण–निर्मुक्ति के बदले बंदूक और नगद देने की मांग–जब एक बार अभिकथित अपराध के दंड की कठोरता के अनुसार मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था, सी॰ जे॰ एम॰ पद कार्य निवृत्त हो जाने के चलते संज्ञान का आदेश आगे पारित नहीं कर सकता है–सी॰ जे॰ एम॰ ने प्रक्रिया की गलती की जो उपचार योग्य है–आक्षेपित आदेश अपास्त जिसके द्वारा चौथी बार अपराध का संज्ञान लिया गया था–यह समझा जाएगा कि अपराध का संज्ञान पहले ही सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा लिया जा चुका था–उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में विभिन्न तिथियों पर अपराध का संज्ञान लिए जाने में समस्त अनियमितताओं को दूर किया गया–याचिका खारिज। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.–M/s Jitendra S. Singh, K.K. Mishra, For the Petitioner; Mr. H.K. Shikarwar, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने सी॰ जे॰ एम॰, लोहरदग्गा के समक्ष लंबित लोहरदग्गा पी॰ एस॰ केस सं॰ 57 वर्ष 2000, जी॰ आर॰ सं॰ 153 वर्ष 2000 के तत्सम, से उद्‌भूत अपनी संपूर्ण दांडिक कार्यवाहियों के अभिखंडन के लिए और दिनांक 30.11.2007 के आदेश, जिसके द्वारा याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/148/149/364A/387/414/201/212 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, के अभिखंडन के लिए भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतनिर्हित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक विजय गोपाल दत्ता दिनांक 20.5.2000 को प्रात: लगभग 4.30 बजे प्रात: भ्रमण के लिए अकेला अपने घर से निकला था और ऐसे भ्रमण के दौरान, वह किसी बिरेन्द्र मित्तल के दरवाजे पर पहुँचा, उसकी घंटी दबायी और सड़क पर वापस आ गया। जब श्री मित्तल नहीं आए, वह हरिजन विद्यालय की ओर गया जहाँ उसने रोड के किनारे लगाए गए ट्रेकर को रूका हुआ देखा और छह व्यक्तियों को उसमें बैठा पाया। जब सूचक विजय गोपाल दत्ता सड़क पर आगे बढ़ा, ट्रेकर उसके पीछे आया एवं वह जैसे ही किसी डॉ॰ एन॰ के॰ सिन्हा के घर के निकट पहुँचा, दो दोषी ट्रेकर से नीचे उतरे तथा उसे ट्रेकर के भीतर खींच लिया और जंगल की ओर ले गए। दुष्ट 24-25 वर्ष की आयु के थे जिन्होंने अपना चेहरा मफलर और शाल से छुपा रखा था और वे देशी पिस्तौल और अन्य हथियारों से लैस थे। बंदूक और कारतूस के रूप में फिरौती की मांग की गयी थी। मांग पूरी न करने पर उसे जान से मारने की धमकी दी गई थी। उसे मध्यरात्रि तक बंद रखा गया था और केवल उसके स्टाफ रास बिहारी डे द्वारा उनको डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बंदूक और कारतूस दिए जाने के बाद ही उसको रिहा किया गया था। वह अगले दिन प्रात: लगभग 3.40 बजे अपने घर वापस आया। सूचक के बयान के आधार पर, दिनांक 21.5.2000 को अज्ञात दोषियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/148/149/364A/387/386/368 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए लोहरदग्गा पी॰ एस॰ केस सं॰ 57 वर्ष 2000 संस्थापित किया गया था। अन्वेषण के क्रम में, चान्हो पुलिस ने तीन व्यक्तियों अर्थात् जहीर अंसारी, मेराज आलम और मेहंदी हसन को गिरफ्तार किया और उनके कब्जे से एक डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बंदूक भी बरामद किया गया था, जिस पर फिरौती की वस्तु होने का संदेह था जिसे सूचक की रिहाई के लिए दोषियों को दिया गया था। समस्त तीनों दोषियों ने पुलिस के समक्ष अपना दोष संस्वीकार किया था। सह-अभियुक्त जहीर अंसारी ने पुलिस के समक्ष अपने इकबालिया बयान में राजू उर्फ मीराज, मुमताज,

रंजीत सिंह, इनामुद्दीन, नियाज, निरंजन भारती उर्फ बाबा, पवन और रफीक अंसारी का नाम सह-अपराधियों के रूप में लिया जिन्होंने सूचक विजय गोपाल दत्ता का अपहरण किया था और सूचक की रिहाई के लिए फिरौती के रूप में 3,80,000/- रुपया नगद और बंदूक एवं कारतूस वस्तु के रूप में प्राप्त किया। उसने पुलिस के समक्ष अपने बयान में आगे संस्वीकार किया कि फिरौती स्वीकार करने के बाद समस्त अभियुक्तगण याची लाल रंजन नाथ सहदेव के घर गए और फिरौती में से 1,00,000/- रुपया नगद और बंदूक दिया जो उन्होंने फिरौती के रूप में सूचक के कर्मचारी से प्राप्त किया था। अन्वेषण के बाद नियाज अंसारी, निरंजन भारती उर्फ बाबा और मुख्तार अंसारी के विरुद्ध दिनांक 12.10.2000 को आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। अन्वेषण अधिकारी द्वारा दिनांक 21.5.2001 को पवन वर्मा और मेहंदी हसन के विरुद्ध पूरक आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। अभियुक्तगण जहीर अंसारी, मेराज आलम और रफीक अंसारी के विरुद्ध दिनांक 11.8.2001 को द्वितीय पूरक आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। अभियुक्त जहीर अंसारी के इकबालिया बयान के आधार पर याची को गिरफ्तार किया गया था किंतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के अधीन उसे जमानत पर निर्मुक्त कर दिया गया था। क्योंकि अनुबंधित अवधि के भीतर उसके विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया जा सका था।

3. विद्वान अधिवक्ता, श्री जितेन्द्र एस॰ सिंह ने निवेदन किया कि सह-अभियुक्त जहीर अंसारी, जिसके इकबालिया बयान पर याची की सह-अपराधिता का पता चला था, को अन्य अभियुक्तगण के साथ एस॰ टी॰ सं॰ 65/2002 और 65/2002 (एस॰) में विचारण पर रखा गया था और साक्ष्य की कमी के कारण दिनांक 4.8.2006 के निर्णय द्वारा अंतत: दोषमुक्त कर दिया गया था, फिर भी, याची के विरुद्ध अन्वेषण को सात वर्षों से लंबित दर्शाया गया था और अंतत:, उक्त अपराध के लिए दिनांक 31.10.2007 को याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जिसमें पहले ही आरोप-पत्र दाखिल किया गया था और विभिन्न तिथियों पर अपराध का संज्ञान लिया गया था। यह एस॰ टी॰ सं॰ 65/2002 में दिनांक 4.8.2006 को दर्ज अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, लोहरदग्गा द्वारा दिए गए निर्णय, जैसा पैरा 3 में अंतर्विष्ट है, की छाया प्रतिलिपि से स्पष्ट हो सकता था कि विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, लोहरदग्गा द्वारा तीन भिन्न आरोप-पत्रों के आधार पर क्रमश: तीन भिन्न तिथियों अर्थात् दिनांकों 12.10.2000, 21.5.2001 और 13.8.2001 को अभियुक्तगण अर्थात् नियाज अंसारी, निरंजन भारती मुमताज अंसारी, पवन वर्मा, मेंहदी हसन, मो॰ जहीर, मीराज आलम और रफीक आलम के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था और दिनांक 13.5.2002 को मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था जिसे एस॰ टी॰ सं॰ 65/2002 के रूप में दर्ज किया गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता श्री सिंह ने इंगित किया कि अन्वेषण के सात वर्षों बाद, सह-अभियुक्त जहीर अंसारी, जिसे अंतत: भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/148/149/364A/387/414/201/212 के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया था, के इकबालिया बयान को छोड़कर केस डायरी में किसी विधिक साक्ष्य के बिना याची के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया था और अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 30.11.2007 को याची के विरुद्ध चौथी बार नया संज्ञान लिया गया था, जैसा यहाँ पहले निर्दिष्ट किया गया है, और मामला पुन: सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था जिसे सत्र न्यायाधीश के न्यायालय से अंतरित किए जाने पर अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, लोहरदग्गा के न्यायालय में प्राप्त किया गया था।

5. विद्वान अधिवक्ता का मुख्य प्रतिवाद यह है कि समरुप आरोपों पर अन्य अभियुक्तगण को दोषमुक्त कर दिया गया था और सह-अभियुक्त जहीर जिसे भी दोषमुक्त कर दिया गया था, के इकबालिया बयान को छोड़कर कोई भी विधिक साक्ष्य नहीं था और अभियुक्तगण में से किसी के विरुद्ध विचारण

के दौरान आरोप सिद्ध नहीं किया जा सका था। अब यह पूरी तरह स्पष्ट होगा कि इस विधिक अवस्था कि संज्ञान अपराध का लिया जाता है और न कि अपराधकर्ताओं के विरुद्ध, का अधिमूल्यन किए बिना सी॰ जे॰ एम॰, लोहरदग्गा द्वारा चार अवसरों पर अपराध का संज्ञान लिया गया था और उस स्थिति में, याची का विचारण घोर अन्याय की कोटि में आएगा क्योंकि चौथी बार दिनांक 30.11.2007 को अपराध का संज्ञान लिया गया था। वस्तुत:, पदकार्य निवृत्त हो जाने के कारण सी॰ जे॰ एम॰ का न्यायालय कार्य करना बंद कर देता है जब अपराध का संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया जाता है और इस प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी बार समरुप अपराध का संज्ञान लेने के लिए सी॰ जे॰ एम॰ अपनी सक्षमता के अंतर्गत था। उक्त निवेदन की दृष्टि में, विद्वान अधिवक्ता श्री सिंह ने निवेदन किया कि इसलिए याची का दांडिक अभियोजन घोर अन्याय की कोटि में आएगा और इसलिए, उसका संपूर्ण दांडिक अभियोजन अभिखंडित किया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री शिकरवार ने इसका विरोध किया और निवेदन किया कि यह याची के संपूर्ण दांडिक अभियोजन के अभिखंडन का सुयोग्य मामला नहीं है, जिसमें केस डायरी में उसके विरुद्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य था कि फिरौती की विषय वस्तु सूचक का डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बंदूक वस्तु के रूप में और कतिपय राशि नगद के रूप में याची के कब्जे से बरामद की गयी थी जैसा दिनांक 31.10.2007 के आरोप पत्र सं॰ 177/07 में अंतर्विष्ट है। याची का दांडिक अभियोजन केवल इस आधार पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान मामले में सी॰ जे॰ एम॰, लोहरदग्गा द्वारा चार बार अपराध का संज्ञान लिया गया था और सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा कारित अनियमितता का उपचार इस न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में किया जा सकता है और तद्नुसार, समुचित आदेश पारित किया जा सकता है।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और याची तथा राज्य विपक्षी पक्षकार द्वारा दिए गए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, इस मामले में अंतर्ग्रस्त मुख्य विवाद्यक यह है कि क्या सी॰ जे॰ एम॰, लोहरदग्गा, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त थे, चौथी बार अपराध का संज्ञान लेने के लिए अपनी सक्षमता के अंतर्गत थे। संज्ञान अपराध का लिया जाता है, न कि अपराधकर्ताओं का। जब एक बार अभिकथित अपराधों के दंड की कठोरता के अनुसार मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था, इन परिस्थितियों में पद कार्य निवृत्त होने के नाते सी॰ जे॰ एम॰ संज्ञान का आदेश आगे पारित नहीं कर सकता है, जहाँ तक अपराध, जिसका उन्होंने संज्ञान लिया था, के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अधीन उसकी शक्तियों का संबंध है। सी॰ जे॰ एम॰ के न्यायालय को जमानत अथवा अभिरक्षा में अभियुक्त के साथ केस डायरी के साथ आरोप-पत्र को अग्रसर करने की अपेक्षा की जाती थी। मैं पाता हूँ कि विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने प्रक्रिया की गलती की जो उपचार योग्य है जिसके द्वारा उन्होंने दिनांक 30.11.2007 को याची और एक अन्य के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया है और यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में उस गलती को दिनांक 30.11.2007 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा चौथी बार अपराध का संज्ञान लिया गया था, को अभिखंडित करके सुधारता है और अब यह समझा जाएगा कि सी॰ जे॰ एम॰, लोहरदग्गा ने पहले-पहल दिनांक 12.10.2000 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/364A/148/387/149/414 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए पहले ही अपराध का संज्ञान ले लिया था। लोहरदग्गा पी॰ एस॰ केस सं॰ 57 वर्ष 2000, जी॰ आर॰ सं॰ 153 वर्ष 2000 के तत्सम, से उद्भूत होने वाले एस॰ टी॰ सं॰ 93 वर्ष 2009 के अभिलेख से स्पष्ट है कि दिनांक 27.8.2009 को सुपुर्द किए जाने

पर विद्वान सत्र न्यायाधीश ने पहले ही याची का केस रिकॉर्ड प्राप्त कर लिया है जिसमें याची, जो जमानत पर था, व्यक्तिगत रूप से दिनांक 18.2.2011 को उपस्थित हुआ। यह न्यायालय अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में विभिन्न तिथियों पर अपराध का संज्ञान लेने में समस्त अनियमितताओं का उपचार करता है। मैं यहाँ ऊपर चर्चा किए गए प्रथम दृष्टया सामग्रियों की दृष्टि में याची के दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए सुयोग्य मामला नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह याचिका खारिज की जाती है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

राम प्रवेश अगरवाल

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Criminal Revision No. 237 of 2010. Decided on 14th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 379 सह-पठित धाराएँ 135 एवं 149—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—बिजली की चोरी–कंपनी द्वारा अपराध–उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति–प्रासंगिक अवधि में याची कंपनी के निदेशकों में से एक था–अन्वेषण के बाद, अभिलेख पर उपलब्ध पर्याप्त सामग्रियों पर अपराध को सत्य पाते हुए अन्वेषण अधिकारी द्वारा आरोप-पत्र दाखिल किया गया है–यह नहीं कहा जा सकता कि दंडाधिकारी ने अपने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है–आक्षेपित आदेश अभिपुष्ट–पुनरीक्षण आवेदन खारिज।

(पैराएँ 8 से 10)

निर्णयज विधि.–(2008)17 SCC 285; (2009) 10 SCC 48; (2010)2 SCC 398—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Dhananjay Kr. Pathak, For the Petitioner; Md. Hatim, For the State; M/s V.P. Singh, Brij Bihari Sinha, For the JSEB (For Opp. Party Nos. 2 & 3).

आदेश

याची के अधिवक्ता, झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड के अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण जी॰ आर॰ सं॰ 2037 वर्ष 2008 (मांडू (कुजु) पी॰ एस॰ केस सं॰ 222 वर्ष 2008 से उद्भूत) के संबंध में श्री राकेश कुमार मिश्रा, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 5.2.2010 के आदेश को अपास्त करने के लिए दाखिल किया है, जिसके द्वारा और जिसके अधीन उक्त विद्वान न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन उन्मोचन के लिए याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया है।

3. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि सूचक के लिखित रिपोर्ट पर आधारित अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि मेसर्स ऋषि सीमेंट कंपनी, उपभोक्ता सं॰ के॰ जी॰ 6383, भरेचनगर (संडी) रामगढ़ के परिसर का निरीक्षण किए जाने पर सी॰ टी॰ पी॰ टी॰ मीटर यूनिट का सेकेंडरी टर्मिनल कवर का सील डुप्लीकेट पाया गया था। आगे अभिकथित किया गया है कि पी॰ वी॰ सी॰ तार का इंसुलेशन हटाने के बाद विद्युत का अप्राधिकृत उपयोग किया जा रहा था और इस प्रकार, झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड ने लगभग 41,82,384/- रुपयों का नुकसान सहा था और पूर्वोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन और विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135 के अधीन भी याची के विरुद्ध मामला अर्थात् मांडू (कुजु) पी॰ एस॰ केस सं॰ 222 वर्ष 2008 दर्ज किया गया था। याची के

अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 और (बोर्ड प्राधिकारी की प्रेरणा पर याची को वर्तमान मामले में आलिप्त किया गया है। आगे प्रतिवाद किया गया है कि दिनांक 9.6.2008 का निरीक्षण रिपोर्ट, जिसे निरीक्षण की तिथि पर निरीक्षक टीम द्वारा तैयार किया गया है, याची के पीठ पीछे, किसी स्वतंत्र गवाह अथवा याची के किसी प्रतिनिधि की उपस्थिति के बिना तैयार किया गया है जो निरीक्षण रिपोर्ट से अत्यन्त स्पष्ट है क्योंकि याची अथवा उसके प्रतिनिधि अथवा किसी स्वतंत्र गवाह का कोई हस्ताक्षर नहीं है। अत:, विधि की दृष्टि में उक्त रिपोर्ट का साक्ष्यिक मूल्य नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि विद्युत अधिनियम की धारा 135 के अनुसार, जो स्पष्ट कहती है कि संबंधित अधिकारी, जिसने निरीक्षण किया, राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत किया जाना चाहिए था, किंतु कोई कागजात दाखिल नहीं किया गया है कि विद्युत अधिनियम की धारा 135 के अधीन निरीक्षण करने के लिए राज्य सरकार द्वारा सूचक को प्राधिकृत किया गया है। अत: अपनी अभिग्रहण सूची के साथ प्राथमिकी विधि की दृष्टि में बिल्कुल संपोषणीय नहीं है।

4. याची की ओर से उपस्थित अधिवक्ता यह निवेदन भी करते हैं कि विद्युत आपूर्ति संहिता विनियमन, 2005 के अध्याय 14 के अधीन प्रावधान, जहाँ भिन्न प्रक्रिया विहित की गयी है, का अनुसरण विपक्षी पक्षकारों द्वारा नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह निवेदन किया गया है कि दिनांक 10.2.2006 से याची प्रश्नगत कंपनी का निदेशक नहीं था। अत:, विद्युत अधिनियम की धारा 149 के अनुसार, याची को कंपनी के आचरण अथवा व्यवसाय के लिए उत्तरदायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि प्रश्नगत कंपनी ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3048 वर्ष 2008 में इस न्यायालय के पास आया था और इस न्यायालय ने दिनांक 3.7.2008 के आदेश के तहत इस शर्त पर कि यदि कंपनी दस लाख रुपयों की राशि जमा करती है, 48 घंटों के भीतर लाइन पुनर्स्थापित कर दिया जाएगा और ऐसा जमा अंतिम निर्धारण के अध्यधीन होगा, बोर्ड को विद्युत कनेक्शन पुनर्स्थापित करने का निर्देश दिया था। ऐसा जमा अंतिम निर्धारण के अध्यधीन होगा, बोर्ड को विद्युत कनेक्शन पुनर्स्थापित करने का निर्देश दिया था।

5. याची के अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि यद्यपि याची ने निदेशक के पद से दिनांक 10.2.2006 को त्याग पत्र दे दिया था, वह एक या अन्य तरीके से कंपनी के क्रियाकलाप में अंतर्ग्रस्त था। अन्वेषण का चरण पहले ही समाप्त हो चुका है और इसे सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है। इस संबंध में याची के अधिवक्ता ने **(2009)10 SCC 48** और **(2008)17 SCC 285** में प्रकाशित निर्णयों को उद्धृत किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने दृढ़तापूर्वक कथन किया है कि **''व्यक्ति/अधिकारी जो प्रभार में थे और कंपनी के व्यवसाय के संचालन के जिम्मेदार थे, कंपनी के अपराधों के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी हैं।''**

6. अंत में, याची ने निवेदन किया है कि याची का उन्मोचन आवेदन विनिश्चित करते हुए विद्वान अवर न्यायालय को न्यायिक विवेक का इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि **पी॰ विजयन बनाम केरल राज्य एवं एक अन्य, (2010)2 SCC 398,** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि **''न्यायाधीश अभियोजन के कहने पर आरोप विरचित करने वाला डाकखाना मात्र नहीं है, बल्कि यह विनिश्चित करने के लिए कि क्या अभियोजन द्वारा विचारण का मामला बनाया गया है, मामले के तथ्यों के प्रति अपने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल उसे करना ही होगा।''**

7. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 और 3 के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि मेसर्स ऋषि सीमेंट कंपनी के ''निदेशक के रूप में'' उक्त श्री राम प्रवेश अगरवाल (याची) द्वारा निष्पादित करार के आधार पर विद्युत बोर्ड द्वारा मेसर्स ऋषि सीमेंट कंपनी को विद्युत कनेक्शन दिया गया था। याची ने मात्र यह कथन किया है कि वह अब कंपनी का निदेशक नहीं है। याची ने विद्युत बोर्ड को कोई सूचना नहीं दिया है कि उसने

कंपनी के निदेशक पद से इस्तीफा दे दिया है। प्रतिवाद किया गया है कि कंपनी द्वारा किए गए अपराध से संबंधित प्रावधानों को विद्युत अधिनियम की धारा 149 के अधीन संगणित किया गया है जो वर्तमान मामले में प्रयोज्य है। विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 149 के प्रासंगिक उद्धरण का पठन निम्नलिखित है:–

> *"149. कम्पनियों द्वारा अपराध.–(1) जहाँ किसी कम्पनी द्वारा इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किया जाता है वहाँ ऐसे प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय कम्पनी के कारबार के संचालन के लिए उस कम्पनी का भारसाधक था और उसके लिए उत्तरदायी था और साथ ही वह कम्पनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएँगे जो तदनुसार अपने विरूद्ध कार्रवाई किए जाने और दण्डित किए जाने के भागी होंगे।"*

8. आगे यह प्रतिवाद किया गया है कि विद्युत अधिनियम की धारा 149 के मुताबिक न केवल कंपनी का निदेशक, प्रबंधक, सचिव अथवा अधिकारी धारा के अधीन दायी है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपराध किए जाते समय पर प्रभारी था और कंपनी के संचालन अथवा व्यवसाय के लिए कंपनी के प्रति जिम्मेदार था और कंपनी भी किए गए अपराध का दोषी समझा जाएगा और अपने विरुद्ध कार्यवाही का दायी होगा और तद्नुसार दंडित किया जाएगा। अत:, वर्तमान मामले में, यद्यपि याची ने कथन किया है कि कंपनी के निदेशक बतौर उसका अस्तित्व समाप्त हो गया है किंतु उसने यह कथन नहीं किया है कि घटना के समय पर उसके पास उक्त हैसियत अथवा दर्जा नहीं था। दूसरी ओर, अन्वेषण में आया है कि प्रासंगिक समय पर याची वस्तुत: कंपनी के निदेशकों में से एक था।

9. विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ पी॰ सिंह ने निवेदन किया है कि याची के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मामले न्यायालय में प्रत्यक्षत: दाखिल परिवाद पर आधारित है जबकि वर्तमान मामला पुलिस के अन्वेषण पर आधारित है। पुलिस मामले में और परिवाद मामले में प्रक्रिया में अंतर है। पुलिस के पास दर्ज मामले का अन्वेषण दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 12 में प्रावधानित तरीके से किया जाता है, और, तत्पश्चात्, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट दाखिल किया जाता है, और तत्पश्चात, अध्याय 14 की भूमिका शुरु होती है। जबकि परिवाद के मामले में, अध्याय 14 की भूमिका प्रत्यक्षत: शुरू होती है, जब तक न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन अन्वेषण के लिए परिवाद निर्दिष्ट नहीं करता है। श्री सिंह ने आगे प्रतिवाद किया कि भले ही विद्युत अधिनियम, 2010 की धारा 126 के अधीन इसके निर्धारण के बाद कंपनी ने संपूर्ण दायित्व का भुगतान कर दिया हो, पर विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135 (1A) की दृष्टि में निर्धारित नुकसान को उपभोक्ता द्वारा जमा कर दिए जाने मात्र पर उसे विमुक्त नहीं किया जा सकता है। अत:, वर्तमान पुनरीक्षण याचिका में कोई गुणागुण नहीं है और यह अस्वीकार किए जाने योग्य है।

10. पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करने और आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने के बाद मैं पाती हूँ कि अन्वेषण के बाद याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री पर अपराध को सत्य पाते हुए अन्वेषण अधिकारी ने आरोप–पत्र दाखिल किया है। इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और विद्युत अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करने के बाद उन्मोचन के लिए याची का आवेदन अस्वीकार किया, अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने न्यायिक विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है। अत:, मेरे मत में आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। तद्नुसार, एतद् द्वारा पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

सुभाष पाठक

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 27 of 2011. Decided on 13th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420/467/468/406/120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल, कूटरचना एवं षडयंत्र–संज्ञान–मामला भूमि के विक्रय से संबंधित–याची ने विक्रेता द्वारा अभिकथित रूप से निष्पादित विक्रय के करार की वास्तविकता को चुनौती दी थी जिसे सिविल न्यायालय में चुनौती दी जा सकती थी–याची ने कोई कपट नहीं किया अथवा किसी प्रकार का छल अथवा बहुमूल्य प्रतिभूति की कूट रचना नहीं किया ताकि उसके विरुद्ध अभिकथित अपराध आकृष्ट हो–दांडिक अभियोजन अपास्त–याचिका अनुज्ञात।

(पैराएँ 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.–(2009) 8 SCC 751;—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Nilesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Prabhat Kumar Sinha, For the O.P. No.2; A. B. Mahato, For the State.

आदेश

याची ने दिनांक 17.11.2008 के आदेश जिसके द्वारा मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग ने कटकमसंडी (पेलावल) पी॰ एस॰ केस सं॰ 99 वर्ष 2007, जी॰ आर॰ सं॰ 117 वर्ष 2007 (टी॰ आर॰ सं॰ 1501 वर्ष 2010), जो अब श्री आर॰ के॰ मिश्रा, न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग के न्यायालय के समक्ष लंबित है, में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/467/468/406/120B के अधीन अपराध का संज्ञान लिया, सहित उसके विरुद्ध लंबित समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. याची और तीन अन्य अर्थात् दमयंती देवी, चंपा देवी और सरजू पाठक के विरुद्ध परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा परिवाद मामला सं॰ 134 वर्ष 2007 दाखिल किया गया था जिसमें कथन किया गया कि परिवादी और उसके परिवार के सदस्य अभियुक्त दमयंती देवी और उसकी गोतनी चंपा देवी को काफी पहले से जानते थे। वर्ष 2002 में दमयंती देवी और उसकी गोतनी चंपा देवी दोनों ने बहुमूल्य प्रतिफल के विरुद्ध भूमि के कतिपय टुकड़े के लिए परिवादी के माता–पिता के पक्ष में रजिस्टर्ड विक्रय विलेख निष्पादित किया था और तत्पश्चात् क्रेता को भूमि का भौतिक कब्जा देते हुए भूमि अंतरित की गयी थी और तद्द्वारा दमयंती देवी और चंपा देवी ने परिवादी और उसके परिवार के सदस्यों का विश्वास प्राप्त किया था। परिवादी ने पहले भी खाता सं॰ 25 में कुछ भूखंडों को खरीदा था। परिवादी ने आगे कथन किया कि कुछ समय बाद दमयंती देवी 10,000/- रुपया प्रति कट्ठा की दर पर 1.54 एकड़ कुल माप वाले तीन भूखंडों को अंतरित करने के आशय जिसे परिवादी ने स्वीकार किया था, अभिव्यक्त करते हुए, उसके और उसके परिवार के सदस्यों के पास आयी और दमयंती देवी ने 10,000/- रुपया प्रति कट्ठा की दर पर तीन भूखंडों के लिए 30,000/- रुपया नगद स्वीकार करने के बाद दिनांक 16.12.2006 को परिवादी के पक्ष में विक्रय करार निष्पादित किया। उक्त विक्रय करार में दमयंती देवी ने अपने बाएँ अंगूठे का निशान लगाया था जबकि अभियुक्त सरजू पाठक गवाह बना और अपने अंगूठे का निशान लगाया। विक्रय करार

में सहमत हुआ था कि शेष राशि के भुगतान के अध्यधीन दमयंती देवी परिवादी के पक्ष में भूमि अंतरित कर देगी। यह अभिकथित किया गया है कि संपूर्ण विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए दमयंती देवी को शेष राशि का प्रस्ताव देते हुए उसके द्वारा लगातार कहे जाने पर भी उसने करार के निबंधनों का पालन करने से इनकार कर दिया। इस बीच, परिवादी को ज्ञात हुआ कि याची सुभाष पाठक ने चंपा देवी की पुत्री का पुत्र होने के नाते दमयंती देवी को प्रभावित किया और इसलिए उसने इस तथ्य कि वह पहले ही अग्रिम के रूप में 30,000/- रुपया स्वीकार कर चुकी थी, के बावजूद परिवादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने से इनकार कर दिया। परिवादी को आगे पता चला कि इसके तुरन्त बाद दमयंती देवी ने दिनांक 22.1.2007 को याची सुभाष पाठक के पक्ष में रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के फलस्वरुप भूमि के कुछ टुकड़ों को अंतरित किया और तद्द्वारा अभियुक्तगण द्वारा परिवादी को कपट वंचित किया गया था। मामला दर्ज करने के लिए परिवाद को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 156 (3) के अधीन कटकमसंडी पुलिस थाना भेजा गया था और उसके अनुसरण में कटकमसंडी (पेलावल) पी॰ एस॰ केस सं॰ 99 वर्ष 2007 दर्ज किया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने याची और अन्य को दांडिक दायित्व से विमुक्त करते हुए फाइनल फॉर्म दाखिल किया जिस पर नोटिस जारी किया गया था जिसके प्रति परिवादी ने आपत्ति याचिका दाखिल किया था जिसे परिवाद के रूप में माना गया था और यह प्रकट करते हुए कि दमयंती देवी की मृत्यु हो चुकी थी, अभियुक्तगण चंपा देवी, सुभाष पाठक (वर्तमान याची) और सूरज पाठक के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/467/468/406/120B के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था।

3. नोटिस की प्राप्ति पर परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 उपस्थित हुआ और प्रति शपथ पत्र दाखिल किया।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री निलेश कुमार ने निवेदन किया कि न्यास के भंग के संबंध में याची के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं था क्योंकि वह परिवादी के पक्ष में दमयंती देवी द्वारा निष्पादित करार के संबंध में कभी सामने नहीं आया। विक्रय करार को कभी निष्पादित नहीं किया गया था और उक्त लिखत से स्पष्ट होगा कि दमयंती देवी का अंगूठे के अभिकथित निशान का पृष्ठांकन किसी जाने-माने व्यक्ति द्वारा नहीं किया गया था और याची के अनुसार इसे अज्ञात व्यक्ति का हस्ताक्षर प्राप्त करके निर्मित किया गया था और इसको कूटरचित दस्तावेज में परिवर्तित किया गया था। श्री निलेश कुमार ने आगे कहा कि यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि दमयंती देवी और चंपा देवी दोनों लगभग 90 वर्ष की अशिक्षित महिलाएँ थी जिनको किसी भी प्रकार के किसी करार की कोई समझदारी नहीं थी। यह कहीं नहीं उल्लिखित किया गया था कि किसकी उपस्थिति में कतिपय भूमि के संबंध में दमयंती देवी ने विक्रय करार को निष्पादित किया और कि याची किसी भी तरीके से अभिकथित करार का पक्ष नहीं लिया था और न ही दमयंती देवी द्वारा उसके पक्ष में भूमि अंतरित किए जाने के पहले याची का सूरज पाठक से कोई सरोकार था। किसी व्यक्ति के पक्ष में दमयंती देवी द्वारा वर्ष 2006 में निष्पादित किसी भी प्रकार के विक्रय करार के संबंध में याची को कोई जानकारी नहीं थी बल्कि उस पर जो बहुमूल्य प्रतिफल के विरुद्ध भूमि का सद्भावपूर्ण खरीदार था, अनुचित दबाव डालकर वर्तमान मामले में उसे द्वेषपूर्वक आलिप्त किया गया है। यह सुनिश्चित विधि है कि विक्रय करार के आधार पर किसी व्यक्ति को बहुमूल्य अधिकार प्रोद्भूत नहीं होता है और यदि विक्रय करार के आधार पर कोई अधिकार है भी और कोई विवाद उद्भूत भी हुआ हो, यह सिविल विवाद की प्रकृति का होगा और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/467 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची के विरुद्ध कोई अपराध आकृष्ट नहीं होगा। श्री निलेश कुमार ने निवेदन किया कि **मो॰ इब्राहिम एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य**

मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि जब विवाद आवश्यकत: सिविल प्रकृति का है, दांडिक न्यायालय को न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना चाहिए और सुनिश्चित करना चाहिए कि पुरानी दुश्मनी निकालने अथवा सिविल विवाद सुलझाने के लिए दांडिक कार्यवाही का दुरुपयोग नहीं किया जाए। खरीदार, जिसने विवादित भूमि खरीदा था, स्वयं पीड़ित था। वर्तमान मामले में याची खरीदार था जिसने सद्भावपूर्ण विश्वास के अधीन भूमि खरीदा था और यदि भूमि को विवादित पाया जाता है, उसे छल के अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता था क्योंकि छल अथवा कपट का कोई तत्व नहीं पाया गया था। दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में और **(2009)8 SCC 751** में प्रकाशित पूर्वोक्त निर्णय पर विश्वास करते हुए परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के पास उस व्यक्ति, जिसने उसके पक्ष में अभिकथित रूप से विक्रय करार निष्पादित किया था, के प्रति अपनी शिकायत दूर करवाने के लिए संविधि के अधीन उपचार था किंतु याची की जानकारी के मुताबिक ऐसा कोई करार कभी भी दमयंती द्वारा निष्पादित नहीं किया गया था और इसलिए याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा जो अभिखंडित किए जाने का दायी है।

5. दूसरी ओर, वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र को सिद्ध करते हुए विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रभात कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि याची सुभाष पाठक अभियुक्त सं॰ 1 और 2 का पोता था जबकि अभियुक्त सं॰ 4 अभियुक्त सं॰ 2 का दामाद था और इसी प्रकार से अभियुक्त सं॰ 1, जिसकी बाद में मृत्यु हो गयी, अभियुक्त सं॰ 2 की गोतनी थी। श्री सिन्हा यह स्पष्ट करने में विफल रहे कि याची कैसे दो भिन्न महिलाओं का पोता हो सकता था और उनमें से एक जो भूमि का विक्रेता था, की मृत्यु हो गयी थी। दमयन्ती देवी संतानहीन थी और याची उसकी संपत्ति पर आँख गड़ाए था। विद्वान अधिवक्ता ने प्राख्यान किया कि जब याची को ज्ञात हुआ कि दमयंती देवी अपनी भूमि के हिस्से को याची के परिवार को अंतरित करने की इच्छुक थी और इस संबंध में उसने प्रश्नगत भूमि के लिए विक्रय करार निष्पादित किया था, वर्तमान याची ने सादे कागज पर दमयंती देवी और चंपा देवी के अंगूठे के निशानों को प्राप्त करके वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विरुद्ध मामला दाखिल किया जिसे दिनांक 21.1.2007 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467/468/471/420 के अधीन वर्तमान वि॰ प॰ सं॰ 2 के विरुद्ध प्राथमिकी कटकमसंडी (पेलावल) पी॰ एस॰ केस सं॰ 24 वर्ष 2007 में परिवर्तित कर दिया गया था और तत्पश्चात् उसकी भूमि के संबंध में दमयंती देवी द्वारा अपने पक्ष में रजिस्टर्ड विक्रय विलेख निष्पादित करवाया था यद्यपि भूमि के कुछ टुकड़ों के लिए वह पहले ही दिनांक 16.12.2006 को अग्रिम स्वीकार करके परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ विक्रय करार कर चुकी थी। अन्वेषण के दौरान, दमयंती देवी ने परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विरुद्ध किसी मामले को संस्थापित करने से इनकार किया था बल्कि उसने स्पष्ट किया कि याची ने उसके अंगूठे का निशान प्राप्त किया था जिसे प्राथमिकी में परिवर्तित कर दिया गया था और इसलिए आई॰ ओ॰ ने वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को दांडिक दायित्व से विमुक्त करते हुए फाइनल फॉर्म दाखिल किया जिसे सी॰ जे॰ एम॰, हजारीबाग द्वारा स्वीकार किया गया था।

6. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना गया।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि **मो॰ इब्राहिम एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (2009)8 SCC 751** में सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:-

> *''इस न्यायालय ने बार-बार परिवादीगण की बढ़ती प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जो स्पष्टत: अभियुक्त पर दबाव बनाने के लिए अथवा अभियुक्त के प्रति दुश्मनी के चलते अथवा अभियुक्त को परेशानी के अध्यधीन करने के लिए आवश्यकत:*

और शुद्धतः सिविल प्रकृति के मामलों का दांडिक अपराध का जामा पहनाने का प्रयास करते हैं। दांडिक न्यायालयों को सुनिश्चित करना चाहिए कि इनके समक्ष कार्यवाहियों का उपयोग दुश्मनी निकालने के लिए अथवा सिविल विवाद सुलझाने के लिए पक्षों पर दबाव डालने के लिए नहीं किया जाय। किंतु साथ ही साथ यह ध्यान में लिया जाना चाहिए कि सिविल प्रकृति के अनेक विवाद दांडिक अपराधों के अवयवों को भी अंतर्विष्ट कर सकते हैं और यदि ऐसा है, इनका विचारण दांडिक अपराधों के रूप में करना होगा भले ही वे सिविल विवादों की कोटि में भी आते हैं।''

8. अभिवचनों से तथ्य पूरी तरह स्पष्ट है कि पहले-पहल दमयंती देवी ने परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के पक्ष में कतिपय संपत्तियों के संबंध में विक्रय करार निष्पादित किया था और इसके बदले उसने 30,000/- रुपयों का अग्रिम भी स्वीकार किया था किंतु बाद में कुछ भूमि के संबंध में उसने प्रतिफल को लेकर याची के पक्ष में रजिस्टर्ड विक्रय विलेख निष्पादित किया था और कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी थी। याची, जिसने दमयंती देवी द्वारा अपने पक्ष में विक्रय विलेख रजिस्टर्ड करवाया और तद्द्वारा वि॰ प॰ सं॰ 2 को वंचित किया गया था, के विरुद्ध परिवादी के साथ कपट करने का अभिकथन है। याची ने दमयंती देवी द्वारा अभिकथित रूप से निष्पादित विक्रय करार की वास्तविकता को चुनौती दी थी जिसे सिविल न्यायालय में चुनौती दी जा सकती थी। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, मेरा दृढ़ दृष्टिकोण है कि पक्षों के बीच सिविल विवाद बनाया गया है जिसे सक्षम अधिकारिता के न्यायालय द्वारा निश्चित और न्यायनिर्णीत किया जा सकता है। इन तथ्यों और परिस्थितियों में मैं नहीं पाता हूँ कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/467/468 के अधीन अभिकथित अपराधों में से कोई भी अपराध याची के विरुद्ध निर्मित होता है। याची के पक्ष में दमयंती देवी द्वारा निष्पादित रजिस्टर्ड विक्रय विलेख से इनकार नहीं किया गया है और इसलिए, सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि याची ने कोई कपट नहीं किया था अथवा किसी प्रकार का छल नहीं किया था अथवा बहुमूल्य प्रतिभूति की कोई कूटरचना नहीं किया था ताकि उसके विरुद्ध अभिकथित अपराधों को आकृष्ट किया जा सके।

9. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 17.11.2008 के आदेश, जिसके द्वारा उसके विरुद्ध कटकमसंडी (पेलावल) पी॰ एस॰ केस सं॰ 99 वर्ष 2007, जी॰ आर॰ सं॰ 1227 वर्ष 2007 के तत्सम, में अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित याची के दांडिक अभियोजन को अपास्त किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

महेश प्रसाद सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal Revision No. 246 of 2010. Decided on 14th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 323/341—सह-पठित एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ अधिनियम, 1989 की धारा 3 (x)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—जाति नाम द्वारा अपमान—उन्मोचन याचिका की अस्वीकृति—याची ने अभिकथित रूप से अपने सहयोगी का अपमान किया और जबरन उसे कुर्सी से उठा दिया—परिवाद मामला दर्ज करने में थोड़ा विलंब ऐसा नहीं है कि संपूर्ण विचारण उस बिंदु पर दूषित हो सकता है—याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री है—न्यायालय आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं है—आवेदन खारिज। (पैराएँ 3 एवं 4)

निर्णयज विधि.–(1996)4 SCC 659; (2000) (1) SCC 138; 2009 Cri. LJ 822—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s A. K. Kashyap, Lina Shakti, For the Petitioner; Mr. Amaresh Kumar, For the State; Mr. Deepak Kumar Bharti, For the O.P. No. 2.

आदेश

याची के अधिवक्ता, वि॰ प॰ सं॰ 2 के अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता को सुना।

याची ने वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन परिवाद केस सं॰ 164 वर्ष 2008 से उद्भूत होने वाले एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ केस सं॰ 6/2009 के संबंध में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश-सह-विशेष न्यायाधीश, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 2.2.2010 के आदेश को अपास्त करने के लिए दाखिल किया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अवर न्यायालय ने उसके उन्मोचन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन याची के आवेदन को अस्वीकार कर दिया है। संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि परिवादी जवाहर राम ने दिनांक 1.8.2008 को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, लातेहार के समक्ष परिवाद मामला दाखिल किया है जिसमें कथन किया गया है कि दिनांक 27.5.2008 को प्रातः लगभग 10.30 बजे जब वह महेन्द्र राम, जो डयुटी पर था, से मिलने उसके कार्यालय गया जो अपने कार्यालय में बैठा हुआ था, अभियुक्त-याची अर्थात् महेश प्रसाद सिंह, सेक्सनल इंजीनियर, जिसके अधीन परिवादी एम॰ सी॰ एम॰ फिटर के रूप में कार्यरत था, वहाँ आया और उसे कुर्सी से उठ जाने के लिए कहा और जब परिवादी ने उससे कारण पूछा तो उसने कहा कि ''तुम एक हरिजन-चमार हो और तुम्हें कुर्सी पर बैठने का कोई अधिकार नहीं है'' और जब परिवादी ने विरोध किया, अभियुक्त याची ने उसे जबरन कुर्सी से नीचे उतार दिया और कार्यालय से उसे बाहर निकाल दिया। उसने परिवादी पर प्रहार भी किया। तत्पश्चात्, शपथ पर परिवादी का परीक्षण किया गया था और दो गवाहों का भी परीक्षण किया गया था। चूँकि अभियुक्त-याची के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए पर्याप्त सामग्री थी, विद्वान अवर न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323/341 के अधीन और एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ अधिनियम की धारा 3 (10) के अधीन भी संज्ञान लिया है।

2. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची निर्दोष है और उसने कोई अपराध नहीं किया है और उसके विरुद्ध दुश्मनी होने के कारण उसे इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि याची ने वर्तमान परिवादी और विष्णुदेव जिसका परीक्षण वर्तमान मामले में अ॰ सा॰ 2 के रूप में किया गया है, के विरुद्ध परिवाद किया था क्योंकि वे दोनों शराब पीने के बाद कर्तव्य पर आए थे और याची को गाली और धमकी दिया था किंतु देवनारायण यादव और राजकुमार पासवान द्वारा मामला शांत कराया गया था। किंतु, चूँकि परिवादी और अ॰ सा॰ 2 विभागीय कार्यवाही का सामना कर रहे हैं, परिवादी ने वर्तमान याची को इस मामले में आलिप्त किया है। जब याची के कहने पर विभागीय कार्यवाही आरंभ किए जाने के बारे में परिवादी को पता चला, उसने अभिकथित घटना अर्थात् दिनांक 27.5.2008 के काफी बाद दिनांक 1.8.2008 का वर्तमान मामला दर्ज किया।

3. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय ने सही प्रकार से उन्मोचन के लिए याची के आवेदन को अस्वीकार कर दिया है। उन्होंने आगे प्रतिवाद किया है कि अवर न्यायालय ने सामग्रियों, जो वर्तमान याची के विरुद्ध आयी हैं, पर विचार करने के बाद सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर वर्तमान याची के विरुद्ध एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ अधिनियम की धारा 3 (10) के अधीन प्रथम दृष्टया मामला है। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के

अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि अनेक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि आरोप विरचित किए जाने के चरण पर अपने बचाव के समर्थन में कोई दस्तावेज दाखिल करने की अनुमति अभियुक्त को नहीं दी जाती है, जिस पर केवल विचारण के चरण पर विचार किया जा सकता है। इस संदर्भ में, उन्होंने **रूक्मिणी नरवेकर बनाम विजय सतरदेकर, 2009 Crl. L.J. 822,** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि यह सुनिश्चित है कि आरोप विरचित किए जाने के चरण पर, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के परिवीक्षा मूल्य पर विचार करने की उम्मीद नहीं की जाती है और न्यायालय इस निष्कर्ष पर आ सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया है और न्यायालय आरोप विरचित कर सकता है और अग्रसर हो सकता है। अपने प्रतिवाद के समर्थन में उन्होंने **उमर अब्दुल सकूर सोरथिया बनाम आसूचना अधिकारी, नारकोटिक कंट्रोल ब्यूरो, 2000 (1) SCC 138,** और **महाराष्ट्र राज्य बनाम सोमनाथ थापा, 1996 (4) SCC 659,**में प्रदत्त निर्णयों को उद्धृत किया है।

4. नि:संदेह, परिवाद मामला कुछ विलंब के बाद दर्ज किया गया है किंतु उक्त विलंब ऐसा नहीं है कि संपूर्ण विचारण उसी बिंदु पर दूषित हो सकता है। मामले के अभिलेख से, मैं पाती हूँ कि याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री है, अत: मैं आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की इच्छुक नहीं हूँ। तद्नुसार, पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं जया रॉय, न्यायमूर्ति

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

बनाम

मेसर्स के॰ वाई॰ एस॰ मैन्यूफैक्चरर एंड एक्सपोर्टर्स प्रा॰ लि॰

L.P.A. No. 195 of 2011. Decided on 7th June, 2011.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—विद्युत अधिनियम, 2003—धारा 135(1)(A)—विद्युत कनेक्शन पुनर्स्थापित करने का आज्ञापक निर्देश–इस आधार पर निर्देश को चुनौती दिया जा रहा है कि यह विद्युत चोरी का मामला है और एक करोड़ रुपयों की अनंतिम मांग है–कतिपय अनुतोषों, जिनके लिए रिट याचिका में प्रार्थना की गयी है, को भी अंतरिम अनुतोषों के रूप में प्रदान किया जा सकता है–जब विद्युत कनेक्शन के पुनर्स्थापन जैसी अत्यावश्यकता है, मुख्य अनुतोष की मंजूरी का प्रभाव रखने वाला अंतरिम अनुतोष भी प्रदान किया जा सकता है–यह नहीं कहा जा सकता है कि अस्थायी अवधि के लिए अंतरिम अनुतोष प्रदान किये जाने, जो अंतिम अनुतोष प्रदान किए जाने की कोटि में आता है, का अर्थ अंतिम अनुतोष प्रदान करना है–अंतरिम आदेश के विरुद्ध एल॰ पी॰ ए॰ पोषणीय नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 4 से 7)

निर्णयज विधि.–LPA No. 202 of 2010—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s. V.P. Singh, For the Appellant; N. K. Pasari, For the Respondent.

आदेश

एल॰ पी॰ ए॰ की पोषणीयता के संबंध में आरंभिक आपत्ति पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया क्योंकि इसे दिनांक 18.5.2011 के अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है।

2. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता, जिन्होंने आई॰ ए॰ सं॰ 1643 वर्ष 2011 दाखिल किया है, के

अनुसार दिनांक 18.5.2011 का आदेश अंतर्वर्ती आदेश है जिसके द्वारा याची-प्रत्यर्थी का विद्युत कनेक्शन पुनर्स्थापित करने के लिए अपीलार्थीगण को केवल आज्ञापक निर्देश दिया गया है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आदेश प्रत्यर्थी-याची को दिया गया अंतिम अनुतोष है क्योंकि प्रत्यर्थी-याची ने अपनी रिट याचिका में विद्युत कनेक्शन के पुनर्स्थापन का दावा किया था और दिनांक 18.5.2011 के आक्षेपित आदेश द्वारा इसे प्रदान किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि आदेश विद्युत अधिनियम की धारा 135(1)(A) के प्रावधान के अधीन पारित किया गया है और इसलिए दिनांक 18.5.2011 के आक्षेपित आदेश में न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। यह निवेदन भी किया गया है कि ऐसे मामले में, जहाँ लगभग एक करोड़ से अधिक के बारे में और वह भी विद्युत चोरी के मामले में, अर्नंतिम मांग है, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा ब्लैंकेट आज्ञापक व्यादेश प्रदान किया गया है।

4. हमने दिनांक 18.5.2011 के आदेश का परिशीलन किया है और हमारा सुविचारित मत है कि कतिपय अनुतोषों, जिनकी प्रार्थना रिट याचिका में की गयी है, को अंतरिम अनुतोष के रूप में प्रदान किया जा सकता है जो मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। उदाहरणस्वरुप, ऐसे मामले में जहाँ रिट याची के भवन का भंजन नहीं करने के लिए प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध अवरोध आदेश इप्सित करते हुए व्यादेश के लिए रिट याचिका दाखिल की जाती है, तब यदि अंतरिम चरण पर वही अनुतोष प्रदान नहीं किया जाता है जब अंतरिम अनुतोष प्रदान करने के लिए मामला निर्मित हुआ है, तब रिट याचिका निष्फल हो जा सकती है यदि अंतरिम उपाय के रूप में ऐसा अनुतोष प्रदान नहीं किया जाता है और इसी प्रकार, जब किसी आवासीय परिसर के विद्युत कनेक्शन के पुनर्स्थापन जैसी अत्यावश्यकता होती है और पक्ष न्यायालय के पास आता है और विद्युत कनेक्शन के पुनर्स्थापन के लिए अनुतोष इप्सित करता है, उस स्थिति में भी अंतिम अनुतोष प्रदान किए जाने का प्रभाव रखने वाला अंतरिम अनुतोष प्रदान किया जा सकता है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अंतरिम अनुतोष प्रदान किए जाने, जो अस्थायी अवधि के लिए अंतिम अनुतोष प्रदान किए जाने की कोटि में आता है, का अर्थ अंतिम अनुतोष प्रदान करना है। और भी उदाहरण हो सकते हैं किंतु जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, यह केवल रिट याची/प्रत्यर्थी का विद्युत कनेक्शन पुनर्स्थापित करने के लिए न्यायालय के आदेश द्वारा की गयी अंतरिम व्यवस्था है और इसे तुरन्त समाप्त किया जा सकता है जब याची की रिट याचिका खारिज कर दी जाती है।

5. हमारा सुविचारित दृष्टिकोण है कि दिनांक 18.5.2011 का आदेश अंतरिम आदेश है।

6. क्या किसी अंतरिम आदेश के विरुद्ध एल॰ पी॰ ए॰ पोषणीय है, इस पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 202 वर्ष 2010 (मेसर्स लक्ष्मी बिजनेस एंड सीमेन्ट कंपनी लि॰ बनाम झारखंड विद्युत बोर्ड, राँची)** में विचार किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अंतरिम आदेश के विरुद्ध अपील पोषणीय तब तक नहीं है जबतक आदेश अंतिमता प्राप्त नहीं करता है अथवा अंतिमता के लक्षणों का चरित्र अथवा गुणवत्ता नहीं रखता है। खंडपीठ का दिनांक 1.7.2010 के उक्त निर्णय को अपील के लिए विशेष अनुमति (सिविल) सं॰ 23239 वर्ष 2010 दाखिल करके चुनौती दी गयी थी जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 27.8.2010 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, हमारा सुविचारित दृष्टिकोण है कि अंतरिम आदेश के विरुद्ध अपील होने के कारण वर्तमान अपील पोषणीय नहीं है। इस चरण पर, यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि मुख्य रिट याचिका को इसी माह की 13 तारीख को सूचीबद्ध किए जाने की संभावना है और इसलिए हम इस एल॰ पी॰ ए॰ को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

8. इस संप्रेक्षण के साथ, अपील खारिज की जाती है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

गोविन्द उर्फ गोविन्द तुरी

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Revision No. 786 of 2010. Decided on 14th June, 2011.

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 7A—झारखंड किशोर न्याय (बालकों की देख रेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2007—नियम 22 (5)—अपहरण का मामला—किशोरावस्था के अभिवचन की अस्वीकृति—घटना की अभिकथित तिथि जनवरी, 2010 है और मार्च, 2010 में मेडिकल बोर्ड द्वारा याची की आयु को 18-19 वर्षों के बीच निर्धारित किया गया था—यदि याची की आयु का न्यून पक्ष लिया जाता है, यह 18 वर्ष होगी—इसमें कुछ संदेह है कि क्या याची ने जनवरी, 2010 में अथवा तत्पश्चात् 18 वर्ष की आयु पूरा कर लिया है—संदेह का लाभ याची के पक्ष में जाना चाहिए—आक्षेपित आदेश अपास्त—याची किशोर घोषित किया गया। (पैराएँ 6 से 8)

निर्णयज विधि.—2008 (2) East Cr.C. 11 (SC)—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. N.K. Sahani, For the Petitioner; Md. Azimuddin, A.P.P., For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने यह आवेदन हरला पी॰ एस॰ केस सं॰ 8 वर्ष 2010 से उद्भूत जी॰ आर॰ सं॰ 118 वर्ष 2010 में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 22.3.2010 के आदेश को अभिपुष्ट करते हुए दांडिक अपील सं॰ 35 वर्ष 2010 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 23.6.2010 के आदेश, जिसके द्वारा याची को किशोर घोषित करने की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी है, को अपास्त करने के लिए दाखिल किया है।

3. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची की जन्मतिथि दिनांक 18.12.1993 है और जैसा अभिकथित किया गया है, घटना की तिथि दिनांक 21.1.2010 है और इस प्रकार वह घटना की अभिकथित तिथि पर किशोर था और इस आधार पर याची ने अपना केस रिकॉर्ड किशोर न्याय बोर्ड को भेजने की प्रार्थना के साथ याचिका दाखिल किया है।

4. याची के अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि याची की माता ने शपथ पत्र दाखिल किया है कि कुंडली के अनुसार याची की जन्मतिथि दिनांक 18.12.1993 है। इस शपथपत्र के आधार पर, अवर न्यायालय ने याची की आयु के निर्धारण के लिए मामला मेडिकल बोर्ड को निर्दिष्ट किया। मेडिकल बोर्ड ने दिनांक 22.3.2010 को अपना रिपोर्ट प्रस्तुत किया है जिसमें कथन किया गया है कि याची की आयु 18-19 वर्ष के बीच निर्धारित की गयी है। अवर न्यायालय ने इस रिपोर्ट के आधार पर याची को वयस्क घोषित किया और किशोर घोषित किए जाने के लिए दाखिल उसकी याचिका को अस्वीकार कर दिया। आगे प्रतिवाद किया गया है कि अभिकथित घटना जनवरी, 2010 में हुई थी और मेडिकल बोर्ड ने याची का परीक्षण किया है और मार्च, 2010 में अपना रिपोर्ट प्रस्तुत किया है। नियमावली, 2007 के प्रावधानों के अनुसार किशोर को लाभ देना होगा और उसकी आयु के निचले पक्ष पर विचार करना होगा। अतः यदि इसे 18 वर्ष लिया जाता है, निश्चय ही अभिकथित घटना के समय पर याची किशोर था।

5. राज्य के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह दो अवयस्क बालिकाओं के अपहरण का मामला है और मेडिकल बोर्ड द्वारा इस याची की आयु 18-19 वर्ष के बीच निर्धारित की गयी है। यदि उसकी आयु के निचले पक्ष को विचार में लिया जाता है, अभिकथित घटना के समय पर याची वयस्क था। अपने प्रतिवाद के समर्थन में, उन्होंने **2008 (2) Eastern Criminal Cases 11 SC (ज्योति प्रकाश राय बनाम बिहार राज्य)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है।

6. स्वीकृत रूप से, घटना की अभिकथित तिथि जनवरी, 2010 है और मार्च, 2010 में मेडिकल बोर्ड द्वारा याची की आयु 18-19 वर्षों के बीच निर्धारित की गयी थी। झारखंड किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2003 के नियम 22 का उपनियम (5) जाँच करने में और आयु के निर्धारण में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया अधिकथित करता है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"5. किशोर अथवा बालक से संबंधित प्रत्येक मामले में बोर्ड (i) निगम अथवा नगरपालिका प्राधिकारी द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र; अथवा (ii) पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय से जन्मतिथि प्रमाण पत्र; अथवा (iii) मैट्रिकुलेशन अथवा समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो, (iv) उक्त (i) से (iii) तक की अनुपस्थिति में उसकी आयु के संबंध में ऐसे मेडिकल बोर्ड द्वारा दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए सुयोग्य मामलों में एक वर्ष की मार्जिन के अध्यधीन सम्यक् रूप से गठित मेडिकल बोर्ड का मत प्राप्त करेगा और ऐसे मामले में आदेश पारित करते हुए ऐसे साक्ष्य, जैसा उपलब्ध हो सकता है, अथवा मेडिकल मत को विचार में लेने के बाद उसकी आयु के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करेगा।''*

7. स्वीकृत तथ्यों पर विचार करते हुए, और इस संबंध में नियमों पर विचार करते हुए, यदि याची की आयु का निचला पक्ष, जैसा मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट में आया है, लिया जाता है, तब यह मार्च, 2010 में 18 वर्ष होगा और अभिकथित घटना जनवरी, 2010 की है। निश्चय ही कुछ संदेह है कि क्या याची ने जनवरी, 2010 में अथवा तत्पश्चात् 18 वर्ष की आयु पूरा कर लिया है। चूँकि कुछ संदेह है अत: संदेह का लाभ याची के पक्ष में जाना चाहिए।

8. इन समस्त पहलूओं पर विचार करते हुए, मैं इस पुनरीक्षण आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, दिनांक 23.6.2010 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और मैं याची को किशोर घोषित करता हूँ क्योंकि कुछ संदेह है कि क्या मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार भी उसने घटना की अभिकथित तिथि पर 18 वर्ष की आयु पूरा किया था या नहीं। याची के मामले को किशोर न्याय बोर्ड को निर्दिष्ट करने के लिए समुचित आदेश पारित करने के लिए मामला अवर न्यायालय के पास वापस भेजा जाता है।

9. तद्नुसार, इस पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं जया रॉय, न्यायमूर्ति

नीरज महेश्वरी

बनाम

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि॰ एवं अन्य

L.P.A. No. 450 of 2010. Decided on 7th June, 2011.

बीमा अधिनियम, 1938—धारा 45—मेडिक्लेम पॉलिसी–इस आधार पर कि बीमारी पुरानी थी, नवीकरण के लिए दावा अस्वीकार–पॉलिसी नवीकृत की जा सकती है यदि नवीकरण समय पर इप्सित किया जाता है–याची ने 7 दिनों की परिसीमा की अवधि के अवसान के बाद पॉलिसी के नवीकरण के लिए आवेदन दिया–उसने परिसीमा की अवधि के भीतर आवेदन नहीं दिया था ताकि अपनी पूर्व विद्यमान बीमारी को आच्छादित कर सके–समय बीत जाने के कारण संविदा समाप्त हो गयी–याची किसी अनुतोष का हकदार नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

निर्णयज विधि.–(2001)6 JT 125—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar, For the Appellant; Mr. D.C. Ghose, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी दिनांक 18.5.2010 के आदेश से व्यथित है, जिसके द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी की रिट याचिका यह संप्रेक्षित करते हुए खारिज कर दी गयी थी कि स्वीकृत रूप से याची की मेडिक्लेम पॉलिसी का अवसान दिनांक 18 जुलाई, 2004 को हो गया था और लगभग छह माह बाद याची ने अपनी मेडिक्लेम पॉलिसी के नवीकरण के लिए अनुरोध करते हुए पत्र के साथ ब्लैंक चेक भेजा था।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि **बिमान कृष्ण बोस बनाम यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी लि॰, (2001)6 J.T. 125,** में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय की दृष्टि में, कंपनी को भूतलक्षी प्रभाव से पॉलिसी का नवीकरण करने का अधिकार था, अत:, बीमा कंपनी को पॉलिसी नवीकृत करना चाहिए था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि परिशिष्ट-7 के तहत बीमा कंपनी ने याची का दावा उसकी बीमारी के कारण अस्वीकार कर दिया था क्योंकि उन्होंने इस बीमारी को पुराना पाया था और इसलिए इस आधार पर बीमा कंपनी पॉलिसी के नवीकरण के लिए प्रार्थना अस्वीकार नहीं कर सकती थी।

4. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और परिशिष्ट-7 का परिशीलन किया है और **बिमान कृष्ण बोस (ऊपर)** के मामले में दिए गए निर्णय पर भी विचार किया है। यह विवाद में नहीं है कि याची की मेडिक्लेम पॉलिसी का अवसान दिनांक 18 जुलाई, 2004 को हो चुका था और याची के अनुसार उसे बीमा कंपनी के एजेन्ट द्वारा भ्रमित किया गया था। अत:, वह पॉलिसी को समय पर नवीकृत नहीं करवा सका था और इसके लिए उसने कंपनी के एजेन्ट के विरुद्ध शिकायत किया था और तब उसने बीमा पॉलिसी के नवीकरण के लिए कंपनी को ब्लैंक चेक और पत्र भेजा था। उक्त तथ्यों की दृष्टि में, यह स्पष्ट है कि याची ने एजेन्ट जो रिट याचिका में पक्षकार नहीं था अथवा हमारे समक्ष उपस्थित नहीं था, के विरुद्ध अभिकथनों के आधार पर पॉलिसी का नवीकरण इप्सित किया है।

5. चाहे जो भी हो, पॉलिसी नवीकृत की जा सकती है यदि नवीकरण समय पर इप्सित किया गया हो और स्वीकृत रूप से वर्तमान मामले में, पॉलिसी के अवसान की तिथि से सात दिनों की अवधि के भीतर पॉलिसी नवीकृत करवाई जानी चाहिए थी और ऐसा नहीं किया गया है और मेडिक्लेम पॉलिसी के अवसान की तिथि से छह माह बाद पॉलिसी के नवीकरण के लिए आवेदन दिया गया था। **बिमान कृष्ण बोस (ऊपर)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस विवाद्यक पर विचार किया है, जिसकी वर्तमान मामले के तथ्यों के प्रति कोई प्रासंगिकता नहीं है। उक्त मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि बीमा पॉलिसी के नवीकरण के लिए आवेदक ने समय पर आवेदन दिया था और बीमा कंपनी द्वारा नवीकरण के लिए प्रार्थना की अस्वीकृति को माननीय उच्च न्यायालय द्वारा अभिखंडित कर दिया गया था,

और इसलिए, पॉलिसी नवीकृत कर दी गयी थी। जहाँ तक अन्य शर्तों का संबंध है, अपवर्जन खंड का अवलंब लेना इप्सित किया गया था, जो प्रावधानित करता था कि पूर्व विद्यमान बीमारी आच्छादित नहीं की जा सकती है, और उस स्थिति में, मामले पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पॉलिसी के नवीकरण के मामले में ऐसे खंड के परिणाम पर विचार किया था और अभिनिर्धारित किया था कि इसका बीमा पॉलिसी के नवीकरण को गलत रूप से इनकार कर देने का अनर्थकारी प्रभाव होगा और रिष्टि तथा नुकसान को दूर नहीं किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक ही जोखिम के आच्छादन के लिए पॉलिसी के नवीकरण और नयी पॉलिसी के बीच भिन्नता पर विचार किया।

6. यहाँ इस मामले में, कोई विवाद नहीं है कि याची ने परिसीमा की अवधि के अवसान के बाद पॉलिसी के नवीकरण के लिए आवेदन दिया था और मामला यह नहीं है कि उसने परिसीमा की अवधि के भीतर आवेदन दिया था ताकि उसके पूर्व विद्यमान बीमारी को आच्छादित किया जा सके। यह ऐसा मामला है जहाँ संविदा समय बीत जाने के कारण समाप्त हो गयी थी और समय रहते नवीकरण इप्सित नहीं किया गया था, अतः, याची किसी अनुतोष का हकदार नहीं है और **बिमान कृष्ण बोस (ऊपर)** का मामला इस मामले में प्रासंगिक नहीं है।

7. उक्त की दृष्टि में, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्तिगण

अमित संदीप खन्ना

बनाम

भारत संघ, सचिव के माध्यम से एवं अन्य

W.P. (HB) No. 388 of 2010. Decided on 3rd May, 2011.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—अवस्क बालिका की सुरक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका–बालिका जन्म से न्यूजीलैंड की नागरिक है और वर्तमान में अपनी माता के साथ राँची में रह रही है–याची बालिका का पिता है–विद्यालय रिपोर्ट दर्शा रहा है कि बालिका अपनी माता के साथ अच्छे से रह रही है और उसके साथ ज्यादा लगाव विकसित कर लिया है–केवल न्यूजीलैंड के उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर उसे न्यूजीलैंड ले जाने का निर्देश माता को देना समुचित नहीं होगा–इस मासूम उम्र में उसे मुकदमेबाजी, अलगाव, आदि मनोवैज्ञानिक आघात से पीड़ित होने की संभावना है जो उसमें व्यक्तित्व विकार कारित कर सकता है–न्यायालय अनुतोष प्रदान करने का इच्छुक नहीं है–उसके इस दावा की दृष्टि में कि वह संतान की देख-भाल अच्छी तरह करने में सक्षम है, माता को भरण-पोषण मामला वापस लेने के निर्देश के साथ याचिका को निपटाया गया। (पैराएँ 9 से 11)

निर्णयज विधि.–(2010)1 SCC 591; (1998)1 SCC 112; (2000)3 SCC 14; 1997 PLJR 184; (2010)1 SCC 174—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Himanshu Kumar Mehta, Manjusri Patra, Ashok Kumar Pal, For the Petitioner; M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, For the Respondent No.3.

आदेश

पक्षों को अंतिम रूप से सुना गया।

2. यह रिट याचिका याची-अमित और प्रत्यर्थी सं॰ 3 शीना के विवाह संबंध से जन्मे अवयस्क बालिका मिताली की सुरक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए और बालकों की देखरेख अधिनियम, 2004 के अधीन उस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.6.2010 के आदेश की दृष्टि में न्यूजीलैंड, ऑकलैंड के उच्च न्यायालय के समक्ष मिताली को प्रस्तुत करने के लिए शीना को निर्देश देने के लिए दाखिल किया गया है।

3. अमित के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री एच॰ के॰ मेहता ने निम्नलिखित निवेदन किया:-

न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय के उक्त आदेश की दृष्टि में, उस न्यायालय के समक्ष मिताली को प्रस्तुत करने का निर्देश शीना को दिया जाए। मिताली जन्म से न्यूजीलैंड की नागरिक है जिसे शीना द्वारा गैरकानूनी रूप से राँची में निरुद्ध किया गया है। न्यूजीलैंड का नागरिक होने के नाते मिताली के पास उस देश में शिक्षा/चिकित्सीय सुविधा, आदि का अनेक विशेषाधिकार और लाभ होगा। अमित शीना की तुलना में वित्तीय रूप से उच्चतर है और अनेक धनीय लाभों में मिताली अमित की नॉमिनी है। मिताली के कल्याण के लिए, उसकी अभिरक्षा अमित को सौंप दी जानी चाहिए। शीना ने भरण-पोषण के लिए मामला दाखिल किया है जो दर्शाता है कि वह समुचित रूप से संतान की देखभाल करने की अवस्था में नहीं है। इन सारे मामलों का परीक्षण न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है और इसलिए **शिल्पा अग्रवाल (सुश्री) बनाम अविरल मित्तल एवं एक अन्य, (2010)1 SCC 591,** के निर्णय के निबंधनानुसार इस मामले में आदेश पारित किए जा सकते हैं। अमित न्यूजीलैंड में समस्त खर्चों जैसे मिताली के साथ शीना का हवाई भाड़ा, उनके रहने, खाने, मुकदमा व्यय, स्थानीय यात्रा आदि को वहन करने के लिए तैयार है। शीना ने केवल अमित को परेशान, अपमानित और ब्लैकमेल करने की दृष्टि से भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A/34 के अधीन मामला भी दाखिल किया है। वह तलाक की डिक्री के बिना पुनर्विवाह करने का प्रयास कर रही है और यदि वह पुनर्विवाह करती है, तब यह ज्ञात नहीं है कि कैसे उसके सौतेले पिता द्वारा उसका पालन-पोषण किया जाएगा।

4. दूसरी ओर, शीना के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निम्नलिखित निवेदन किया।

इस न्यायालय का सर्वोपरि ध्यान मिताली का कल्याण और प्रसन्नता होना चाहिए। अमित ने न्यूजीलैंड कुटुंब न्यायालय, मनुकाऊ के समक्ष बालकों की देखरेख अधिनियम, 2004 की धाराओं 47 और 48 के अधीन पैरेंटिंग आदेश के लिए आवेदन दाखिल किया। शीना ने दिनांक 19.9.2009 को कूरियर द्वारा अपना लिखित कथन भेजा। तब अमित ने समरुप अनुतोषों के लिए मार्च, 2009 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पास गया। उक्त रिट याचिका (दांडिक) सं॰ 35 वर्ष 2010 को दिनांक 24.3.2010 को उच्च न्यायालय के पास जाने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिए गए के रूप में खारिज कर दिया गया था। दिनांक 29.4.2010 को, न्यायिक पृथक्करण का एकपक्षीय आदेश पारित किया गया था। अमित ने दिनांक 25.5.2010 को न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय के समक्ष अंतर्वर्ती आवेदन दाखिल किया जिस पर दिनांक 17.6.2010 को मुख्यत: इस आधार पर कि न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने की अधिकारिता थी, अंतरिम आदेश पारित किया गया था। तब अमित ने बंदी प्रत्यक्षीकरण की इस रिट याचिका को दाखिल किया। उसने न्यायिक पृथक्करण के लिए शीना द्वारा दाखिल भारत में वैवाहिक वाद के लंबित रहने के बारे में कुटुंब न्यायालय और न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय को कुछ नहीं बताया। मिताली, जब वह दो वर्ष की थी, को अमित की सहमति से शीना द्वारा भारत ले जाया गया था। तत्पश्चात् वह भारत में लगभग तीन वर्षों से रह रही है और विद्यालय में अच्छा कर रही है। दिनांक 24.10.2010 को वर्धित/परिवर्तित वीजा के समाप्त होने के पहले मिताली ने भारतीय मूल के व्यक्ति पी॰ आई॰ ओ॰ प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया जिसके अनुसार वह भारत में वर्ष 2025 तक रह सकती है। यदि मिताली को इस मासूम उम्र में अपनी माता से अलग किया जाता है, वह मानसिक सदमे और व्यक्तित्व विकार से पीड़ित होगी। शीना और मिताली के भारत आने के बाद, अमित तीन वर्षों तक भारत नहीं आया है जो दर्शाता है कि वह विवादों के समाधान अथवा मिताली के कल्याण के प्रति गंभीर नहीं है। शीना के पुनर्विवाह और मिताली

के सौतेला पिता पाने की आशंका अमित पर भी लागू होती है। शीना द्वारा दाखिल मामलों के संबंध में, उन्होंने निवेदन किया कि शीना न्यायालय में उपस्थित है और वह प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय राँची के न्यायालय में लंबित भरण-पोषण केस सं॰ 157 वर्ष 2009 और दिनांक 12.2.2010 को अमित और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दाखिल भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A और 34 के अधीन मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष लंबित महिला सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 3 वर्ष 2010 से उद्भूत होने वाले जी॰ आर॰ केस सं॰ 660 वर्ष 2010 को वापस लेने का वचन देती है। श्री प्रसाद ने **धनवंती जोशी बनाम माधव उंदे, (1998)1 SCC 112 और सरिता शर्मा, बनाम सुशील शर्मा, (2000)3 SCC 14** में प्रदत्त निर्णयों पर विश्वास किया। **अमर सिंह यादव बनाम शांति देवी,** 1997 PLJR 184, में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास करते हुए, उन्होंने निवेदन किया कि **शिल्पा अग्रवाल (ऊपर)** और **वी॰ रवि चंद्रन (डॉ॰) बनाम भारत संघ, (2010)1 SCC 174,** के निर्णयों की तुलना में **धनवंती जोशी (ऊपर)** के निर्णय पर विश्वास किया जाना चाहिए और उसको प्राथमिकता देनी चाहिए। उन्होंने इस रिट याचिका में अभिसाक्षी की सक्षमता पर भी प्रश्न उठाया।

5. वर्तमान मामले के तथ्यों पर आने से पहले, पक्षों द्वारा विश्वास किए गए निर्णयों का परीक्षण करना लाभदायी होगा।

धनवंती जोशी (ऊपर) के मामले में अमरीकी न्यायालय के आदेशों जिसमें धनवंती को केवल मुलाकात का अधिकार दिया गया था, के विरुद्ध संतान को भारत लाया गया था। पैराग्राफ 18(2) में निम्नलिखित प्रश्न पूछा गया था:-

> *"18(2) अमरीकी न्यायालय के आदेश के विपरीत वर्ष 1984 में अपीलार्थी द्वारा संतान को भारत लाने अथवा बॉम्बे उच्च न्यायालय में संतान को प्रस्तुत नहीं करने से संबंधित तथ्यों का वर्ष 1993 अथवा वर्ष 1997 में संतान के सर्वोपरि कल्याण के बारे में विनिश्चय करते हुए भारत के न्यायालयों के निर्णय पर कोई प्रभाव है?*

अन्य बातों के साथ साथ पैराग्राफ 21 में संप्रेक्षित किया गया था कि:-

> *"21. .....संतानों की अभिरक्षा से संबंधित आदेश अपनी प्रकृति के कारण अंतिम नहीं हैं बल्कि वे अंतर्वर्ती प्रकृति के हैं और अभिरक्षा के परिवर्तन की अपेक्षा करते हुए परिस्थितियों के परिवर्तन के प्रमाण पर भविष्य के किसी समय पर परिवर्तन के अध्यधीन है किंतु अभिरक्षा में ऐसे परिवर्तन को संतान के सर्वोपरि हित में होना सिद्ध होना चाहिए .....''*

अन्य बातों के साथ साथ यह भी संप्रेक्षित किया गया था कि पति की उच्चतर वित्तीय हैसियत अपनी माता की अभिरक्षा से संतान को अलग करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है।

पैराग्राफ 18(2) में पूछे गए उक्त प्रश्न पर पैराग्राफ 26 और आगे चर्चा की गयी थी। पैराग्राफ 28 में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया था:-

> *"28. ..... प्रिवी काउंसिल में अपील किए जाने पर लॉर्ड साइमंड ने अभिनिर्धारित किया कि कनाडा के न्यायालय के समक्ष अभिरक्षा से संबंधित कार्यवाहियों में सर्वोपरि ध्यान शिशु का कल्याण और प्रसन्नता था और उसकी अभिरक्षा के प्रति अमेरिका में विदेशी न्यायालय के आदेश को मामले की परिस्थितियों में सम्यक् अधिमान दिया जा सकता है किंतु विदेशी न्यायालय का ऐसा आदेश तथ्यों में से केवल एक था जिसे विचार में लेना होगा। आगे अभिनिर्धारित किया गया था कि संतान के कल्याण के संबंध में मामले के गुणागुण पर स्वतंत्र निर्णय निर्मित करना कनाडा के न्यायालय का कर्तव्य था। अमेरिका में विदेशी न्यायालय का आदेश संतान के कल्याण के आगे झुकेगा। ''न्यायालयों का सौजन्य इसके प्रवर्तन की नहीं बल्कि इसके गंभीर अनुचिंतन का मांग करता था।''*

कनाडा से उद्भूत होने वाले इस मामले, जो कनाडा और इंगलैंड के लिए विधि अधिकथित करता है, का अनुसरण बाद के मामलों में लगातार किया गया है। इस दृष्टिकोण को जे० बनाम सी० में हाऊस ऑफ लॉड्स द्वारा बार-बार दोहराया गया था। यही विधि अमेरिका (देखें 24, अमरीकी विधि शास्त्र, पैरा 1001) और ऑस्ट्रेलिया (देखें खमिस बनाम खामिस) में भी है।''

पैराग्राफ 29 में आगे निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया था:-

"29. .....(a) संक्षिप्त जाँच के मामले में, न्यायालय अभिरक्षा को उस देश को लौटाएगा जिससे संतान को हटाया गया था जब तक ऐसे लौटाए जाने को बालक के प्रति हानिकारक नहीं दर्शाया जा सकता है। (b) विस्तृत जाँच के मामले में, न्यायालय गुणागुण पर विचार कर सकता है कि स्थायी कल्याण कहाँ है और विदेशी न्यायालय के आदेश को अनदेखा कर सकता है अथवा किसी अन्य देश से बालक हटाए जाने के तथ्य को परिस्थितियों में से केवल एक के रूप में मान सकता है। निर्णायक प्रश्न कि क्या न्यायालय (उस देश का जिसमें बालक को ले जाया गया है) संक्षिप्त अथवा विस्तृत प्रक्रिया का प्रयोग करेगा, का निश्चय बालक के कल्याण के अनुसार करना होगा।.... यह मजबूती से अभिनिर्धारित किया गया है कि सुविधाजनक फोरम की अवधारणा का प्रतिपाल्य अधिकारिता में कोई स्थान नहीं है।''

पैराग्राफ 33 में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया था:-

"33. जहाँ तक गैर-कन्वेन्शन देशों का संबंध है अथवा जहाँ हटाया जाना कंवेंशन अपनाए जाने के पहले की अवधि से संबंधित है, विधि यह है कि देश, जिसमें संतान को ले जाया गया है, का न्यायालय संतान के कल्याण को सर्वोपरि महत्व देते हुए गुणागुण के प्रश्न पर विचार करेगा और विदेशी न्यायालय के आदेश पर विचार में लिए जाने वाले केवल एक कारक के रूप में विचार करेगा जैसा मैकी बनाम मैकी में कथन किया गया है जबतक न्यायालय बालक के हित में संक्षिप्त अधिकारिता का प्रयोग करना सुयोग्य नहीं समझता है और इसका तुरन्त वापस किया जाना इसके हित के लिए है जैसा L.Re में स्पष्ट किया गया है, हाल-फिलहाल में वर्ष 1996-97 में, P (अवयस्क) (बालक का अपहरणः नन-कंवेंशन देश) Re : वार्ड, एल० जे०, द्वारा [1996 Current Law Year Book pp. 165-166] में अभिनिर्धारित किया गया है कि यह विनिश्चित करने में कि क्या बालक, जो हेग कंवेंशन का पक्ष नहीं था, के नियमित निवास स्थान से अपहृत किया गया है, को लौटाने का आदेश देने के लिए न्यायालय का अभिभावी अनुचिंतन संतान का कल्याण होना ही होगा। न्यायाधीश को संतान को लौटाने का आदेश देते हुए कंवेंशन के अनुच्छेद 13 के प्रावधानों को लागू, करने का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है जब तक हानि का गंभीर जोखिम स्थापित नहीं किया जाता है। इसे भी देखें ए० (अवयस्क) (अपहरण : नन-कंवेशन देश) [Re, The Times 3.7.97 वार्ड, एल० जे० (सी० ए०) द्वारा (Current Law, अगस्त, 1997, पृष्ठ 13 में उद्धृत) यह अमेरिका से बच्चे को हटाए जाने से संबंधित प्रतिवाद का उत्तर देता है।''

सरिता शर्मा (ऊपर) के मामले में, सरिता ने अपने मुलाकात अधिकारों के प्रयोग में अपने पति के निवास स्थान से संतानों को उठाया और तब वह अमेरिकी न्यायालय के आदेशों के विरुद्ध उनके साथ भारत चली आयी। अन्य बातों के साथ साथ निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया था:-

"6. अतः, इस तथ्य द्वारा पूर्णतः मार्गदर्शित होना समुचित नहीं होगा कि अपीलार्थी सरिता ने उस देश के न्यायालय के आदेश के बावजूद अमेरिका से संतानों को हटाया था। इसी तरह, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अमेरिकी न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, यद्यपि यह प्रासंगिक है, अवयस्क संतानों के कल्याण के अनुचिंतन पर अभिभावी

नहीं हो सकता है।.....यद्यपि यह सत्य है कि दोनों बच्चों के पास अमरीकी नागरिकता है और यह संभावना है कि वे अमेरिका में बेहतर शिक्षा पा सकते हैं, यह संदेहास्पद है कि क्या प्रत्यर्थी बच्चों की समुचित देखरेख करने की स्थिति में होगा जब वे काफी छोटे हैं। उनमें से एक पुत्री है। उसकी आयु पाँच वर्ष है। सामान्यतः, पुत्री को माता के साथ रहने की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि उसकी समुचित देखभाल हो सके।. .....''

6. शिल्पा अग्रवाल (ऊपर) के मामले में, जिस पर श्री मेहता द्वारा भारी विश्वास किया गया है, इंगलैंड के न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के निबंधनानुसार अपनी साढ़े तीन वर्ष की पुत्री को इंगलैंड ले जाने का निर्देश शिल्पा अग्रवाल को देते हुए आदेश पारित किया गया था। **शिल्पा अग्रवाल (ऊपर)** के निर्णय में धनवंती जोशी और सरिता शर्मा के निर्णयों को निर्दिष्ट मात्र किया गया था। अन्य बातों के साथ साथ संप्रेक्षित किया गया था कि इस पर जोर देने कि अवयस्क को इसकी अधिकारिता में वापस किया जाए, को छोड़कर इंगलिश न्यायालय का आशय संतान को माता से अलग करने का नहीं था जब तक उसकी अभिरक्षा के संबंध में अंतिम निर्णय नहीं लिया जाता है; और कि संतान की राष्ट्रीयता और कि यह तथ्य कि माता-पिता दोनों ने लाभ के लिए इंगलैंड में काम किया था और उन्होंने इंगलैंड में नागरिक का स्थायी दर्जा भी प्राप्त कर लिया था, को ध्यान में रखते हुए इस संबंध में अंतिम निर्णय इंगलिश न्यायालयों पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

7. वी॰ रवि चंद्रन (ऊपर) के पश्चातवर्ती मामले में भी पैराग्राफ 29 में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया था:–

"29. उस देश जहाँ पक्षों ने अपना दांपत्य गृह स्थापित किया था, के न्यायालय के आदेशों के उल्लंघन में माता-पिता में से एक के द्वारा एक देश से किसी अन्य देश में हटाए गए संतान की अभिरक्षा के मामले पर विचार करते हुए, उस देश जहाँ संतान को ले जाया गया है के न्यायालय को प्रथमतः इस प्रश्न पर विचार करना होगा कि क्या न्यायालय अभिरक्षा के प्रश्न पर विस्तृत जाँच संचालित कर सकता था अथवा मामले पर संक्षिप्त रूप से विचार करते हुए माता/पिता को संतान की अभिरक्षा उस देश, जिससे संतान को हटाया गया था, को लौटाने और संतान के कल्याण से संबंधित समस्त पहलूओं पर स्वयं उसके देश में न्यायालय में अन्वेषण किया जाए, का आदेश दे सकता था। यदि न्यायालय यह दृष्टिकोण अपनाता है कि विस्तृत जाँच आवश्यक है, स्पष्टतः न्यायालय संतान के कल्याण और प्रसन्नता के प्रति सर्वोपरि ध्यान के रूप में विचार करने के लिए बाध्य है और संतान के चरित्र, व्यक्तित्व और मेधा के पूर्ण विकास और स्थायित्व एवं सुरक्षा, प्रेम एवं समझदारी, देखरेख एवं मार्गदर्शन सहित संतान के कल्याण के समस्त प्रासंगिक पहलूओं पर विचार करेगा। ऐसा करते हुए उसकी अभिरक्षा के प्रति विदेशी न्यायालय के आदेश को सम्यक् अधिमान दिया जा सकता है; विदेशी निर्णय का अधिमान और विश्वासोत्पादक प्रभाव प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।''

किंतु, उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, पत्नी को संतान को अमेरिका ले जाने का निर्देश दिया गया था। यह ध्यान में लिया गया था कि संतान आदित्य के कल्याण और प्रसन्नता और उसके सर्वोत्तम हितों को दृष्टि में रखते हुए, पक्षों ने अमेरिका में सक्षम न्यायालयों से उसकी अभिरक्षा लालन-पालन अधिकारों, भरण-पोषण, आदि से संबंधित सहमति आदेशों की एक श्रृंखला को प्राप्त किया था; और ऐसे आदेशों के विरुद्ध पत्नी आदित्य को भारत ले गयी थी और केवल सी॰ बी॰ आई॰ की मदद से उनका पता लगाया जा सका था। यह भी ध्यान में लिया गया था कि आदित्य अमेरिका का नागरिक था और वहाँ जन्म लेने, पलने-बढ़ने और अपने आरंभिक वर्षों को व्यतीत करने के चलते उसका स्वाभाविक आवास स्थान अमेरिका था।

8. अब वर्तमान मामले के तथ्यों के बारे में अमित न्यूजीलैंड में कार्यरत था। उसका विवाह शीना के साथ दिनांक 20.1.2005 को राँची में हुआ। वे न्यूजीलैंड चले गए। वहाँ दिनांक 12.12.2006 को मिताली का जन्म हुआ। दिनांक 14.12.2006 को, अमित ने न्यूजीलैंड की नागरिकता प्राप्त की। दिनांक 19.11.2008 को, शीना अमित की सहमति से वापस लौटने के टिकटों के साथ मिताली के साथ भारत आयी। फरवरी 2009 में, शीना ने प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, राँची के समक्ष न्यायिक पृथक्करण के लिए उक्त वैवहिक वाद दाखिल किया। उक्त वाद के नोटिस का तामील न्यूजीलैंड में अमित पर किया गया था। तत्पश्चात उसने दिनांक 19.9.2009 को कुटुम्ब न्यायालय, मनुकाऊ के समक्ष धाराओं 47 और 48 के अधीन लालन-पालन आदेश के लिए याचिका दाखिल किया। शीना ने कूरिअर द्वारा अपना लिखित कथन भेजा। अमित ने समरुप अनुतोषों के लिए भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मार्च, 2010 में रिट याचिका (दांडिक) सं॰ 35 वर्ष 2010 दाखिल किया। समुचित अनुतोष के लिए उच्च न्यायालय के पास जाने की स्वतंत्रता के साथ वापस लिए गए के रूप में रिट याचिका को दिनांक 29.3.2010 को खारिज कर दिया गया था। दिनांक 29.4.2010 को उक्त वैवाहिक वाद में न्यायिक पृथक्करण का एकपक्षीय आदेश पारित किया गया था। दिनांक 25.5.2010 को अमित ने (i) उच्च न्यायालय की अभिभावकता के अधीन मिताली को रखने के लिए, (ii) उस पर न्यायालय के आदेश को तामील किए जाने के 14 दिन के भीतर मिताली को न्यूजीलैंड वापस भेजने का निर्देश शीना को देने के लिए, (iii) लौटने पर मिताली का पासपोर्ट ऑकलैंड स्थित उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री के पास दर्ज करने के लिए और (iv) अगले आदेशों तक ऑकलैंड क्षेत्र में उसे रहने का निर्देश देने के लिए न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय के समक्ष अंतर्वर्ती आवेदन दाखिल किया। न्यूजीलैंड के उच्च न्यायालय ने अगले आदेशों तक उक्त प्रार्थनाओं को अनुज्ञात किया।

9. अमित ने कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष और न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय के समक्ष दिनांक 19.8.2009 को दाखिल अपने अंतर्वर्ती आवेदन में इस बात को छुपाया कि न्यायिक पृथक्करण के लिए शीना द्वारा दाखिल वैवाहिक वाद भारत में लंबित था। उक्त अंतर्वर्ती आवेदन को दाखिल करने के बाद भी, उसने समरुप अनुतोषों के लिए भारत के सर्वोच्च न्यायालय की शरण ली। समुचित अनुतोषों के लिए उच्च न्यायालय के पास जाने की स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका को वापस ले लिया गया था किंतु उसने न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय के समक्ष जाना चुना जिस पर दिनांक 17.6.2010 को उक्त आदेश पारित किया गया था, जिसके आधार पर अमित द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि उसके पैत्रिकता/अभिभावकता को विनिश्चित करने के लिए न्यायालय के समक्ष मिताली को प्रस्तुत करने का निर्देश शीना को दिया जाए। यह सत्य है कि न्यूजीलैंड का नागरिक होने के नाते मिताली के पास वहाँ अनेक विशेषाधिकार होंगे। यह भी प्रतीत होता है कि शीना की तुलना में अमित की वित्तीय हैसियत उच्चतर है किंतु शीना ने दावा किया है कि वह अपने पिता के कंफेक्शनरी की दुकान में काम कर रही है। विद्यालय के प्रगति रिपोर्ट से यह भी प्रतीत होता है कि मिताली शीना के साथ वर्तमान में अच्छा जीवन बिता रही है। मिताली न्यूजीलैंड में अमित और शीना के साथ दो वर्षों से कम तक रही थी और तब से वह तीन वर्षों से शीना के साथ भारत में है। स्वाभाविकत:, अब उसने शीना से ज्यादा लगाव विकसित कर लिया है। हमारे मत में और पूर्ण सम्मान के साथ केवल न्यूजीलैंड उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.6.2010 के आदेश के आधार पर मिताली को न्यूजीलैंड ले जाने का निर्देश शीना को देना समुचित नहीं होगा। इस मासूम उम्र में, उसके मुकदमेबाजी, अलगाव, आदि के मानसिक सदमें से पीड़ित होने की संभावना है जो मिताली में व्यक्तित्व विकार कारित कर सकता है।

10. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, और पक्षों द्वारा विश्वास किए गए निर्णयों की दृष्टि में, हम अनुतोष प्रदान करने के इच्छुक नहीं है जैसी प्रार्थना इस रिट याचिका में की गयी है।

11. इस मामले से अलग होने के पहले, हम दिनांक 28.3.2011 के आदेश को ध्यान में ले सकते हैं जिसमें इस न्यायालय ने शीना द्वारा एक ओर दाखिल किए गए भरण-पोषण मामला और दूसरी ओर

उसके दावा कि वह मिताली की भलीभाँति देखरेख करने में सक्षम है, पर आश्चर्य व्यक्त किया था। किंतु, जैसा पहले ही ध्यान में लिया गया है, शीना ने भरण-पोषण केस सं॰ 157 वर्ष 2009 और भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A और 34 के अधीन महिला सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 3 वर्ष 2010 से उद्भूत होने वाले, जी॰ आर॰ केस सं॰ 660 वर्ष 2010, जो मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष लंबित है, को वापस लेने का वचनबंध दिया है। उसे आज से दो सप्ताह के भीतर ऐसा करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें विफल रहने पर मामले में गंभीर रुख लिया जाएगा। संबंधित न्यायालय उक्त मामलों को वापस लेने की अनुमति उसे देगा।

परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका खारिज की जाती है। किंतु, व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

प्रीति रंजन मुखर्जी

बनाम

नलिनि रंजन मुखर्जी एवं एक अन्य

Appeal From Original Decree No. 60 of 2007. Decided on 4th May, 2011.

(क) हिंदू विधि–बँटवारा–''मिश्रण के सिद्धांत'' के आधार पर विचारण न्यायालय ने वाद डिक्री किया–सहदायिकी संपत्ति का अस्तित्व सिद्धांत का आधार है–कोई साक्ष्य नहीं है कि कोई संयुक्त परिवार संपत्ति था–वादी के गवाहों का परिसाक्ष्य इस सिद्धांत का समर्थन नहीं करता है कि संपत्ति संयुक्त स्टॉक से थी–यदि वादी का ऐसा कोई आशय था कि संयुक्त परिवार के समस्त सहदायिकों द्वारा प्रश्नगत संपत्ति को बराबर रूप से शेयर किया जाए, तब उन सबों को प्रतिवादीगण के रूप में पक्षकार बनाना चाहिए था–पक्षों के असंयोजन के आधार पर भी वाद विफल होने का दायी है–आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त–अपील अनुज्ञात।

(पैराएँ 18 से 27)

निर्णयज विधि.–AIR 1987 SC 1242; AIR 1961 SC 1268; AIR 1976 SC 461; AIR 1968 SC 1276—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Manjul Prasad, Arbind, Manoj Kumar, For the Appellant; Mr. Atanu Banerjee, For the Respondents.

पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति.–बँटवारा वाद सं॰ 93 वर्ष 2002 (नलिनि रंजन मुखर्जी बनाम प्रीति रंजन मुखर्जी एवं एक अन्य) में सब-जज-IV, राँची द्वारा पारित दिनांक 21 फरवरी, 2007 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत प्रतिवादी की यह प्रथम अपील है।

2. दाखिल किया गया वाद केवल प्रतिवादी प्रीति रंजन मुखर्जी के विरुद्ध बँटवारा वाद था। बाद में, कार्यवाही के क्रम के दौरान प्रतिवादी सं॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी को भी प्रतिवादी सं॰ 2 के रूप में लाया गया था। वाद के पक्षगण सगे भाई हैं। इप्सित अनुतोष वाद संपति के बँटवारा के लिए था और उसके हिस्से का कब्जा उसे देने के लिए आगे प्रार्थना की गयी थी। विवाद भूखंड सं॰ 1361, होल्डिंग सं॰ 498, बर्द्धवान कंपाउंड, पी॰ एस॰ लालपुर, जिला राँची के संबंध में है। वादी ने दिनांक 22 मई, 1965 को किसी काली दास चटर्जी से रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के माध्यम से उक्त संपत्ति खरीदने का दावा किया। वादी और प्रतिवादी द्वारा संयुक्त रूप से उक्त संपत्ति के ऊपर निर्माण करने का दावा वादी द्वारा किया गया है। वादी ने वादपत्र में आगे कथन किया कि घर के निर्माण के समय एक अन्य भाई अर्थात् प्रिय रंजन मुखर्जी

जीवित था जिसका देहांत दिनांक 11 अक्टूबर, 1983 को कलकत्ता में हो गया। उसने कलकत्ता के लिए इस स्थान को स्थायी रूप से छोड़ दिया था और उसकी मृत्यु के बाद उसके परिवार के सदस्य वहीं निवास करते आ रहे थे। वादी दावा करता है कि यद्यपि घर में उसका हिस्सा था किंतु प्रतिवादी संपूर्ण घर पर काबिज हो गया है और वादी को अपने साथ रहने नहीं दे रहा है और, इसलिए, इसने बँटवारा वाद के संस्थापन को आवश्यक बनाया।

3. अपना लिखित कथन दाखिल करके अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वादी के मामले पर विवाद किया। वाद संपत्ति के ऊपर हक और कब्जा, जैसा वादी द्वारा दावा किया गया है, को विवादित किया गया था और परिणामस्वरुप प्रतिवादी ने अभिवचन किया कि संपत्ति बाँटे जाने की दायी नहीं है क्योंकि वादी सह-अंशधारी नहीं है। सुख रंजन मुखर्जी, जिसे कार्यवाही के क्रम में प्रतिवादी सं॰ 2 के रूप में लाया गया है, ने भूमि खरीदने के लिए संपूर्ण प्रतिफल धन का भुगतान किया था और प्रतिवादी सं॰ 1 की आय से घर का निर्माण किया गया था। वादी का संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं है और, इसलिए, बँटवारा इप्सित करने का अधिकार उसे नहीं है।

4. प्रतिवादी सं॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी द्वारा पृथक लिखित कथन दाखिल किया गया है जिसने प्रतिवादी सं॰ 1 के मामले का समर्थन किया।

5. पक्षों द्वारा मौखिक साक्ष्य और दस्तावेजी साक्ष्य दिया गया है।

6. अवर न्यायालय ने कुल सात विवाद्यकों को विरचित किया जिन्हें यहाँ पर नीचे संगणित किया जाता है:-

1. क्या वाद जैसा इसे विरचित किया गया है पोषणीय है?

2. क्या वादी के पास वैध वाद हेतुक है?

3. क्या वाद संपत्ति के लिए वादी और प्रतिवादी के बीच टाइटल और कब्जा की एकता है?

4. क्या वाद पक्षों के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण है?

5. क्या वाद भूमि के ऊपर भवन का निर्माण प्रतिवादी द्वारा दिए गए कोष से किया गया है जैसा उसके द्वारा दावा किया गया है अथवा पक्षों के अन्य भाईयों की आय से किया गया है और वादी द्वारा बराबर योगदान किया गया था?

6. क्या वादी बँटवारा के लिए डिक्री का हकदार है जैसा दावा किया गया है?

7. किन अन्य अनुतोष/अनुतोषों, यदि हो, का वादी हकदार है?

7. विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि भूमि की खरीद और घर के निर्माण की ओर अपना धनीय योगदान स्थापित करने में वादी विफल रहा। अवर न्यायालय का निष्कर्ष था कि प्रतिवादी सं॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी ने भूमि की खरीद के लिए धन दिया और निर्माण के लिए धन का योगदान प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा दिया गया था। अवर न्यायालय ने 'मिश्रण के सिद्धांत' के आधार पर वाद डिक्री किया। अवर न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संयुक्त परिवार के संयुक्त स्टॉक से संपत्ति खरीदी गयी थी और निर्माण किया गया था और, इसलिए, वादी के सह-अंशधारी होने के नाते उसका हिस्सा हिंदू विधि के अधीन मान्यता प्रदान किए जाने का दायी है। वादी के पक्ष में एक तिहाई और प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 के लिए एक-तिहाई की सीमा तक संपत्ति का बँटवारा किया गया था और, तद्नुसार, डिक्री पारित किया गया था।

8. प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से उपस्थित श्री अरविन्द और श्री मनोज कुमार, अधिवक्ताओं की

सहायता से वरीय अधिवक्ता, श्री मंजुल प्रसाद, प्रत्यर्थी सं॰ 1/वादी की ओर से उपस्थित श्री अतानु बनर्जी और प्रत्यर्थी सं॰ 2 की ओर से उपस्थित श्री शशांक शेखर ने अपने तर्कों को प्रस्तुत किया।

9. तर्कों और मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य के सूक्ष्म संवीक्षण से वर्तमान प्रथम अपील में विनिश्चय के लिए निम्नलिखित बिन्दु सामने आते हैं:–

1. क्या पैतृक संपत्ति/एच॰ यू॰ एफ॰ के अस्तित्व के संबंध में किसी अभिवचन की अनुपस्थिति में मिश्रण के सिद्धांत को प्रयोज्य बनाया जा सकता था चूँकि 6 भाई और 4 बहन थे और वाद के परस्पर पक्षों के लिए केवल एक-तिहाई हिस्सा के लिए वाद डिक्री नहीं किया जा सकता था?

2. क्या अवर न्यायालय ने एक बिल्कुल नया मामला निर्मित किया जो अभिवचनों के परे था और साक्ष्य की अनुपस्थिति में वाद संपत्ति का बँटवारा नहीं किया जा सकता था?

3. क्या 1/2 हिस्सा का दावा करते हुए बँटवारा वाद दाखिल किया गया था किंतु सुख रंजन मुखर्जी द्वारा स्थापित किसी अनुतोष अथवा प्रतिदावा के बिना एक-तिहाई की सीमा तक दो प्रतिवादीगण और वादी के पक्ष में वाद डिक्री किया गया है?

10. वादी ने स्वयं का परीक्षण अ॰ सा॰ 1 के रूप में किया है। ममता मुखर्जी अ॰ सा॰ 2 हैं, रंजना मुखर्जी अ॰ सा॰ 3 हैं और अंत में गीता मुखर्जी को अ॰ सा॰ 4 के रूप में परीक्षित किया गया है। उन सबों ने वादी के मामले के समर्थन में अपना परिसाक्ष्य दिया है।

11. विद्युत मीटर बिल प्रदर्श 1, फोटोग्राफ प्रदर्श 2 लिखित कथन के साथ प्रतिवादी सं॰ 2 का शपथ पत्र प्रदर्श 3 और ब॰ सा॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी के मुख्तारनामा पर हस्ताक्षर प्रदर्श 4 दस्तावेजी साक्ष्य हैं।

12. प्रतिवादी ने निम्नलिखित गवाहों का परीक्षण किया: प्रतिवादी गवाह सं॰ 1 प्रीति रंजन मुखर्जी है, प्रतिवादी गवाह सं॰ 2 झरना मोइत्रा है और प्रतिवादी गवाह सं॰ 3 राज कुमार लाल है।

13. लिखित कथन में स्थापित अपने मामले के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य निम्नलिखित हैं: प्रदर्श A से A/1 अंतर्देशीय पत्र हैं, प्रदर्श B गीता मुखर्जी का पत्र है, प्रदर्श C पी॰ आर॰ मुखर्जी का पत्र है, प्रदर्श C/1 भी पी॰ आर॰ मुखर्जी का पत्र है, प्रदर्श C/3 गीता मुखर्जी का पत्र है, प्रदर्श C/3, C/4 और C/5 गीता मुखर्जी के पत्र हैं, प्रदर्श C/6 पी॰ आर॰ मुखर्जी का पत्र है, प्रदर्श D रजिस्टर्ड विक्रय विलेख है, प्रदर्श E लिखित में धन का विवरण है, प्रदर्श F प्रतिपर्ण है, प्रदर्श G, G/5 बैंक पत्र हैं जिन्हें आपत्ति के साथ चिन्हित किया गया है, प्रदर्श H से H/10 आपत्ति के साथ बैंक पत्र हैं, प्रदर्श I से I/8 पास बुक हैं, प्रदर्श J और J/1 लिखित कथन और शपथ पत्र पर हस्ताक्षर हैं और प्रदर्श J/2 मुख्तारनामा पर हस्ताक्षर हैं।

14. अपने बँटवारा वाद में स्थापित वादी का मामला यह है कि वादी और प्रतिवादी ने संयुक्त रूप से दिनांक 22 मई, 1965 को स्व॰ माधो कृष्ण चटर्जी के पुत्र कालिदास चटर्जी से संपत्ति खरीदा था, उन दोनों ने भूमि खरीदने के लिए योगदान दिया था और गृह योजना की मंजूरी प्राप्त करने के बाद संयुक्त स्वामित्व के अधीन निर्माण किया गया था। वादी आगे दावा करता है कि उसका भाई स्व॰ प्रिय रंजन मुखर्जी भूमि खरीदने और गृह निर्माण के समय जीवित था और उसने भी गृह निर्माण के लिए धनीय रूप से योगदान दिया था। बाद में कलकत्ता में उसकी मृत्यु हो गयी और उसका परिवार अब वहाँ बसा हुआ है। कलकत्ता में मृत भाई के अंतिम संस्कार के बाद वह दिनांक 13 अक्टूबर, 1983 को राँची आया। वादी ने घर को अधिभोग में लिया किंतु प्रतिवादी ने किसी तरह विवादित घर से संबंधित समस्त दस्तावेजों पर

कब्जा कर लिया जो ट्रंक में रखे हुए थे जो स्व॰ प्रियरंजन मुखर्जी का था। इस प्रकार, मूल कागजात केवल प्रतिवादी सं॰ 1 अपीलार्थी की अभिरक्षा में था। वादी ने वाद पत्र के पैराग्राफ 14 में दावा किया कि निर्माण वादी और उसके बड़े भाई स्व॰ प्रिय रंजन मुखर्जी द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था और उन्होंने अपने भाई अर्थात् श्री ज्ञान रंजन मुखर्जी से भी सहयोग लिया था चूँकि संपत्ति संयुक्त रूप से भाईयों की थी और इसलिए, वाद के पक्षगण घर में हिस्सा के हकदार हैं। जहाँ तक प्रिय रंजन मुखर्जी के परिवार के अन्य सदस्यों का संबंध है, वाद पत्र में प्रकथन किया गया है कि उसकी पत्नी ने अपने पति (वादी का भाई) को उसके जीवन काल के दौरान काफी पहले छोड़ दिया था और, इसलिए, उसका अंतिम संस्कार केवल वादी द्वारा किया गया था। उसने आगे कथन किया है कि परिवार के सदस्यों और उसके भाई, जो स्थायी रूप से इंगलैंड में बसा हुआ है, द्वारा किए गए समस्त प्रयास मित्रतापूर्ण समझौता कराने में विफल रहे। अत: वाद संस्थापित किया गया था।

15. प्रतिवादी सं॰ 1 के मामले के अनुसार, आरंभ से ही टाइटल की एकता को विवादित किया गया था। इसके अतिरिक्त, वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के अधीन वर्जित है। लिखित कथन में आगे प्राख्यान किया गया था कि पक्ष के असंयोजन के कारण वाद दोषपूर्ण है, वादी का सगा भाई सुख रंजन मुखर्जी वह व्यक्ति था जिसने अपने अनन्य आय से भूमि की खरीद के लिए धन दिया था और इसे केवल प्रतिवादी सं॰ 1 के लिए खरीदा गया था, जिसने अपने नाम पर घर का निर्माण करवाया था।

16. इस आपत्ति की दृष्टि में, बाद में कार्यवाही के क्रम में सुख रंजन मुखर्जी को प्रतिवादी सं॰ 2 के रूप में लाया गया था। दोनों प्रतिवादीगण की आपत्ति यह थी कि भूखंड के ऊपर निर्माण स्वयं प्रतिवादी द्वारा किया गया था। केवल प्रतिवादी के नाम पर भूमि की खरीद के लिए संपूर्ण प्रतिफल धन का भुगतान सुख रंजन मुखर्जी द्वारा किया गया था जो माइनिंग अभियंता के रूप में नियोजित था और प्रासंगिक समय पर वादी बेरोजगार था और उसके पास आय का कोई स्रोत नहीं था। केवल प्रतिवादी सं॰ 1 ने अपनी पृथक आय से समस्त फ्लैटों का निर्माण किया था, क्योंकि वह निर्माण की अवधि के दौरान अर्थात् वर्ष 1961 और आगे इंगलैंड में चार्टर्ड एकाउन्टेंट के रूप में सेवा था और वह समय-समय पर अपनी माता श्रीमती शैल बाला देवी और वादी को धन भेजा करता था और अपनी दो बहनों गीता मुखर्जी और गौरी मुखर्जी को भी धन भेजा करता था। निर्माण प्रिय रंजन मुखर्जी (अब मृत) द्वारा पूरा किया गया था और इसलिए वादी का दावा पूर्णत: तुच्छ था।

17. इन प्रश्नों कि क्या वादी और प्रतिवादी की संपत्ति के ऊपर टाइटल और कब्जा की एकता है और क्या वादी और प्रतिवादी दोनों ने भूमि की खरीद और भवन के निर्माण के लिए योगदान दिया है, से संबंधित विवाद्यक सं॰ 3 और 5 जिन्हें साथ-साथ विनिश्चित किया गया था, पर अवर न्यायालय के निर्णय को इस अपील में परीक्षित करने की आवश्यकता है।

18. मैंने निर्णय और अभिलेख का परिशीलन किया है और सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद मैं अवर न्यायालय के निष्कर्ष के साथ सहमत हूँ कि वादी की आय का स्रोत स्थापित नहीं किया गया है। वह यह दर्शाने में सक्षम नहीं रहा है कि वह कमा रहा था और प्रासंगिक समय पर उसे भरपूर आमदनी थी। अपनी आय के स्रोत के तौर पर प्रतिवादी ने दो भिन्न विवरणों को दिया है। पहला इस प्रभाव का है कि वादी वर्ष 1964 से वर्ष 1966 तक मद्रास में नियोजित था और दूसरा यह कि वह वर्ष 1965 में दुग्ध व्यवसाय में अंतर्ग्रस्त था, ये दोनों दो विरोधाभासी बयान हैं। वादी के इस प्रभाव के प्रतिवाद कि वह प्रतिमाह

450/- रुपया अर्जित कर रहा था, के समर्थन के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है। दो विरोधाभासी विवरणों की दृष्टि में अवर न्यायालय ने विशेषत: किसी भी दस्तावेजी साक्ष्य की अनुपस्थिति में आय के स्रोत पर अविश्वास किया। वादी वादपत्र के विवरण कि उसने भूमि की खरीद और गृह निर्माण में योगदान दिया था, को सिद्ध करने में विफल रहा।

19. मेरा दृष्टिकोण यह भी है कि वादी विक्रय विलेख के निष्पादन के समय पर आय के किसी स्रोत को स्थापित करने में पूर्णत: विफल रहा है। प्रतिवादी सं॰ 1 ने स्पष्ट रूप से कथन किया है कि केवल प्रतिवादी सं॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी ने प्रतिवादी सं॰ 1 के पक्ष में भूमि की खरीद में योगदान दिया और प्रतिवादी सं॰ 1 जो इंगलैंड में चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में कार्यरत था, की आय से निर्माण करवाया गया था। अनेक बैंक रसीदों, पत्रों और प्रतिवादी सं॰ 1 के मौखिक साक्ष्य ने उसके दावा को सिद्ध किया। इसके अतिरिक्त, वादी इस प्रमाण का बोझ वहन करने का दायी था कि उसकी स्वतंत्र आमदनी थी जिसका उपयोग गृह निर्माण में किया गया था। विचारण न्यायालय ने वादी के दावा पर पूर्णत: अविश्वास किया है और अभिनिर्धारित किया है कि प्रासंगिक समय पर वादी के किसी भी आय और भूमि की खरीद तथा प्रश्नगत गृह निर्माण में किसी निवेश को स्थापित करने के लिए तनिक भी साक्ष्य नहीं है। उसके द्वारा दिया गया एकमात्र साक्ष्य मौखिक परिसाक्ष्य है। चूँकि वह यह स्थापित करने में पूर्णत: विफल रहा है कि प्रासंगिक समय पर उसे स्वतंत्र आमदनी थी, अत: भूमि की खरीद और गृह निर्माण में उसके योगदान के संबंध में वादी का मामला असिद्ध करने के लिए यह पर्याप्त है।

20. किंतु अवर न्यायालय ने वैकल्पिक तर्क के आधार पर वाद डिक्री किया है कि ''मिश्रण के सिद्धांत'' को लागू करते हुए वादी ने संपत्ति के ऊपर टाइटल अर्जित किया है। संपत्ति एक ही पूर्वज से खरीदी गयी थी और इसलिए न्यायालय संयुक्त परिवार के एक ही पूर्वज से संपत्ति के खरीद और निर्माण के लिए मिश्रण के सिद्धांत का परीक्षण करने के लिए अग्रसर हुआ और अंत में इस निष्कर्ष पर आया कि वादी संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति का सदस्य होने के रूप में सह-अंशधारी बन गया।

21. मैं इस कारण से कि (I) यह वादी का मामला नहीं है कि प्रश्नगत संपत्ति संयुक्त स्टॉक अथवा आय से खरीदी गयी थी अथवा कि यह संयुक्त हिंदू परिवार था, मिश्रण के सिद्धांत के आधार पर विचारण न्यायालय के निष्कर्ष के साथ सहमत नहीं हूँ। मिश्रण का प्रश्न केवल तब उद्‌भूत होगा यदि वादी ने यह सिद्ध किया होता अथवा प्राख्यान भी किया होता कि परिवार संयुक्त परिवार था और संपत्ति के खरीदार का इसको सामान्य स्टॉक के साथ मिश्रित करने का आशय था और साथ-साथ यह तथ्य कि वादी के पक्ष में संपत्ति को संयुक्त रूप से धारण करने की अनुमति दी गयी थी। मैं मिश्रण के सिद्धांत की प्रयोज्यता के संबंध में अवर न्यायालय के निष्कर्ष के साथ सहमत नहीं हूँ। यह किसी का मामला नहीं है। वादी इस मामले के साथ नहीं आया है कि संपत्ति संयुक्त स्टॉक से थी अथवा परिवार में किसी प्रकार की संयुक्तता थी। इसके विपरीत वादी के गवाहों के मौखिक परिसाक्ष्य में किए गए प्राख्यान इस सिद्धांत का समर्थन नहीं करते हैं।

22. अभिवचनों के परे निष्कर्ष दर्ज करते हुए अवर न्यायालय ने विधि में पूर्ण रूप से गलती की। सर्वोच्च न्यायालय ने **राम स्वरुप गुप्ता बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज एवं अन्य, AIR 1987 Supreme Court 1242,** के मामले में अभिनिर्धारित किया कि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि किसी पक्ष को अपने अभिवचन के परे जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और यह कि समस्त आवश्यक तात्विक तथ्यों का अभिवचन पक्ष द्वारा अपने द्वारा स्थापित मामले के समर्थन में किया जाना चाहिए। अभिवचन का उद्देश्य और प्रयोजन विरोधी पक्ष को मामला, जिसका उसे सामना करना है, जानने

के लिए सक्षम बनाना है और तद्द्वारा निष्पक्ष विचारण सुनिश्चित करना है। पक्ष को आवश्यक तात्विक तथ्यों का कथन करना चाहिए ताकि अन्य पक्ष को आश्चर्यचकित नहीं किया जा सके। नि:संदेह अभिवचनों का उदारपूर्ण अर्थान्वयन होनी चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए कि केवल तकनीकी आधार पर न्याय के उद्देश्य को विफल नहीं किया जा सके। वर्तमान मामले में कहीं भी अभिवचन नहीं किया गया था कि प्रश्नगत भूमि संयुक्त परिवार के न्यूक्लियस से अथवा निश्चित कतिपय आमदनी, जो उस स्रोत से आयी जो संयुक्त था, से खरीदी गयी थी और तद्द्वारा निष्कर्षित किया जा सकता था कि स्रोत अथवा न्यूक्लियस, जो भूमि की खरीद अथवा गृह निर्माण की ओर ले गया, संयुक्त था। विनिर्दिष्ट मामला यह है कि संपत्ति प्रतिवादी सं॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी द्वारा खरीदी गयी थी और वादी एवं प्रतिवादी द्वारा गृह निर्माण किया गया था। पक्षों द्वारा दिए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के निर्धारण के बाद न्यायालय ने विनिर्दिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि विक्रय विलेख के निष्पादन के समय पर वादी आय के किसी स्रोत को स्थापित करने में पूरी तरह विफल रहा है। उसने किसी करार विलेख अथवा भुगतान किए गए विक्रय प्रतिफल के संबंध में अपनी पूर्ण अनभिज्ञता अभिव्यक्त किया है। वह यह स्थापित करने में बिल्कुल विफल रहा है कि उसके पास आय का कोई स्रोत है और प्रतिवादी सं॰ 2 जिसने भूमि की खरीद में योगदान दिया, को छोड़कर आय के किसी अन्य स्रोत के संबंध में कोई अभिवचन नहीं है। अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष यह है कि विक्रय विलेख के लिए प्रतिफल धन अनन्य रूप से प्रतिवादी सं॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी द्वारा और न कि वादी द्वारा दिया गया था। यह निष्कर्ष साक्ष्य और अभिवचनों के अनुकूल है। अवर न्यायालय ने ''मिश्रण के सिद्धांत'' के आधार पर वाद डिक्री किया है जो न तो वादी का मामला है और न ही प्रतिवादीगण का। वादी ने कोई प्रकथन तक नहीं किया है कि छह भाई और चार बहन एच॰ यू॰ एफ॰ के सदस्य थे और इसलिए उन सबों का बराबर का हिस्सा होगा। मिश्रण के सिद्धांत को लागू करने के बाद अवर न्यायालय यह परीक्षण करने का दायी था कि यह उपधारित करते हुए कि संपत्ति प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा खरीदी गयी थी, किंतु यह एच॰ यू॰ एफ॰ के सारे भाईयों के लिए थी। मिश्रण के सिद्धांत को लागू करते हुए न्यायालय विनिर्दिष्ट निष्कर्ष दर्ज करने का दायी था। इस प्रभाव का कोई अभिवचन नहीं है कि मिश्रण करने के आशय के साथ कॉमन स्टॉक में भूमि देने के लिए सुख रंजन मुखर्जी की ओर से ऐसा कोई कृत्य किया गया था अथवा कोई दस्तावेजी साक्ष्य दिया गया था। इस प्रभाव का कोई प्राख्यान अथवा निष्कर्ष नहीं है कि अपने पृथक अधिकार को अधित्यक्त करने का कोई आशय था। वस्तुत: केवल प्रतिवादी सं॰ 1 के विरुद्ध बराबर हिस्सा का दावा करते हुए वादी द्वारा मामला संस्थापित किया गया था। केवल तब जब प्रतिवादी सं॰ 1 ने अपने लिखित कथन में अभिवचन किया कि भूमि प्रतिवादी सं॰ 2 सुख रंजन मुखर्जी द्वारा खरीदी गयी थी और प्रतिवादी सं॰ 1 के स्वतंत्र और अनन्य आय द्वारा भूमि पर निर्माण किया गया था जब वह इंगलैंड में रह रहा था और उसका पृथक आय था, प्रतिवादी सं॰ 2 को पक्ष के रूप में जोड़ा गया था। मुल्ला की हिंदू विधि में अनुच्छेद 227 में मिश्रण के सिद्धांत पर चर्चा की गयी है। अनेक उदाहरण और विस्तृत दृष्टांत हैं जो मिश्रण के सिद्धांत को स्थापित करते हैं। मिश्रण की पूर्व शर्तें है, (i) सहदायिकी संपत्ति का अस्तित्व होना चाहिए, (ii) सहदायिक की पृथक संपत्ति तब सहदायिकी संपत्ति के साथ मिश्रित की जा सकती है और (iii) स्वेच्छापूर्वक कॉमन स्टॉक के साथ पृथक संपत्ति मिलाने का निश्चित आशय। कृत्य, जिसके द्वारा सहदायिक अपनी पृथक संपत्ति कॉमन स्टॉक में देता है, एकपक्षीय कृत्य है और व्यक्तिगत इच्छा का मामला है।

23. मैंने साक्ष्य का परीक्षण भी किया है। प्रदर्श A माता द्वारा प्रतिवादी सं॰ 1 को लिखा गया पत्र है जिसे विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह सिद्ध करने के लिए पढ़ा गया है कि अवर न्यायालय ने साक्ष्य के इस

टुकड़े को पूरी तरह नजरअंदाज किया है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण था। डी॰ डब्ल्यू॰ 1 प्रीति रंजन मुखर्जी के प्रति परीक्षण का उद्धरण विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मैंने संपूर्ण साक्ष्य का और प्रदर्शों जैसे रसीदों, प्रतिपर्णों, बैंक रसीद, प्रतिवादी सं॰ 1 के नाम में बैंक पत्र, पासबुकों और बैंक द्वारा जारी पत्रों का भी परीक्षण किया है। विद्वान अधिवक्ता ने अपने मामले के समर्थन में प्रति-परीक्षण के अनेक पैराग्राफों को प्रस्तुत किया है और **मल्लेसप्पा बंदेप्पा देसाई एवं एक अन्य बनाम देसाई मलप्पा उर्फ मल्लेसप्पा एवं एक अन्य, AIR 1961 Supreme Court 1268,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी विश्वास किया है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहाँ मिश्रण के सिद्धांत को अभिव्यक्त किया गया है, यह उदाहरण के साथ बताया गया है कि आचरण, जिस पर मिश्रण का अभिवचन आधारित है, को स्पष्ट और असंदिग्ध रूप से पृथक संपत्ति के स्वामी के आशय को दर्शाना होगा। सहदायिकी और सहदायिक संपत्ति का अस्तित्व सिद्धांत का आधार है।

24. स्पष्टत: वर्तमान मामले में न तो कोई अभिवचन है और न ही कोई साक्ष्य कि किसी भी तरह की कोई संयुक्त परिवार की संपत्ति थी। अत:, विवादित संपत्ति को संयुक्त परिवार की संपत्ति में लाने का प्रश्न ही नहीं है और तद्द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष दूर की कौड़ी है और मिश्रण के किसी भी सिद्धांत के समर्थन में किसी अभिवचन अथवा किसी साक्ष्य की अनुपस्थिति में स्वयं न्यायालय द्वारा निर्मित मिश्रण का मामला न्यायोचित नहीं है। **मदन गोपाल कनोडिया बनाम ममराज मनिरामंड एवं अन्य, AIR 1976 Supreme Court 461,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने जोर दिया कि न्यायालय को अभिवचनों का परीक्षण करना चाहिए और तत्पश्चात् अभिवचनों के आधार पर साक्ष्य का निर्धारण करना चाहिए। **जी॰ नारायण राजू बनाम जी॰ चमराजू एवं अन्य, AIR 1968 Supreme Court 1276,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समरुप दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया गया था जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि यह सुस्थापित है कि हिंदू विधि के अधीन ऐसी कोई उपधारणा नहीं है कि संयुक्त परिवार के किसी सदस्य के नाम पर किया जा रहा व्यवसाय संयुक्त परिवार का व्यवसाय है भले ही वह सदस्य संयुक्त परिवार का प्रबंधक क्यों न हो। जब तक यह नहीं दर्शाया जाता है कि सहदायिकी की व्यवस्था संयुक्त परिवार की संपत्ति अथवा संयुक्त परिवार की निधि की सहायता से विकसित हुआ है अथवा व्यवसाय से हुई आमदनी को संयुक्त परिवार की संपदा के साथ मिला दिया गया। यह सुस्थापित है कि संपत्ति, जो संयुक्त परिवार में अभिकथित रूप से आयी, सहदायिक द्वारा समस्त पृथक दावों को त्यागने के आशय के साथ संयुक्त स्टॉक में स्वेच्छापूर्वक दे दी गयी थी।

25. वर्तमान मामले में उक्त प्रभाव के किसी भी अभिवचन की अनुपस्थिति में अवर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और, इसलिए, मुझे इस निष्कर्ष पर आने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वर्तमान अपील में आक्षेपित निर्णय अवर न्यायालय की कोरी कल्पना है। मिश्रण का सिद्धांत इन कारणों से भी स्वीकार्य नहीं है कि यदि वादी का ऐसा कोई आशय था कि प्रश्नगत संपत्ति को बराबर रूप से संयुक्त परिवार के समस्त सहदायिकों द्वारा शेयर किया जाना चाहिए, तब उन सबों को प्रतिवादीगण के रूप में पक्षकार बनाना चाहिए था और उनमें से प्रत्येक को बराबर हिस्सा आवंटित किया जाना चाहिए था।

26. इस परिस्थिति में वाद पक्ष के असंयोजन के आधार पर विफल होने का दायी है। उत्तरजीवी उत्तराधिकारी भी, जिन्हें गवाह के रूप में परीक्षित किया गया था, ने अपने अपने हिस्सा का दावा नहीं किया था और यह स्वयं में इस बात को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है कि संयुक्त संपत्ति के आस्तित्व का कोई दावा नहीं है और इसलिए विवादित संपत्ति को किसी न्यूक्लियस के साथ मिश्रित नहीं किया जा सकता था। अवर न्यायालय द्वारा स्थापित मामला स्वीकृत रूप से अभिवचनों के परे है और किसी भी

साक्ष्य की अनुपस्थिति में और कुछ नहीं बल्कि पेश किया गया तुच्छ आधार है जो विचार किए जाने योग्य नहीं है। अत: सिद्धांत, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है, डिक्री पारित करने का आधार नहीं हो सकता है। मिश्रण के सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए तीन आवश्यक अवयव हैं; अभिवचन, साक्ष्य और कॉमन स्टॉक में संपत्ति देने का सहदायिकी का आशय जबकि वर्तमान मामले में न तो कोई कॉमन स्टॉक है और न ही आशय अथवा साक्ष्य और न ही वादी द्वारा किया गया कोई अभिवचन।

27. वादी और दोनों प्रतिवादीगण को एक-तिहाई हिस्सा आवंटित करके वाद को डिक्री करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष प्रकटत: पूर्णत: गैर-कानूनी और वास्तविक विवाद को विनिश्चित किए बिना है; इसके विपरीत, निष्कर्ष मिश्रण के काल्पनिक सिद्धांत पर आधारित हैं जिनका न तो अभिवचन किया गया था और न ही इस मामले के समर्थन में कोई साक्ष्य दर्ज किया गया था। यह अवर न्यायालय की कोरी कल्पना है और अपील में मान्य नहीं ठहरायी जा सकती है। कारणों को निर्णय के पिछले पन्नों में पहले ही संगणित किया गया है और मैं आश्वश्त हूँ कि निर्णय कायम रहने नहीं दिया जा सकता। इस प्रभाव के निष्कर्ष कि वादी ने मिश्रण के सिद्धांत के आधार पर वाद संपत्ति के ऊपर अपना टाइटल विकसित किया था आधाररहित है और तद्नुसार बँटवारा वाद सं॰ 93 वर्ष 2002 में सब-जज-VI, राँची द्वारा पारित दिनांक 21 फरवरी, 2007 का निर्णय और डिक्री अभिखंडित किया जाता है और डिक्री को शून्य किया जाता है। अपील अनुज्ञात की जाती है। व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं होगा।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

संजय यादव

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (S.J.) No. 1303 of 2007. Decided on 5th July, 2011.

सत्र केस सं॰ 230 वर्ष 2006 में श्री अशोक कुमार चंद, सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 11.9.2007 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं 14.9.2007 के दंड के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग—7 वर्षों का सश्रम कारावास एवं 5,000/- रुपये का जुर्माना अधिनिर्णित—प्राथमिकी दर्ज करने में विलम्ब का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण—पीड़ित महिला विवाहित है तथा घटना के चार दिनों के उपरांत उसे परीक्षित किया गया था—बलात्संग के संबंध में कोई निश्चित चिकित्सीय राय नहीं दी जा सकती है—सभी गवाहों ने अभियोजन मामले का समर्थन किया तथा पीड़ित महिला के साक्ष्य का सम्पोषण किया—यौन उत्पीड़न वाले मामलों में, अभियोक्त्री के कथन में विसंगतियों को अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए—अपील खारिज। (पैराएँ 11 से 16)

अधिवक्तागण.—Mr. K.P. Deo, For the Appellant; Mr. S.N. Rajgarhia, For the State.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.—सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 11.9.2007 के निर्णय को अपास्त करने के लिए अपीलार्थी ने वर्तमान दांडिक अपील दाखिल किया है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने भा॰दं॰सं॰ की धारा 376 के अधीन अपीलार्थी, अर्थात्, संजय यादव की दोषसिद्धि की है तथा उसे सात वर्षों का सश्रम कारावास भुगतने का दंडादेश सुनाया है तथा 5,000/- रुपये का एक

जुर्माना भी अदा करना है एंव जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में, उसे भा०दं०सं० की धारा 376 के अधीन उसके द्वारा कारित अपराध के लिए और छः महीनों का सश्रम कारावास भुगतना होगा।

2. अभियोजन का मामला संक्षेप में यह है कि सूचनादात्री, अर्थात्, कंचन देवी (पीड़ित महिला) ने प्रभारी पदाधिकारी को एक लिखित रिपोर्ट दी है, उसमें यह अभिकथित करते हुए कि 21.3.2006 को लगभग 11:30 बजे पूर्वाह्न में, सूचनादात्री अपनी सास, अर्थात्, बानो देवी एवं गोतनी, अर्थात्, मनोरमा देवी के साथ खेसाड़ी की फसल की गठरियां उठाने के लिए जगतपुर बहियार गयी थी और जब वह खेसाड़ी की फसलों की गठरियों के साथ अकेले अपने घर लौट रही थी, मक्का के खेत के निकट अभियुक्त-अपीलार्थी संजय यादव, जो घास काट रहा था, अचानक पीछे से आया और उसके द्वारा ढोयी जा रही खेसाड़ी की फसलों की गठरियां छिन लिया तथा पीड़ित महिला की गर्दन में एक गमछा लपेट दिया एवं उसे मक्का के खेत में घसीटता गया, जिस पर उसने संत्रास करने का प्रयास किया, परन्तु उसे खुरपी (हथियार), से धमकाया गया। तत्पश्चात् अभियुक्त-अपीलार्थी उसे बलपूर्वक मक्का के खेत में ले गया एवं अपराधिक बल का इस्तेमाल किया तथा उसकी आंखों पर एक गमछा लपेट दिया एवं उसे जमीन पर धकेल दिया और तत्पश्चात् उसके साथ बलात्संग किया एवं इसके उपरांत वह भाग गया। पीड़ित-सूचनादात्री अपने घर वापस लौट गयी एवं सास तथा अपनी गोतनी को समूची घटना सुनायी। चूँकि उसका पति घर में नहीं था, वह उसी दिन पुलिस थाने में लिखित कथन दाखिल नहीं कर सकी। इन सूचनादात्री की पूर्वोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, अभियुक्त-अपीलार्थी संजय यादव के विरुद्ध भा०दं०सं० धारा 376 के अधीन मामला दर्ज किया गया है जो पाथेरगामा (बसंतराय) पुलिस थाना केस सं० 39 वर्ष 2006 है। अन्वेषण के उपरांत, अपीलार्थी के विरुद्ध भा०दं०सं० की धारा 376 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया गया एवं सम्यक् अनुक्रम में, मामला सत्र न्यायालय भेज दिया गया।

3. विचारण के अनुक्रम के दौरान, अभियोजन ने कुल मिलाकर सात गवाहों को परीक्षित किया, और वे हैं- इस मामले की सूचनादात्री अ०सा० 1 कंचन देवी, अ०सा० 2 सर्गुन पंडित, अ०सा० 3 मोस्मात बानो देवी जो पीड़ित-सूचनादात्री की सास है, अ०सा० 4 मनोरमा देवी जो सूचनादात्री की गोतनी है, अ०सा० 5 गुलाबी पंडित, अ०सा० 6 बनदेवी झा एवं अ०सा० 7 देवेन्द्र पासवान जो इस मामले का अन्वेषण पदाधिकारी है।

4. चक्षुदर्शी साक्ष्य के अलावा, अभियोजन ने कई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं, एवं वे निम्नवत् है:-

प्रदर्श-1 - लिखित रिपोर्ट

प्रदर्श-2 - कंचन देवी (पीड़िता) की चिकित्सीय रिपोर्ट

प्रदर्श-3 - लिखित रिपोर्ट पर पृष्ठांकन

प्रदर्श- 3/1 - लिखित रिपोर्ट पर चंद्रमणी भारती का हस्ताक्षर

प्रदर्श- 3/2 - औपचारिक प्राथमिकी पर चंद्रमणी भारती का हस्ताक्षर

प्रदर्श- 4 - पीड़िता का चिकित्सीय परीक्षण हेतु भेजने के लिए अध्यपेक्षा।

5. अभियुक्त-अपीलार्थी का बचाव का मामला यह है कि उसे इस मामले में झूठमूठ फंसाया गया है एवं दं०प्र०सं० की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने बयान में उसने उसके विरुद्ध लगाये गये सभी अभिकथनों से इंकार किया।

6. अपीलार्थी के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि अभिकथित घटना 11:30 बजे पूर्वाह्न की है, परन्तु उक्त घटना का कोई एक चश्मदीद गवाह भी नहीं है। पीड़िता महिला, जो सूचनादात्री है,

अभिकथित घटना की एकमात्र गवाह है। यह भी तर्क रखा गया कि पीड़िता महिला के परिवार एवं अभियुक्त-अपीलार्थी के बीच शत्रुता है और इस कारण सूचनादात्री पक्ष ने अभियुक्त अपीलार्थी को झूठमूठ फंसा दिया है। यह भी तर्क रखा गया है कि अ०सा० 3, अर्थात्, बानो देवी जो सूचनादात्री की सास है, ने अपनी प्रति परीक्षा में स्वीकार किया है कि उसने उन बातों को कथित किया था जिन्हें उसकी बहु द्वारा प्रकट किया गया था। उसने अपनी परीक्षा में यह भी कथित किया है कि उसकी बहू बहियार जाया करती थी तथा अपीलार्थी-संजय यादव मक्के के खेत के भीतर फसलों की कटाई किया करता था जो किसी और का है। उसने यह भी कथित किया है कि वह संजय यादव को बहुत पहले से जानती थी क्योंकि वह उसके खेत में भी आया करता था। इस प्रकार, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अभियुक्त-अपीलार्थी पहले से सूचनादात्री के परिवार का परिचित है।

7. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने इंगित किया है कि चिकित्सक की चिकित्सीय रिपोर्ट दर्शाती है कि पीड़िता के शरीर के किसी भी भाग पर कोई बाहरी या आंतरिक उपहति नहीं है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सक ने अपने साक्ष्य में राय दी है-'मेरी राय में, किसी निश्चित राय तक नहीं पहुंचा जा सकता है'। अतएव, विचारण न्यायालय ने डॉक्टर द्वारा प्रस्तुत चिकित्सीय साक्ष्य को न्यायिक रूप से ध्यान में नहीं लिया है जिसने अतिविनिर्दिष्टत: कथित किया है कि उसे कोई बाहरी या आंतरिक उपहति नहीं हुई थी, बलात्संग के संबंध में भी उसने कोई निश्चित राय नहीं दी है।

8. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया है कि अन्वेषण पदाधिकारी ने यद्यपि घटना स्थल का निरीक्षण किया था, पर उसे पीड़ित महिला के अंत:वस्त्र नहीं मिले थे, यहां तक कि मक्के की फसलों जिन्हें उसके अनुसार नुकसान पहुंचाया गया था, उसके द्वारा जब्त नहीं की गयी थी, उन मक्के की फसलों को भी उसके द्वारा जब्त नहीं किया गया था जिन्हें कुचल दिया गया था। उसने भू-स्वामी, अर्थात्, बाबूजी मरांडी या शंकर यादव को परीक्षित नहीं किया था, जिन्हें घटनास्थल पर फसलें उगाने वाला बताया गया है।

9. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने यह भी तर्क रखा है कि सूचनादात्री महिला के पति तक को अभियोजन द्वारा परीक्षित नहीं किया गया है। पीड़ित महिला के पति तथा अभियुक्त संजय यादव के बीच फसलों की कटाई को लेकर विवाद के संबंध में भी उसके समक्ष सुझाव रखा गया था जिसके परिणामत: पीड़िता महिला द्वारा वर्तमान मामला लाया गया था परन्तु उसने इससे इंकार किया। अंत में, अपीलार्थी के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि समूचा अभिकथन पीड़ित महिला के बयान पर आधारित है और जब पति एवं पीड़िता महिला तथा अपीलार्थी के बीच शत्रुता है, झूठमूठ फंसाये जाने की पूरी संभावना है। प्राथमिकी दर्ज करने में चार दिनों का विलम्ब हुआ है जिसके लिये अभियोजन ने कोई अकाट्य कारण नहीं दिया है। अतएव, मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में अपीलार्थी संदेह के लाभ का अधिकारी है।

10. नि:संदेह, इस मामले का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है एवं सूचनादात्री, पीड़ित महिला एकमात्र गवाह है और व्यवहारिक रूप से उसके साक्ष्य के आधार पर, अपीलार्थी की दोषसिद्धि की गयी है। अतएव, उसके साक्ष्य की अति सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए। अ०सा० 1, पीड़िता महिला के साक्ष्य से, मैं पाती हूँ कि उसने अति विनिर्दिष्ट रूप से अभियोजन मामले को सिद्ध किया है और अपनी प्रति परीक्षा में भी दृढ़ रही है। प्रति परीक्षा में, उसने स्वीकार किया है कि वह अभियुक्त संजय यादव को पिछले 2-3 वर्षों से जानती थी। उसने कथित किया है कि घटनास्थल पर मक्के का खेत था एवं अभियुक्त संजय यादव मक्के की खेत पर घास काट रहा था और उसे घसीटकर मक्का के खेत ले गया था, उसे धमकाते हुए उसका बलात्संग किया था। बलात्संग कारित करने के उपरांत, अपीलार्थी भाग गया था। इसके उपरांत,

वह तत्काल अपने घर लौट आयी थी एवं अपनी सास और अ०सा० 3 एवं अपनी गोतनी अ०सा० 4 को सूचित किया था जो उक्त गवाहों के साक्ष्य द्वारा भी सम्पोषित किया गया है।

11. विलम्ब के संबंध में, अ०सा० 1, सूचनादात्री ने अपनी लिखित रिपोर्ट में कथित किया है कि चूँकि उसका पति घटना के तिथि पर गाँव से बाहर गया हुआ था और वह 3-4 दिनों के उपरांत घर लौटा था, तत्पश्चात्, वह प्राथमिकी दर्ज करने के लिए अपने पति के साथ पुलिस थाना गयी थी। अतएव, मैं पाती हूँ कि प्राथमिकी दर्ज करने में विलम्ब का युक्तिसंगत रूप से स्पष्टीकरण दिया गया है।

12. अब, मैं चिकित्सीय साक्ष्य पर विचार करना चाहूँगी। चिकित्सक, अ०सा० 6 ने कथित किया है कि उसने 11:05 बजे पूर्वाह्न में 25.3.2006 को, अर्थात्, प्राथमिकी दर्ज करने की तिथि को पीड़ित महिला की जांच की थी। क्योंकि प्राथमिकी 25.3.2006 को लगभग 10:30 बजे पूर्वाह्न में दर्ज की गयी थी, इस प्रकार, चिकित्सक ने घटना के चार दिनों के उपरांत पीड़ित महिला को परीक्षित किया है। डॉक्टर ने राय दी है कि उसकी राय में, किसी निश्चित निष्कर्ष तक नहीं पहुंचा जा सकता है। स्वीकार्यतः, महिला एक विवाहत महिला है और उसे घटना के चार दिनों के उपरांत परीक्षित किया गया है, यह बिल्कुल संभव है कि बलात्संग के संबंध में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं दिया जा सके। जैसा कि अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि चिकित्सक ने कोई आंतरिक या बाहरी उपहति भी नहीं पायी थी, पीड़ित महिला के साक्ष्य में यह आया है कि उसे अपीलार्थी द्वारा धमका कर ले जाया गया था और अपीलार्थी ने उसे धमकी के अधीन उसका बलात्संग किया था। इसके अतिरिक्त, उसे उसकी गर्दन पर गमछा रखकर घसीटते हुए मक्के की खेत ले जाया गया था जहां फसलें खड़ी थी, अतएव, उसे संभवतः, ऐसी कोई उपहति न आई हो जो चार दिनों तक मौजूद रहती जब डॉक्टर ने उसे परीक्षित किया है।

13. अन्वेषण पदाधिकारी, अ०सा० 7 के साक्ष्य से मैं पाता हूँ कि जब उसने घटना स्थल का अन्वेषण किया था, उसने पाया कि मक्के की फसलों को नुकसान पहुंचाया गया था एवं कुचल दिया गया था, यद्यपि उसके द्वारा उन्हें जब्त नहीं किया गया था।

14. अभियोजन द्वारा परीक्षित गवाहों के साक्ष्य का अवलोकन करने के उपरांत, मैं पाती हूँ कि सभी गवाहों ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है तथा पीड़िता महिला के साक्ष्य का सम्पोषण किया है।

15. साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए, न्यायालयों को आवश्यक रूप से इस तथ्य को लेकर सचेत रहना चाहिए कि बलात्संग के एक मामले में कोई भी आत्मसम्मान वाली महिला अपनी गरिमा के विरुद्ध केवल शत्रुता के कारण बलात्संग कारित किये जाने जैसे एक अपमानजनक कथन करने के लिए ही न्यायालय के सामने नहीं आयेगी। इतना ही नहीं, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कई निर्णयों में इस सीमा तक अभिनिर्धारित किया है कि यौन उत्पीड़न से संबंधित मामलों में अभियोक्त्री के कथन में भी विसंगतियों को अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए, जबतक कि विसंगतियां इतनी घातक प्रकृति की न हों जो एक अन्यथा विश्वसनीय अभियोजन मामले को बिल्कुल टिकने न दें। महिलाओं में अंतर्निहित लज्जाभाव एवं यौन उत्पीड़न की घटनाओं को छुपाने की प्रवृत्ति ऐसे कारक हैं जिनकी न्यायालयों को अनदेखी नहीं करनी चाहिए। भारत में हमारे समाज में, एक कन्या/महिला इतना स्वीकार करने में भी अतिसंकोची होगी कि कोई ऐसी घटना घटी है जिससे उसकी पवित्रता पर प्रभाव पड़ने की संभावना है, क्योंकि उसे समाज द्वारा बहिष्कृत किये जाने या समाज द्वारा नीची नजर से देखे जाने के खतरे का पूरा ध्यान रहता है। यही तथ्य है जिसके कारण वर्तमान मामले में पीड़ित महिला ने अपने पति के आने की प्रतीक्षा की एवं उसकी सहमति के उपरांत, घटना के चार दिनों के बाद प्राथमिकी दर्ज करने के लिए पुलिस थाना गयी।

16. उपरोक्त यथा परिचर्चा किये गये अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य एवं सामग्रियों पर विचार करके, मैं इस अपील में कोई गुण नहीं पाती हूँ। तदनुसार, अपील खारिज की जाती है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

नरेन्द्र पाल सिंह

बनाम

रवि प्रकाश बगराय एवं एक अन्य

Civil Revision No. 35 of 2010. Decided on 4th May, 2011.

(क) बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धाराएँ 11 (1) (e) एवं 14 (8) सह-पठित धारा 18— पट्टा अवधि के अवसान के आधार पर बेदखली डिक्री–पट्टा की अवधि बढ़ाए जाने के लिए किराएदार की ओर से कोई प्रस्ताव अथवा अनुरोध नहीं था जैसा धारा 18 के अधीन अनुध्यात किया गया है–धारा 18 की अपेक्षाएँ परिपूर्ण नहीं हुई है–किराएदार को धारा 18 का कोई लाभ लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि वह पारस्परिक सहमति से नवीकरण के लिए अपने दावा का प्रयोग करने में विफल रहा–बेदखली के लिए वाद सही प्रकार से डिक्री किया गया–पुनरीक्षण याचिका खारिज।

(पैराएँ 12 से 15)

(ख) बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 14 (8)—सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 115—धारा 14 (8) के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय को स्वयं को केवल संतुष्ट करना होगा कि बेदखली का आदेश साक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के बाद पारित किया गया था–अवसर निश्चय ही सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 115 की तुलना में व्यापक है किंतु इसे नियमित प्रथम अपील की सीमा तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। (पैरा 14)

निर्णयज विधि.–AIR 2002 SC 108; (2005)4 SCC 315—Relied on; AIR 2002 SC 136; 2003 (4) JCR 609; 2006(4) JLJR 37; AIR 1978 Patna 91; AIR 1959 Patna 1; AIR 1994 SC 678; AIR 2006 SC 825—Referred; 2000(4) PLJR 485—Applied.

अधिवक्तागण.–M/s V. Shivnath, Birendra Kumar, For the Petitioner; M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, For the Opp. Parties.

आदेश

वर्तमान पुनरीक्षण बेदखली टाइटल वाद सं॰ 24 वर्ष 2003 में द्वितीय अपर मुंसिफ, राँची द्वारा पारित दिनांक 28.5.2010 के निर्णय और डिक्री को चुनौती देते हुए बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 (इसके बाद ''अधिनियम'' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 14 (8) के अधीन दाखिल किया गया है। वाद को वादी के पक्ष में डिक्री किया गया था और प्रतिवादी-पुनरीक्षक को निर्णय की तिथि से दो माह के भीतर वाद संपत्ति, जो 32' x 13'4" और 20' की ऊँचाई के साथ और 11' ऊँचाई के साथ मेजेनाइन तल के आयाम वाली होल्डिंग सं॰ 515 सी॰ एल॰ वार्ड सं॰ 3, मेन रोड, राँची के अंतर्गत अवस्थित दुकान है, को सौंप देने का निर्देश दिया गया था।

2. वादपत्र के अनुसार, वादी का मामला संक्षेप में यह है कि वह विवादित परिसर का मकानमालिक है और उसने दिनांक 17 नवम्बर, 1998 के रजिस्टर्ड पट्टा विलेख के फलस्वरुप दिनांक 1 जुलाई, 1998 से शुरू और दिनांक 30 जून, 2003 को समाप्त होने वाली पाँच वर्षों की नियत अवधि के लिए किराएदार के रूप में प्रतिवादी को प्रवेश दिया था। वाद के संस्थापन के समय पर प्रतिवादी द्वारा भुगतान किए जाने वाला परिसर का मासिक किराया 2640/- रुपया था जो प्रत्येक कैलेंडर माह के दसवें दिन तक भुगतान योग्य था। वस्तुतः यह स्वीकृत मामला है कि वर्ष 1968 से दुकान पट्टा पर प्रतिवादी को नियत अवधि के लिए दिया गया था और पट्टा की अवधि के अवसान के पहले 5% की बर्धित दर से नवीकरण अनुज्ञात

किया गया था। किंतु, अंतिम नवीकरण का अवसान दिनांक 30 जून, 2003 को हो गया। पट्टा विलेख को प्रदर्श 3 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। पट्टा के अवसान के कम से कम छह माह पहले पट्टाधारी द्वारा लिखित में दिए गए नोटिस पर अन्य पाँच वर्षों के लिए पट्टा की अवधि बढ़ाए जाने के लिए नवीकरण खंड विलेख में सम्मिलित किया गया था और आपसी करार से किराया तय किया जाना था। वादपत्र में प्राख्यान के अनुसार, नवीकरण खंड आरंभ से ही शून्य था क्योंकि नवीकरण के निबंधन एवं शर्त अस्पष्ट थे और अनुबंधित अवधि के भीतर नवीकरण के लिए प्रतिवादी किसी विकल्प का प्रयोग करने में विफल रहा और इसलिए, वादी ने दिनांक 26.6.2003 के नोटिस के माध्यम से किराएदार को सूचित किया कि दिनांक 1 जुलाई, 2003 तक विवादित परिसर का रिक्त कब्जा वादी-मकानमालिक को सौंप दिया जाए। पूर्वोक्त नोटिस की प्राप्ति पर प्रतिवादी ने पट्टा के नवीकरण के लिए कहते हुए दिनांक 26.6.2003 को उत्तर दाखिल किया। वादी ने 80/- रु० प्रतिवर्ग फीट की दर से किराया बढ़ाने के बाद ही नवीकरण करने की मांग की जो प्रतिवादी को स्वीकार नहीं था। परिणामस्वरुप, पट्टा का अवसान हो गया। पट्टा की अवधि के अवसान के आधार पर वाद संस्थापित किया गया था और विनिर्दिष्ट प्राख्यान यह था कि वाद के लिए वाद हेतुक पट्टा की अवधि के अवसान के बाद दिनांक 30.6.2003 को न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत उद्भूत हुआ था और तत्पश्चात् बाद की समस्त तिथियों पर जब प्रतिवादी ने अपना अधिभोग जारी रखा और अवधि के अवसान के बाद भी जब वादी ने नए दर पर नवीकरण का प्रस्ताव दिया, प्रस्ताव नहीं माना गया था।

3. पुनरीक्षक-प्रतिवादी ने लिखित कथन दाखिल किया, मकान मालिक और किराएदार का संबंध और पट्टा विलेख का निष्पादन स्वीकार किया और यह भी कहा कि वाद तुच्छ था और खारिज किए जाने का दायी था। प्रतिवादी का दावा यह है कि वाद परिसीमा और अधित्यजन, विवंध और उपमति के सिद्धांत के आधार पर वर्जित था और कि वादी शुद्ध हृदय से न्यायालय के पास नहीं आया था। आगे प्रतिवाद किया गया था कि प्रतिवादी विगत 35 वर्षों से किराएदार के रूप में पट्टा की नियत अवधि के लिए परिसर के अधिभोग में था, पट्टा की नियत अवधि समय-समय पर 5% की दर से किराया बढ़ाए जाने पर नवीकृत की जाती थी। किंतु, यह स्वीकार किया गया था कि अंतिम बार विलेख पाँच वर्षों की नयी अवधि के लिए निष्पादित की गयी थी और किराया बढ़ाया गया था और दिनांक 1 जुलाई, 1988 से आगे कि लिए 2640/- रुपया पर नियत किया गया था। प्रतिवादी ने इनकार किया कि नवीकरण खंड अस्पष्ट था और इसलिए शून्य था। अभिव्यक्त करार हुआ था कि किराया की दर आपसी करार से नियत की जाएगी। प्रतिवादी ने दावा किया कि उसने अनेक अवसरों पर पट्टा के नवीकरण के लिए अनुरोध किया था, कभी मौखिक रूप से और अन्य अवसरों पर पत्र द्वारा, यद्यपि प्रतिवाद किया गया था कि उक्त पत्रों को हाथों-हाथ व्यक्तिगत रूप से दिया गया था।

4. दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिया गया था। मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया गया था। पाँच विवाद्यकों को विरचित किया गया था जिन्हें यहाँ नीचे संगणित किया जाता है:-

(i) क्या वाद, जैसा इसे विरचित किया गया है, पोषणीय है?

(ii) क्या वाद के लिए वादी के पास कोई वैध वाद हेतुक है?

(iii) क्या वाद परिसीमा, अधित्यजन, विवंध और उपमति की विधि द्वारा वर्जित है?

(iv) क्या दिनांक 1.7.1998 के पट्टा का अवसान दिनांक 1.7.2003 को हो गया और प्रतिवादी वाद संपत्तियों से बेदखल किए जाने का दायी है?

(v) किस अनुतोष अथवा अनुतोषों के लिए वादी हकदार है?

5. न्यायालय ने विवाद्यक सं॰ 4 को वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध विनिश्चित किया। विवाद्यक सं॰ 1 और 2 को भी वादी के पक्ष में विनिश्चित किया गया था और न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विचारण के दौरान किसी पक्ष द्वारा विवाद्यक सं॰ 3 पर जोर नहीं दिया गया था और कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था। विवाद्यक सं॰ 5 को भी दावा किए गए अनुतोष का हकदार उसे बनाते हुए वादी के पक्ष में विनिश्चित किया गया था।

6. श्री बिरेन्द्र कुमार की सहायता से विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ शिवनाथ ने याची की ओर से तर्क किया और श्री आयुष आदित्य की सहायता से विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद विपक्षी पक्षकार वादी की ओर से उपस्थित हुए।

7. प्रथम तर्क यह है कि चूँकि स्वयं वादी ने अपने वाद पत्र में प्राख्यान किया है कि नवीकरण खंड आरंभ से ही शून्य है, अत: संपूर्ण पट्टा विलेख शून्य अभिनिर्धारित किए जाने का दायी है; यदि एक अंश शून्य है, तब कोई दावा टुकड़ों में नहीं किया जा सकता है। वादी ने अधिनियम की धारा 11 (1) (e) के आधार पर बेदखली इप्सित किया था अर्थात् पट्टा की अवधि के अवसान के आधार पर और यह दावा भी किया था कि नवीकरण खंड 'आरंभ से ही शून्य' था। अत: वादपत्र खारिज किए जाने का दायी था और वाद डिक्री नहीं किया जा सकता था।

8. अगला तर्क यह है कि वादी द्वारा दावा किया गया वाद हेतुक इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि अंतिम विलेख पाँच वर्षों की अवधि के लिए दिनांक 1.7.1998 को निष्पादित किया गया था और दिनांक 30.6.2003 को इसका अवसान हो गया था। प्रतिवादी ने पट्टा के नवीकरण के लिए दिनांक 2 जनवरी, 2003 को अर्थात् पट्टा के अवसान के छह मास पहले वादी पर नोटिस तामील किया था और चूँकि वादी की ओर से कोई इनकार नहीं था अथवा यदि इनकार था भी, वादी नोटिस की प्राप्ति की तिथि से 15 दिनों के भीतर न्यायालय में आवेदन देने का दायी था जैसा अधिनियम की धारा 18 (2) के अधीन अनुध्यात किया गया है। चूँकि वादी द्वारा ऐसा कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया था, वह अधिनियम की धारा 11(1)(e) के अधीन पट्टा के अवसान के आधार पर कोई वाद संस्थापित नहीं कर सकता था। वाद हेतुक दिनांक 2 जनवरी, 2003 की नोटिस की तिथि से 15 दिनों के भीतर था जिसमें प्रतिवादी ने नवीकरण के लिए अपनी इच्छा को अभिव्यक्त किया था। इसके अतिरिक्त, अवर न्यायालय द्वारा पारित डिक्री गैर कानूनी भी है क्योंकि किराया के बकाया के संबंध में भी वाद डिक्री किया गया है। किराया के बकाया के संबंध में वादी ने कोई न्यायालय फीस नहीं दिया था। विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर भी आपत्ति किया है कि वादी कठघरा में आने में विफल रहा और वादी का पोता अ॰ सा॰ 2 गौरव बगराय दादा द्वारा निष्पादित मुख्तारनामा के आधार पर गवाह के रूप में उपस्थित हुआ। विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि दादा पागल था और अ॰ सा॰ 2 ने शपथ पर अपने बयान में स्पष्टत: कथन किया है कि वादी वृद्ध और पागल है। अत:, मुख्तारनामा स्वस्थ चित्र व्यक्ति द्वारा वैध रूप से निष्पादित दस्तावेज नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने यह भी इंगित किया कि पोता और वादी के बीच बातचीत नहीं होती थी। पट्टा के नवीकरण के लिए प्रतिवादी का आशय, जैसा वादी को सूचित किया गया था, भी वाद के संस्थापन के पहले पक्षों के बीच कतिपय वार्ताओं पर आधारित है। अत:, यह समझा जाएगा कि अधिनियम की धारा 18 के धारणा खंड के अधीन नवीकरण किया गया है। श्री वी॰ शिवनाथ ने इस पर भी जोर दिया कि नवीकरण खंड स्पष्टत: कहता है कि नवीकरण केवल आपसी करार पर होगा और न कि मकान मालिक के विकल्प पर। अत: मकान मालिक का दावा कि उसने 80/- रुपया प्रतिवर्ग फीट की दर से नवीकरण का प्रस्ताव दिया था अतात्विक है। दोनों पक्षों द्वारा करार के आधार पर और न कि मकान मालिक की सदिच्छा पर निबंधनों और शर्तों को तय करना था।

9. किराएदार पुनरीक्षक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का उत्तर देते हुए वरीय अधिवक्ता, श्री पी० के० प्रसाद ने, तर्कों को विवादित किया कि न्यायालय वाद पत्र के आधार पर कोई अनुतोष प्रदान नहीं कर सकता है। वादी के दावा में से एक यह था कि नवीकरण खंड अस्पष्ट था और इसलिए शून्य था जिससे किराएदार द्वारा इनकार किया गया था किंतु न्यायालय ने इस तर्क को ग्रहण करने से इनकार कर दिया और वाद पत्र में दावा किए गए सार और अनुतोष को विचार में लेते हुए वाद विनिश्चित किया और नवीकरण खंड को पट्टा विलेख के भाग के रूप में स्वीकार किया। अत:, संपूर्ण वाद को खारिज नहीं किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, पुनरीक्षक ने पट्टा विलेख जिसे प्रदर्श 3 के रूप में न्यायालय में प्रदर्शित किया गया था, के आधार पर मकान मालिक और किराएदार के संबंध को स्पष्टत: स्वीकार किया है। स्वीकृत रूप से, दिनांक 30.6.2003 को इसका अवसान हो गया था और इसलिए बेदखली के लिए वाद दाखिल किया गया है। जहाँ तक दिनांक 2 जनवरी, 2003 के नोटिस का संबंध है, इसे किराएदार द्वारा न्यायालय में प्रदर्शित नहीं किया गया है। किसी ने उक्त नोटिस को सिद्ध नहीं किया है, यद्यपि अभिलेख पर एक नोटिस है जो पहचान के लिए प्रदर्श 'X' है, किंतु इसे साक्ष्य में पढ़ा नहीं जा सकता है। इस परिस्थिति में किराएदार का संपूर्ण मामला छिन्न-भिन्न हो जाता है। श्री प्रसाद द्वारा आगे तर्क किया गया है कि प्रदर्श 1 विवादित दुकान को खाली करने के लिए किराएदार को वादी द्वारा दिया गया दिनांक 26.6.2003 का नोटिस है, चूँकि पट्टा का अवसान हो चुका था। उसी दिन अर्थात् दिनांक 26.6.2003 को प्रतिवादी द्वारा वादी के नोटिस का जवाब दिया गया है यद्यपि यह अभिलेख पर नहीं है। वादी ने दिनांक 28.6.2003 को द्वितीय नोटिस, प्रदर्श 4 दिया है। मकानमालिक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि वाद पत्र का पैरा 5, जो नवीकरण खंड को 'आरंभ से ही शून्य' उल्लिखित करता है, केवल एक निवेदन है जिसे लिखित कथन के पैराग्राफ सं० 12 और 13 में स्वीकार किया गया है। इस प्रश्न पर कोई विवाद्यक विरचित नहीं किया गया था और प्रतिवादी द्वारा पट्टा विलेख स्वीकार किया गया था और इसे वैध विलेख अभिनिर्धारित किया गया था जिसे न्यायालय में सम्यक् रूप से प्रदर्शित किया गया था। अधिनियम की धारा 18 (2) के अधीन 15 दिनों के भीतर वादी के कहने पर आवेदन दाखिल करने के संबंध में अगले तर्क में तर्क किया गया है कि चूँकि किराएदार की ओर से कोई नोटिस अस्तित्व में नहीं है, अत:, अधिनियम की धारा 18 (2) के प्रावधान आकृष्ट नहीं होते हैं। किराएदार पुनरीक्षक ने अवर न्यायालय में न तो कोई साक्ष्य दिया और न ही इस प्रश्न पर कोई विवाद्यक विरचित किया गया था और, इसलिए, उसका तर्क पूर्णत: कुआधारित है और अनदेखा किए जाने का दायी है। वाद हेतुक से संबंधित तर्कों पर विवाद करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अभिवचनों के पूर्ण पठन पर न्यायालय को दावा किए गए अनुतोषों के सार और उक्त अनुतोष का दावा करने के लिए हेतुक को आँकना है। न्यायालय को अभिवचनों से वाद हेतुक पर निर्णय करना है। वर्तमान मामले में किराएदार ने किराएदार की हैसियत में विवादित दुकान का अपना अधिभोग स्वीकार किया है और उसके बदले रजिस्टर्ड विलेख अथवा नवीकरण करार के निष्पादन के बाद किराये का भुगतान किया जा रहा था, किंतु अंतिम पट्टा विलेख के अवसान के बाद कोई नया पट्टा विलेख निष्पादित नहीं किया गया था और, इसलिए, पट्टा विलेख के अवसान की तिथि पर वाद दाखिल करने के लिए मकान मालिक के लिए वाद हेतुक उद्भूत हुआ।

10. वादी-विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने मुख्तारनामा के संबंध में तर्कों का उत्तर देते हुए विवाद किया है कि वादी ने अ० सा० 2 के पक्ष में मुख्तारनामा ऐसी मानसिक दशा में निष्पादित किया जब वह अपने कृत्य की विवक्षा को समझने में सक्षम नहीं था। उन्होंने संविदा अधिनियम की धारा 12 पर जोर दिया है जो परिभाषित करती है कि संविदा के प्रयोजन के लिए स्वस्थ चित्त क्या है। अ० सा० 2 के बयान के आधार पर निवेदन यह है कि उसने स्पष्टत: कथित किया है उसका दादा वृद्ध है और वृद्धावस्था के कारण वह खास तथ्यों और तिथियों के बारे में न्यायालय में अभिसाक्ष्य देने में सक्षम नहीं

था किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि अपने पोता के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित करते समय वह पागल व्यक्ति था। चूँकि अ॰ सा॰ 2 द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि वह व्यवसाय और अन्य संपत्ति मामलों की देखभाल करता है, अत: वह अनेक संव्यवहारों बातचीत और मकानमालिक एवं किराएदार के बीच वार्तालाप के बारे में न्यायालय में अभिसाक्ष्य देने में सक्षम है। इस पर भी जोरदार विवाद किया गया है कि पोता और दादा के बीच अच्छा संबंध नहीं है। यह तर्क कि वादी कठघरा में नहीं आया था, पर भी मकान मालिक के अधिवक्ता द्वारा खंडन किया गया है और उन्होंने वादी को समन करने के लिए प्रतिवादी द्वारा दिया गया आवेदन प्रस्तुत किया है। आवेदन दिनांक 4 अप्रिल, 2008 का है और वादी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने पृष्ठांकन किया है कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। उनकी अनापत्ति के परिणामस्वरुप वादी दिनांक 1 मई, 2009 के समन के अनुसरण में दो अवसरों पर राँची न्यायालय में वस्तुत: उपस्थित हुआ और दिनांकों 23.5.2009 और 26.5.2009 को उसकी हाजिरी रिपोर्ट की गयी है। यह तथ्य अभिलेख से स्पष्ट है। आगे दृष्टांत दिया गया है कि विभिन्न किराएदारों के विरुद्ध दो वाद थे और दूसरे वाद में समरुप आपत्ति की गयी थी और वादी दोनों मामलों में उपस्थित हुआ था। वर्तमान मामले में यद्यपि वह उपस्थित था, प्रतिवादी द्वारा कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था और इसलिए इस पहलू के संबंध में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती थी। जहाँ तक किराया के बकाया की डिक्री का संबंध है, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया है कि किराया के बकाया के लिए डिक्री केवल उस अवधि के लिए है जो विवाद के लंबित रहने के दौरान की है और कार्यवाहियों के दौरान अधिनियम की धारा 15 के अधीन आवेदन दिया गया था और आदेशों को पारित किया गया था जिन्हें उच्च न्यायालय में चुनौती भी दी गयी थी। इसके उपरांत किराया न्यायालय में जमा किया जा रहा था और, इसलिए, डिक्री के संबंध में आपत्ति सारहीन है। निर्णयों की एक श्रृंखला पर विश्वास किया गया है जिस पर मैं निर्णय के बाद वाले भाग में विचार करुँगी।

11. पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार करने और संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन करने के बाद प्रथम प्रश्न जिसका परीक्षण करना होगा यह है कि क्या वाद उस समय पर पोषणीय था जब इसे संस्थापित किया गया था। पुनरीक्षक का संपूर्ण तर्क अधिनियम की धारा 18 के अधीन अनुध्यात नोटिस के माध्यम से पट्टा की अवधि बढ़ाए जाने के लिए उसके प्रस्ताव के इर्द-गिर्द घूमता है। मूल प्रश्न यह है कि क्या किसी नोटिस का अस्तित्व है या नहीं, क्योंकि नोटिस की अनुपस्थिति में अधिनियम की धारा 18 की कोई भूमिका नहीं होगी। अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क कि अधिनियम की धारा 14 में प्रावधानित प्रक्रिया का अनुसरण करना ही होगा, सही है किंतु मैं सहमत नहीं हूँ कि पट्टा अवधि बढ़ाए जाने के लिए किराएदार के आशय के साथ असहमत होने पर मकान मालिक आवेदन देने के लिए बाध्य था और केवल उक्त आवेदन को अस्वीकार कर दिए जाने के बाद संस्थापित किया जा सकता था। स्वीकृत रूप से, शिनाख्त के लिए प्रदर्श 'x' को छोड़कर अभिलेख पर कोई नोटिस नहीं है। इस नोटिस को प्रदर्श के रूप में चिन्हित नहीं किया गया था और, इसलिए, मामले में दिए गए साक्ष्य का कोई संदर्भ नहीं हो सकता है।

12. मैंने स्वयं प्रतिवादी डी॰ डब्ल्यू॰ 2 के संपूर्ण बयान का परीक्षण किया है। उसने कहीं भी नोटिस सिद्ध नहीं किया है और, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि पट्टा की अवधि बढ़ाने के लिए किराएदार की ओर से कोई प्रस्ताव अथवा अनुरोध किया गया था जैसा अधिनियम की धारा 18 के अधीन अनुध्यात किया गया है। वस्तुत: अधिनियम की धारा 18 का उपखंड (1) स्पष्टत: प्रावधानित करता है; (i) पट्टा की अवधि के अवसान के पहले एक माह का नोटिस देना होगा; (ii) नोटिस ऐसा करने के आशय के बारे में लिखित में होना चाहिए; (iii) यदि पूर्वोक्त शर्तों को संतुष्ट किया जाता है, तब अधिनियम की धारा 11 के प्रावधानों के अधीन मूल पट्टा द्वारा आच्छादित दुगनी अवधि तक पट्टा की अवधि बढ़ायी

गयी समझी जाएगी और ऐसा विस्तार अधिकतम एक वर्ष के लिए हो सकता है। यह प्रावधान यह वर्जना भी अधिकथित करता है कि किसी भी स्थिति में किराएदार को एक वर्ष की अवधि के परे कब्जा में बने रहने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यदि पूर्वोक्त शर्तों को परिपूर्ण किया जाता है और पट्टा अवधि की समाप्ति पर किराएदार मकान खाली करने में विफल रहता है, तब आवेदन के आधार पर बेदखली का आदेश पारित किया जा सकता था। सूक्ष्म संवीक्षण पर, अधिनियम की धारा 18 की अपेक्षा परिपूर्ण नहीं की गयी है और अधिनियम की धारा 18 के उपखंड (3) के अधीन बेदखली के लिए आवेदन देने का मकान मालिक के समक्ष प्रश्न ही नहीं था। वाद हेतुक के अस्तित्व के संबंध में तर्क पूर्णत: आधारहीन है। नोटिस, जो किराएदार के तर्क का आधार है, अभिलेख पर नहीं है और, इसलिए, पट्टा विलेख के नवीकरण अथवा पट्टा नवीकृत करवाने के लिए किसी आशय अथवा एक वर्ष की अवधि के लिए अभिगृहित नवीकरण पूर्णत: सारहीन है और, इसलिए, किराएदार की ओर से दिया गया तर्क पूरी तरह त्यक्त किए जाने का दायी है। यह तर्क भी किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII नियम 7 की कोई प्रयोज्यता नहीं है। चूँकि अधिनियम विशेष अधिनियम है और अधिनियम की धारा 14 में प्रावधानित प्रक्रिया का अनुसरण आवश्यकत: करना होगा। इस तर्क को सिद्ध करने के लिए श्री वी॰ शिवनाथ ने **राजेन्द्र तिवारी बनाम बासुदेव प्रसाद एवं एक अन्य, AIR 2002 Supreme Court 136,** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। यह तर्क इस आधार पर दिया गया है कि पट्टा की अवधि बढ़ाए जाने के लिए बातचीत किया जा रहा था और यह पश्चातवर्ती घटना विचार में लिए जाने की दायी थी। मकान मालिक को पट्टा अवधि बढ़ाए जाने को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का कोई विकल्प नहीं दिया गया था किंतु, पट्टा विलेख के निबंधनों और शर्तों के अनुसार इसे आपसी करार पर किया जाना था। चूँकि मकान मालिक ने 80/- रुपया प्रति वर्गफीट की दर पर भुगतान किए जाने पर पट्टा की अवधि बढ़ाने की अपनी इच्छा को अभिव्यक्त किया था, जो किराएदार को स्वीकार्य नहीं था, अत:, यह पश्चातवर्ती घटना विचार में लिए जाने की दायी थी। किराएदार की ओर से प्रतिवाद कि चूँकि पट्टा की अवधि बढ़ाए जाने के लिए अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया था, अत: यह अधिनियम की धारा 11(1)(e) के अधीन वाद नहीं होगा। यह तर्क कि मकान मालिक द्वारा इनकार किए जाने की स्थिति में अधिनियम की धारा 18 के अधीन पहले आवेदन देकर वाद परिसर खाली करवाने के लिए हकदारी संपोषणीय नहीं है। यह तर्क भी दूर की कौड़ी है और मैं इस प्रतिवाद से सहमत नहीं हूँ। इस प्रभाव का कथन कि एक वर्ष की अवधि के अवसान के बाद अधिनियम की धारा 11(1)(e) के अधीन मकानमालिक को द्वितीय वाद संस्थापित करना चाहिए था तथा वर्तमान वाद के आधार पर बेदखली का आदेश नहीं दिया जा सकता था, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। एक बार फिर मेरा दृष्टिकोण है कि यह निवेदन आधारहीन है अथवा साक्ष्य को विधित: संपोषित नहीं किया जा सकता है। किराएदार को अधिनियम की धारा 18 का लाभ लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि वह यह प्रदर्शित करने में विफल रहा कि उसने नवीकरण के लिए अपना आशय अभिव्यक्त करते हुए किसी भी तरह का कोई नोटिस दिया था। दोनों पक्षों के बीच तथाकथित पत्राचार और बातचीत को भी सिद्ध नहीं किया गया है अथवा कार्यवाहियों के दौरान प्रदर्शित नहीं किया गया है और, इस प्रकार, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण यह है कि वाद सही प्रकार से अधिनियम की धारा 11(e) के अधीन संस्थापित किया गया था। स्वीकृत रूप से, वाद के संस्थापन के पहले पट्टा विलेख में सम्मिलित अवधि का अवसान हो चुका था और 80/- रुपया प्रतिवर्ग फीट की दर तक किराया बढ़ाने के लिए मकानमालिक द्वारा दिया गया प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं किया गया था और, इसलिए, अवधि के अवसान के बाद, किराएदार की बेदखली अपरिहार्य थी। **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं॰ लि॰ बनाम रवि प्रसाद,** 2003 (4) JCR 609 (Jhr.),

मामले में इस न्यायालय द्वारा समरुप दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया गया था। स्वीकृत रूप से प्रतिवादी ने पट्टा विलेख के अवसान के पहले नवीकरण के लिए कोई कदम नहीं उठाया था और परिणामस्वरुप किराएदार के कब्जा को विधिपूर्ण अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। मेरे दृष्टिकोण में मकान मालिक द्वारा खाली करने के नोटिस के आधार पर अविवादित निष्कर्ष यह है कि उसने किराएदार को अधिभोग में बने रहने की अनुमति कभी नहीं दी। **सुरेन्द्र साव बनाम शिव शंकर प्रसाद, 2006 (4) JLJR 37** के मामले में एक अन्य निर्णय भी उद्धृत किया गया है। समरुप दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया गया था और न्यायालय ने अधिनियम की धारा 18 के संबंध में तर्क त्यक्त कर दिया था। उक्त मामले में नोटिस तामील किया गया था और न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था, जबकि वर्तमान मामले में किराएदार द्वारा किया गया प्राख्यान मात्र यह है कि उसने नोटिस का तामील किया था किंतु साक्ष्य में नोटिस प्रस्तुत नहीं किया गया है और इसलिए सुरक्षापूर्वक यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पट्टा की अवधि बढ़ाए जाने के लिए अपनी इच्छा अभिव्यक्त करते हुए किराएदार द्वारा दिया गया कोई नोटिस मौजूद नहीं है और इसलिए अधिनियम की धारा 18 की कोई भूमिका नहीं होगी। मकानमालिक के अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया अगला निर्णय **मेसर्स बाटा इंडिया लि॰ एवं अन्य बनाम केशर प्रसाद मोदी एवं एक अन्य,** 2000 (4) PLJR 485, के मामले में है, जिसने प्रतिवादीगण ने नवीकरण के लिए अपने विकल्प का प्रयोग करते हुए साधारण डाक द्वारा नोटिस भेजने का दावा किया है, किंतु न्यायालय का दृष्टिकोण यह था कि चूँकि प्रतिवादीगण नवीकरण के लिए अपनी इच्छा अभिव्यक्त करते हुए नोटिस सिद्ध करने में विफल रहे और, इसलिए, विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को मान्य ठहराया गया था। उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह लागू होते हैं। विद्वान अधिवक्ता ने कतिपय अन्य निर्णयों को भी उद्धृत किया है, **रणविजय शाही बनाम बाला प्रसाद मोटानी, AIR 1978 Patna 91,** पैराग्राफ 17 और 18; **AIR 1959 Patna 1, (दिगंबर नारायण चौधरी बनाम तिरहुत डिविजन कमिश्नर एवं अन्य); गदख यशवंतराव कंकरराव बनाम इ॰ वी॰ उर्फ बालासाहेब विखे पाटिल एवं अन्य, AIR 1994 Supreme Court पृष्ठ 678** और **महाराष्ट्र राज्य बनाम रशीद बाबूभाई मुलानी, AIR 2006 Supreme Court 825।** इन समस्त मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्टिफिकेट ऑफ पोस्टिंग के अधीन नोटिस के तामील को पर्याप्त साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा संसूचना की तुलना में सर्टिफिकेट ऑफ पोस्टिंग कम सहायक है।

13. इन परिस्थितियों की दृष्टि में, स्पष्टत: अभिलेख पर कोई नोटिस नहीं है। न ही तामील किए जाने का कोई प्रमाण है और मात्र प्रतिवादी द्वारा प्राख्यान स्वीकार नहीं किया जा सकता है और, इसलिए, मैं अभिनिर्धारित करती हूँ कि प्रतिवादी आपसी सहमति से नवीकरण के लिए अपना दावा का प्रयोग करने में विफल रहा चूँकि प्रतिवादी की ओर से कोई प्रस्ताव नहीं है। कार्यवाहियों के दौरान साक्ष्य वादपत्र में और अपने प्रति परीक्षण में अ॰ सा॰ 2 द्वारा किए गए प्राख्यान का समर्थन करते हैं कि 80/- रुपया प्रतिवर्ग फीट का प्रस्ताव फलीभूत नहीं हुआ था और इसीलिए अधिनियम की धारा 11(e) के अधीन वाद सही प्रकार से डिक्री किया गया है। अधिनियम की धारा 18 के संबंध में तर्क गुणागुण रहित है और मैं वैध नोटिस की कमी के कारण उसे विचार में लेने से इनकार करती हूँ।

14. मैंने अवर न्यायालय के निर्णय का परीक्षण किया है और मैं दर्ज किए गए निश्चयों और निष्कर्षों से पूरी तरह सहमत हूँ। वस्तुत: समुचित रूप से साक्ष्य का निर्धारण किया गया है और अधिनियम की धारा 14(8) के अधीन पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में यह न्यायालय नि:संदेह निर्णय और साक्ष्य के मूल्यांकन के तरीके का परीक्षण करने का दायी है। सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 115 की तुलना में गुंजाइश निश्चय ही व्यापक है, किंतु इसे नियमित प्रथम अपील की सीमा तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। अधिनियम की धारा 14 (8) के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में न्यायालय को केवल इससे संतुष्ट होना होगा कि साक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और अधिनियम के प्रावधान पर विचार करने के बाद बेदखली का आदेश पारित किया गया है। पुनरीक्षण अधिकारिता की गुंजाइश इस संबंध में कि क्या विचारण

न्यायालय ने विधि के अनुरूप कृत्य किया है और निर्णय इस कसौटी पर खरा उतरता है, पुनरीक्षण न्यायालय की संतुष्टि पर निर्भर करती है। यह दृष्टिकोण **चंद्रिका प्रसाद (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं एक अन्य बनाम उमेश कुमार वर्मा एवं अन्य, AIR 2002 Supreme Court 108; बिठल भाई (प्रा॰) लि॰ बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, (2005)4 Supreme Court 315,** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समर्थन पाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने **बिठलभाई (प्रा॰) लि॰ (ऊपर)** के मामले में भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि प्रतिवादीगण प्रथम अवसर पर वाद के समय पूर्व होने के संबंध आपत्ति उठाने में विफल रहते हैं, इसे ऐसा मामला माना जाएगा कि अधित्यजन की कोटि में आने वाले अपनी अक्रियता के कारण प्रतिवादी ने वाद जारी रहने की अनुमति दी, तब विलंबित चरण पर उसे ऐसा अभिवचन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जो वादी को कठिनाई और अपूरणीय क्षति कारित करेगा। किंतु, वर्तमान मामले में वाद हेतुक के संबंध में किराएदार की ओर से की गयी आपत्ति गुणागुण रहित है।

15. वर्तमान मामले में, मैं इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकती हूँ कि पट्टा विलेख का अवसान वर्ष 2003 में हो गया था, वाद वर्ष 2003 में संस्थापित किया गया था, आठ वर्षों के अवसान के बाद भी आज की तिथि तक प्रतिवादी ने प्रश्नगत दुकान को खाली नहीं किया है, जबकि यदि पट्टा का नवीकरण किया भी गया होता, काफी पहले ही इसका अवसान हो गया होता। अत: इस चरण पर, प्रतिवादी की ओर से किया गया तर्क विचार करने योग्य नहीं है। बेदखली का वाद सही प्रकार से डिक्री किया गया है। वर्तमान पुनरीक्षण में दिए गए तर्क के आधार पर हस्तक्षेप करने की कोई गुंजाइश नहीं है। अवर न्यायालय के निर्णय को संपुष्ट किया जाता है। पुनरीक्षण को व्यय के साथ खारिज किया जाता है। बेदखली का वाद वादी-विपक्षी पक्षकार के पक्ष में डिक्री किया जाता है। आज से 30 दिनों के भीतर पुनरीक्षक द्वारा वाद परिसर का रिक्त कब्जा सौंप देना होगा। तद्नुसार पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

शाहिद अली

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1328 of 2010. Decided on 4th July, 2011.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—चेक का अनादर—कोई साक्ष्य नहीं है कि याची पर कानूनी नोटिस कभी भी तामील किया गया था—परिवादी यह विश्वास दिलाने में विफल रहा कि चेक के बाउंस करने के 30 दिनों के भीतर मांग नोटिस भेजा गया था—विधि को गति में लाने से पहले परिवादी विधि के आज्ञापक प्रावधानों का अनुपालन नहीं कर सका था—याची की दांडिक कार्यवाही को संपोषित नहीं किया जा सकता है—दांडिक कार्यवाही अपास्त। (पैराएँ 12 एवं 13)

निर्णयज विधि.—(2009)1 SCC 720; 2000 (3) East Cr. C. 837 (SC); 2005 (3) East Cr. C 126 (SC)—Referred.

अधिवक्तागण.—M/s Jai Prakash, Yogesh Modi, Chaitali C. Sinha, For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, For the State; Mr. Anand Kumar Sinha, For the O.P. No.2.

आदेश

याची ने श्री ओ॰ एन॰ चौधरी, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 8.7.2010 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138

के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची शाहिद अली के विरुद्ध प्रथम द्रृष्टया सामग्रियों को पाया गया था और उसे उसको स्पष्ट किए जाने वाले आरोपों के सार का उत्तर देने के लिए बुलाया गया था, सहित परिवाद केस सं॰ 903 वर्ष 2007 से उद्भूत संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, डालटेनगंज, पलामू के समक्ष वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से दाखिल परिवाद केस सं॰ 903 वर्ष 2007 में प्रकट किया गया अभियोजन मामला यह है कि वह लातेहार जिला में केंदू पत्तों का ठेकेदार था। अभियुक्त याची उसी जिला में मोहूलन पत्तों का भी कारोबार करता था और व्यापारी होने के नाते वे एक-दूसरे को जानते थे और उनके बीच धन का संव्यवहार भी था। परिवाद याचिका में यह अभिकथित किया गया था कि दिनांक 17.4.2007 को अभियुक्त-याची शाहिद अली उसके पास आया और व्यापारिक आवश्यकता के लिए 4 लाख रुपया उससे मांगा और इसके बदले में यह कथन करते हुए कि उसके खाता में पैसा नहीं है किंतु 3/4 माह के भीतर उसके खाता में धन आ जाएगा और कि मोहूलन पत्तों की बिक्री के बाद उसे राशि लौटा दी जाएगी, दिनांक 17.4.2007 का चेक सं॰ 295158 सांपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में दिया। ऐसे आश्वासन पर और ऊपर निर्दिष्ट चेक के प्रस्तुति पर परिवादी ने अभियुक्त-याची को 4 लाख रुपया नगद दिया और चेक अपने पास रख लिया। जब समय सीमा के भीतर अभियुक्त-याची ने नगद धन नहीं लौटाया, परिवादी ने दिनांक 2.8.2007 को चेक जमा किया किंतु खाता धारक के खाते में ''निधि की अपर्याप्तता' के कारण यह भुगतान के बिना लौट गया। तब परिवादी ने अभियुक्त-याची से टेलीफोन पर बात किया और उसे चेक के बाउंस होने के बारे में संसूचित किया जिस पर अभियुक्त-याची ने पाँच दिन बाद एक बार फिर चेक जमा करने का अनुरोध किया क्योंकि वह इस बीच धन की व्यवस्था कर लेगा और तद्नुसार परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने पुनः दिनांक 9.8.2007 को उक्त चेक जमा किया किंतु इस बार भी चेक, जिसे अभियुक्त याची द्वारा जारी किया गया था, ''निधि की अपर्याप्तता'' के समान कारणों से बाउंस हो गया। तत्पश्चात् धन लौटाने के लिए कहते हुए परिवादी द्वारा अभियुक्त-याची को कानूनी (मांग) नोटिस भेजा गया था किंतु इसका संतोषजनक उत्तर नहीं दिया गया था और तब उसने परिवाद दर्ज किया।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने निवेदन किया कि सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर परिवादी का बयान दर्ज करने के बाद जाँच किया गया था और जाँच के दौरान परिवादी ने चेक सं॰ 295158, दिनांक 2.8.2007 और 9.8.2007 को उक्त चेक के डिपोजिट स्लिपों, दिनांक 9.8.2007 का बैंक मेमो और डाक रसीद के साथ दिनांक 18.8.2007 के कानूनी (मांग) नोटिस की छाया प्रतिलिपियों को दाखिल किया।

4. श्री जय प्रकाश ने आगे निवेदन किया कि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने स्वीकार किया कि उसने पहली बार दिनांक 2.8.2007 को चेक प्रस्तुत किया था। जो बाउंस हो गया किंतु उसके ध्यान को किसी तरह से आकृष्ट करते हुए विधि के प्रावधानों के अधीन अभियुक्त-याची के विरुद्ध उसके द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी। तब उसने दिनांक 9.8.2007 को उक्त बैंक में चेक प्रस्तुत किया जो पुनः ''निधि की अपर्याप्तता'' के पृष्ठांकन के साथ भुगतान के बिना वापस लौट गया।

5. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी ने परिवाद याचिका में स्वीकार किया था कि उसके चेक के दूसरी बार बाउंस हो जाने के बाद उसने अभियुक्त-याची को कानूनी (मांग) नोटिस भेजा था और अभिकथित धन उसको लौटाया नहीं जा सका था किंतु यह सिद्ध करने के लिए कि नोटिस

वैध रूप से तामील की गयी थी और धन का भुगतान भी नहीं किया गया था, नोटिस के तामील, यदि हो, को प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने **हरमन इलेक्ट्रोनिक्स प्राईवेट लिमिटेड एवं एक अन्य बनाम नेशनल पैनासोनिक इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, (2009)1 SCC 720** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि:–

''न्यायालय अधिकारिता केवल तब प्राप्त करता है जब इसकी अधिकारिता के अंतर्गत वाद हेतुक उद्भूत होता है। इसे अभियुक्त की ओर से लोप अथवा कार्य के किसी कृत्य द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता है। अपराध के अवयव और अपराध के एक अंश को करने के बीच की सुभिन्नता को ध्यान में रखना होगा। परक्राम्य लिखत धारक द्वारा नोटिस जारी किया जाना आवश्यक है, उसका तामीला भी अनिवार्य है। केवल ऐसे नोटिस के तामील पर और तत्पश्चात् 15 दिनों की अवधि के भीतर मांगी गयी राशि का भुगतान करने में अभियुक्त की ओर से विफलता पर अपराध की कारिता पूरा होता है। अतः नोटिस दिया जाना तामील किए जाने पर अग्रता हासिल नहीं कर सकता है।''

6. इसी प्रकार, **मेसर्स शक्ति ट्रेवेल एंड टूर्स बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, 2000 (3) East Cr.C. 837 (SC)** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:–

''अभियुक्त को नोटिस तामील किए जाने की तिथि से 15 दिनों के भीतर धन का भुगतान करने का अधिकार है और केवल तब जब वह भुगतान करने में विफल रहता है, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन मामला दाखिल करने की छूट परिवादी को है। ऐसी अवस्था होने के कारण और चूँकि स्वयं परिवाद में उल्लिखित नहीं किया गया है कि नोटिस तामील किया गया है, परिवाद स्वयं पोषणीय नहीं है।''

7. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने आगे निवेदन किया कि विधि सुनिश्चित है कि यदि बैंकर के समक्ष चेक प्रस्तुत करने पर यह एक बार बाउंस हो जाता है, किसी अन्य तिथि पर पुनः उसी चेक को दाखिल करने से आगे कोई वाद हेतुक उद्भूत नहीं हुआ। वर्तमान मामले में परिवादी ने कथन किया कि उसने पहली बार दिनांक 2.8.2007 को और पुनः दिनांक 9.8.2007 को चेक जमा किया था किंतु उसने दूसरी बार दिनांक 9.8.2007 को चेक के प्रस्तुतीकरण की तिथि से परिवाद दाखिल करने के लिए वाद हेतुक की परिसीमा को संगणित किया जिसे विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है।

8. प्रेम चंद विजय कुमार बनाम यशपाल सिंह एवं एक अन्य, 2005 (3) East. Cr. C. 126 (SC) में सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:–

''अधिनियम की धारा 138 में परिकल्पित वाद हेतुक निर्मित करने के लिए अनिवार्य कारकों में से एक उस धारा के परन्तुक के खंड (b) में अंतर्विष्ट है। यह ''असंदत्त के रूप में चेक को लौटने के संबंध में बैंक से उसको प्राप्त सूचना के 15 दिनों के भीतर'' चेक देने वाले पर लिखित में नोटिस देकर मांग किए जाने को अंतर्ग्रस्त करता है। यदि 15 दिनों की उक्त अवधि के भीतर ऐसी नोटिस नहीं दी जाती है, वाद हेतुक सृजित हो ही नहीं सकता था।''

''इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि जब एक बार चेक के अनादर का परिणाम वाद हेतुक में हुआ, पाने वाले को इसी चेक के अंतर्गत एक अन्य वाद हेतुक सृजित करने की अनुमति नहीं है।''

9. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री जय प्रकाश ने तर्क संक्षेप में देते हुए निवेदन किया कि परिवाद याचिका विधि के अधीन अनुबंधित समय के भीतर दाखिल नहीं की गयी थी और इसलिए, यह पोषणीय

नहीं थी और इसलिए दिनांक 8.7.2010 के आक्षेपित आदेश सहित याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही अभिखंडित किए जाने की दायी है।

10. विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद कुमार सिन्हा ने याची-अभियुक्त की ओर से किए गए प्रतिवाद का विरोध किया और निवेदन किया कि आरंभ से ही याची-अभियुक्त का आशय परिवादी के साथ छल करना था और ऐसे आशय के अनुसरण में वह परिवादी के पास गया और उसे 4 लाख रुपया उधार देने के लिए तैयार किया जिसे उसने प्रसन्नतापूर्वक दिया किंतु ऐसी राशि को लौटाया कभी नहीं गया था और याची-अभियुक्त ने ऐसा चेक, जिसे प्रस्तुत करने पर भुनाया नहीं जा सकता था, जारी करके परिवादी के साथ कपट किया।

11. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री मो॰ हातिम को सुना गया।

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों को ध्यान में रखने पर, मैं विद्वान वरीय अधिवक्ता के तर्कों में सार पाता हूँ कि अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं था कि याची-अभियुक्त के विरुद्ध परिवादी द्वारा जारी किए गए विधिक (मांग) नोटिस को कभी उस पर तामील किया गया था। मैं आगे पाता हूँ कि इस संबंध में वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका था चूँकि ऐसी मांग नोटिस की अभिस्वीकृति रसीद को इस मामले में प्रति शपथ पत्र के साथ प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। मैं आगे पाता हूँ कि परिवादी-वि॰ प॰ सं॰ 2 प्रथम दृष्टया यह विश्वास दिलाने में विफल रहा कि दिनांक 2.8.2007, जो वाद हेतुक की तिथि थी, को चेक बाउंस करने के 30 दिनों के भीतर मांग नोटिस भेजा गया था। वि॰ प॰ सं॰ 2 आगे संतुष्ट करने में विफल रहा कि याची द्वारा नोटिस की प्राप्ति के 30 दिनों के भीतर परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए याची के विरुद्ध परिवाद दाखिल किया गया था। उक्त अधिनियम की धारा 142 अपराध के संज्ञान पर विचार करती है जो कहती है:-

> *''धारा 138 के अधीन किसी अपराध के लिए, कोई भी न्यायालय, चेक के अधीन राशि प्राप्त करने वाले अथवा सामान्य अनुक्रम में चेक के धारक के लिखित परिवाद के सिवाय, संज्ञान नहीं लेगा, ऐसा परिवाद धारा 138 के परन्तुक के खण्ड (C) के अधीन वाद हेतुक उत्पन्न होने की तिथि से एक माह के अन्दर पेश कर दिया जाना चाहिए, परन्तु यह तब जब कि परिवाद का संज्ञान न्यायालय द्वारा विहित अवधि के पश्चात् लिया जा सकेगा, यदि परिवादी न्यायालय को संतुष्ट करता है कि ऐसी अवधि के भीतर परिवाद दायर नहीं करने के लिये उसके पास पर्याप्त कारण थे।''*

13. वर्तमान मामले में परिवादी ने न तो प्रकट किया कि चेक के बाउंस करने के 30 दिनों के भीतर मांग नोटिस भेजा गया था और न ही यह प्रकट किया गया है कि परिवाद मांग नोटिस, जिसे अभियुक्त-याची को जारी किया गया था, की प्राप्ति के 30 दिनों के भीतर दाखिल किया गया था और तद्द्वारा विधि को गति में लाने के पहले परिवादी विधि के आज्ञापक प्रावधानों का अनुपालन नहीं कर सका था जबकि ऐसा अनुपालन परिवाद दाखिल करने के लिए अनिवार्य था और जिसकी कमी के कारण याची की दांडिक कार्यवाही को विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, इस याचिका को अनुज्ञात किया जाता है और परिवाद केस सं॰ 903 वर्ष 2007 में याची की दांडिक कार्यवाही और विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 8.7.2010 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

मुनि देवी उर्फ विजेता देवी एवं अन्य

बनाम

राजधनी देवी एवं अन्य

C.R. No. 34 of 2009. Decided on 24th June, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश IX, नियम 13—एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किया जाना—आदेश IX नियम 13 की प्रयोज्यता के संबंध में किसी निर्बंधन की अनुपस्थिति में यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि आदेश IX, नियम 13 के प्रावधान केवल तभी प्रयोज्य होंगे जब सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश IX के प्रावधानों का पालन करने के उपरांत एकपक्षीय डिक्री पारित किया जाय—अपीलीय न्यायालय का निष्कर्ष कि आदेश VIII, नियम 10 के अधीन पारित एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय नहीं है, संपोषित नहीं किया जा सकता है। (पैराएँ 11 से 13)

निर्णयज विधि.—1990 (2) BLJR 130—Distinguished; AIR 1988 Kerala 304; AIR 1988 Delhi 55; AIR 1994 Delhi 367; **2000 (3) BLJ 268;** AIR 1988 Kerala 161; AIR 1985 Kant 77; AIR 1990 A.P. 69; AIR 1995 Orissa 45—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. V. Shivnath, For the Petitioners; Mr. Ram Subhag Singh, For the Opposite Parties.

आदेश

यह सिविल पुनरीक्षण प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 के उत्तराधिकारियों द्वारा विविध अपील सं॰ 13 वर्ष 2006 में अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ IX, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 23.6.2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने अपील खारिज कर दिया था और विविध केस सं॰ 8 वर्ष 2001 में मुंसिफ के दिनांक 4.7.2006 के आदेश को अभिपुष्ट किया था।

2. अनावश्यक विवरणों को छोड़ते हुए मामले के तथ्य ये हैं कि वादी/प्रत्यर्थी/वि॰ प॰ सं॰ 1 ने मूल प्रतिवादीगण 1 से 6 के विरुद्ध अपने टाइटल की घोषणा के लिए और खाता सं॰ 10, भूखंड सं॰ 2247 क्षेत्रफल 0.34 डिसमल, खाता सं॰ 17, भूखंड सं॰ 2248 क्षेत्रफल 30 डिसमल और भूखंड सं॰ 2240 क्षेत्रफल 19 डिसमल, ग्राम जामताड़ा, पी॰ एस॰ डुमरी, जिला गिरीडीह से संबंधित भूमि के कब्जा को पुन: पाने के लिए टाइटल वाद सं॰ 51 वर्ष 1989 दाखिल किया। प्रतीत होता है कि उक्त वाद में अपना-अपना नोटिस प्राप्त करने के बाद प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 दिनांक 19.2.1990 को उपस्थित हुए और लिखित कथन दाखिल करने के लिए स्थगन इप्सित किया। तब यह प्रतीत होता है कि स्थगन के बावजूद प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 ने लिखित कथन दाखिल करने के लिए स्थगन इप्सित किया। तब यह प्रतीत होता है कि स्थगन के बावजूद, प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 ने लिखित कथन दाखिल नहीं किया था, तद्नुसार विद्वान अवर न्यायालय आदेश VIII नियम 10 के अधीन उनके विरुद्ध एकपक्षीय रूप से अग्रसर हुआ और दिनांक 21.4.1998 को उनके विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित किया। तब यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त डिक्री के निष्पादन के लिए निष्पादन मामला दाखिल किया गया था और उस निष्पादन मामले में याचीगण/अपीलार्थीगण को पक्षकार बनाया गया था क्योंकि दिनांक 6.9.1998 को मूल प्रतिवादी सं॰ 1 की मृत्यु हो गयी थी। आगे प्रतीत होता है कि जब याचीगण/अपीलार्थीगण निष्पादन मामला सं॰ 11 वर्ष 1998 के नोटिस से बचते रहे, न्यायालय ने समाचार पत्रों में नोटिस प्रकाशित करने का आदेश दिया और तद्नुसार दैनिक समाचार पत्र में नोटिस प्रकाशित किया गया था। आगे प्रतीत होता है कि तत्पश्चात् वि॰ प॰ सं॰ 1/प्रत्यर्थी/वादी को वाद भूमि का कब्जा दिया गया था। तत्पश्चात याचीगण/अपीलार्थीगण ने आदेश IX नियम 13 के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधानों के मुताबिक मूल प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए विविध केस सं॰ 8 वर्ष 2001 दाखिल किया। आगे प्रतीत होता

है कि विद्वान मुंसिफ, गिरीडीह ने मामले के तथ्यों पर विचार करने के बाद दिनांक 4.7.2006 के आदेश के तहत उक्त आवेदन अस्वीकार कर दिया। मुंसिफ के पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध विविध अपील सं॰ 13 वर्ष 2006 दाखिल किया गया जिसे भी अपर जिला न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ IX, गिरीडीह द्वारा मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए और यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आदेश VIII नियम 10 के प्रावधानों के अधीन पारित आदेश के विरुद्ध आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय नहीं है, खारिज कर दिया गया था। इस पुनरीक्षण आवेदन में पूर्वोक्त आदेश को आक्षेपित किया गया है।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री वी॰ शिवनाथ द्वारा निवेदन किया गया है कि विद्वान अपीलीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके अवैधता की है कि अपील पोषणीय नहीं है क्योंकि आदेश IX नियम 13 के अधीन मूल विविध आवेदन आदेश VIII नियम 10 के प्रावधानों के अधीन पारित आदेश के विरुद्ध पोषणीय नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि **ए॰ के॰ पी॰ हरिदास बनाम ए॰ माधवी अम्मा, AIR, 1988 Kerla 304,** में केरल उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि लिखित कथन दाखिल नहीं करने के लिए आदेश VIII, नियम 10 के प्रावधानों के अधीन पारित कोई डिक्री एक पक्षीय डिक्री है और इसलिए आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय है। आगे निवेदन किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 1 क्षय रोग से पीड़ित थी; अत: वह दिनांक 14.1.1995 तक जब उसकी मृत्यु हो गयी, न्यायालय में उपस्थित होने में सक्षम नहीं थी। आगे निवेदन किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 2 मानसिक रूप से बीमार है और वह आवारागर्दी का जीवन बिता रहा है और उस कारण से वह टाइटल वाद का प्रतिवाद नहीं कर सका था। यह निवेदन किया गया है कि याचीगण ने पर्याप्त कारण दर्शाया था जिसने प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 को लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद करने से रोका था किंतु अवर न्यायालयों ने गलत रूप से एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए याचीगण की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

4. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार/प्रत्यर्थी/वादी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता, श्री राम सुभग सिंह निवेदन करते हैं कि **सत्यनारायण साह बनाम बृज गोपाल मुंदड़ा, 1990 (2) BLJR 1301,** में पटना उच्च न्यायालय ने विनिश्चित किया कि आदेश VIII, नियम 10 के प्रावधानों के अधीन पारित डिक्री एकपक्षीय डिक्री नहीं है, अत: उक्त डिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन आदेश IX, नियम 13 के अधीन पोषणीय नहीं है। श्री सिंह आगे निवेदन करते हैं कि **ट्रेडर्स बैंक लिमिटेड बनाम अवतार सिंह, AIR 1988 Delhi 55,** में दिल्ली उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा समरुप दृष्टिकोण अपनाया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि तर्क की खातिर यह उपधारित करते हुए भी कि आदेश VIII, नियम 10 के अधीन पारित डिक्री अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय है, तब भी चूँकि याचीगण ने पर्याप्त कारण नहीं दर्शाया था जिसने प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 को उपस्थित होने और लिखित कथन दाखिल करने से रोका था, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि आदेश IX, नियम 13 के अधीन याचीगण द्वारा दाखिल आवेदन में किए गए, प्रकथनों और मौखिक साक्ष्य के सिवाय यह दर्शाने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि प्रतिवादी सं॰ 1 वर्ष 1990 से डिक्री की तिथि अर्थात् दिनांक 21.4.1998 तक क्षयरोग से पीड़ित थी। यह निवेदन भी किया गया है कि याचीगण अथवा प्रतिवादीगण द्वारा यह दर्शाने के लिए कोई प्रमाण पत्र दाखिल नहीं किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 2 मानसिक रोगी था। यह निवेदन किया गया है कि वकालतनामा में भी यह उल्लिखित नहीं किया गया था कि प्रतिवादी सं॰ 2 मानसिक रोग से पीड़ित था। उक्त परिस्थितियों के अधीन, अवर न्यायालयों द्वारा दिए गए निष्कर्ष, जो तथ्य के निष्कर्ष है, में इस सिविल पुनरीक्षण में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, वह निवेदन करते हैं कि अपीलीय न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है जिसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

5. निवेदनों को सुनने पर, मैंने विधि के प्रावधानों और पक्षों द्वारा उद्धृत अनेक निर्णयों का परिशीलन किया है। **सत्यनारायण साह बनाम ब्रिज गोपाल मुंदड़ा, (1990)2 BLJR 1301,** में पटना उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि आदेश IX नियम 13 के अधीन प्रतिवादी की ओर से दाखिल आवेदन पोषणीय नहीं था क्योंकि आदेश VIII नियम 10 के अधीन पारित डिक्री आदेश IX के अर्थ के अंतर्गत एकपक्षीय डिक्री नहीं है।

6. इस चरण पर सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX नियम 13 के प्रावधानों का परीक्षण करना समुचित होगा जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *13. **प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करना.**–किसी ऐसे मामले में जिसमें डिक्री किसी प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय पारित की गई है, वह प्रतिवादी उसे अपास्त करने के आदेश के लिए आवेदन उस न्यायालय में कर सकेगा जिसके द्वारा वह डिक्री पारित की गई थी और यदि वह न्यायालय का यह समाधान कर देता है कि समन की तामील सम्यक् रूप से नहीं की गई थी, या वह वाद की सुनवाई के लिए पुकार होने पर उपसंजात होने से किसी पर्याप्त हेतुक से निवारित रहा था तो खर्चों के बारे में, न्यायालय में जमा करने के या अन्यथा ऐसे निबन्धनों पर जो वह ठीक समझे, न्यायालय यह आदेश करेगा कि जहां तक डिक्री उस प्रतिवादी के विरुद्ध है वहां तक वह अपास्त कर दी जाए, और वाद में आगे कार्यावाही करने के लिए दिन नियत करेगा ...''*

7. आदेश IX नियम 13 के सादे पठन पर स्पष्ट है कि यह अन्य मामलों में भी प्रयोज्य है जहाँ न्यायालय ने अपने आदेश के अननुपालन के लिए पक्षकार के व्यतिक्रम की स्थिति में एकपक्षीय डिक्री पारित करता है। आदेश IX नियम 13 में अंतर्विष्ट प्रावधानों के परीक्षण पर यह स्पष्ट होता है कि इसमें यह उपदर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि उक्त प्रावधान केवल उन मामलों के प्रति प्रयोज्य है जहाँ सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX नियम 6 के अधीन प्रक्रिया का पालन करने के बाद एकपक्षीय डिक्री पारित की जाती है। वस्तुत:, सि॰ प्र॰ सं॰ के शुरूआती शब्द ऐसी एक संकीर्ण निर्वचन को अपवर्जित करेगा। सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX नियम 13 में शब्दों **''किसी मामले में जिसमें एकपक्षीय डिक्री पारित की गयी है''(जोर दिया गया)** का उपयोग एक पक्षीय डिक्री के समस्त मामलों को आच्छादित करने के लिए व्यापक है भले ही किसी भी कारण से ऐसा एकपक्षीय डिक्री पारित किया गया है। अत: सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX नियम 13 की प्रयोज्यता के संबंध में किसी निर्बंधन की अनुपस्थिति में यह अर्थ लगाना संभव नहीं है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX नियम 13 के प्रावधान केवल तब प्रयोज्य होंगे जब सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX के प्रावधानों का अनुसरण करने के बाद एकपक्षीय डिक्री पारित किया जाता है।

8. ''सत्य नारायण साह मामले'' में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने पैरा 4 पर अभिनिर्धारित किया है कि:–

> *''अत: आदेश IX नियम 13 के अधीन प्रतिवादी की ओर से दाखिल आवेदन पोषणीय नहीं था क्योंकि वर्तमान मामले में पारित डिक्री आदेश IX के अर्थ के अंतर्गत एकपक्षीय डिक्री नहीं था.....''*

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने उस मामले में इस उपधारणा के अधीन निष्कर्षित किया कि आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन केवल उन मामलों में लागू होगा जहाँ आदेश IX के प्रावधानों के अनुसरण के बाद एक पक्षीय डिक्री पारित किया गया हो। पटना उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के प्रति पूरे सम्मान के साथ यह कथित किया गया कि आदेश IX नियम 13 के प्रावधानों, विनिर्दिष्टत: उसमें प्रयुक्त आरंभिक शब्दों के विस्तार और प्रयोज्यता पर विचार किए बिना वे इस निष्कर्ष पर आए। अत: मैं ''सत्य नारायण साह मामले'' में अपनाए गए पूर्वोक्त दृष्टिकोण के साथ सहमत नहीं हूँ।

9. जहाँ तक विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए **ट्रेडर बैंक लिमिटेड बनाम अवतार सिंह, AIR 1988 Delhi 55,** में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय का संबंध है, यह

उल्लेखनीय है कि **गुजरात को-ऑपरेटिव सीड्स ग्रोवर्स फेडरेशन बनाम श्रीमती रमेश कांता जैन, AIR 1994 Delhi 367,** में दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि आदेश VIII नियम 10 के अधीन पारित एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय है। अत: विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया निर्णय जो एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय है, अब लागू नहीं होता है।

10. यह उल्लेखनीय है कि **श्री श्री 108 नरसिंह भगवान ठाकुरबाड़ी बनाम तेज उर्फ टेक नारायण सिंह, 2000(3) BLJ 268,** में पटना उच्च न्यायालय अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा उद्घोषित अनेक निर्णयों पर विचार करने के बाद ''सत्य नारायण साह मामले'' में अपनाए गए अपने पूर्व के दृष्टिकोण से असहमत हुआ था और निष्कर्षित किया था कि आदेश VIII नियम 10 के अधीन पारित डिक्री को अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय है।

11. वर्तमान मामले में विद्वान मुंसिफ, गिरीडीह द्वारा पारित आदेश प्रकट करता है कि जब प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 ने लिखित कथन दाखिल नहीं किया था, न्यायालय दिनांक 3.7.1990 के आदेश के तहत उनके विरुद्ध एकपक्षीय रूप से अग्रसर हुआ और अंतत: दिनांक 21.4.1998 का निर्णय पारित करके वाद डिक्री किया। यह उल्लेखनीय है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VIII नियम 10 के अधीन न्यायालय के पास दो विकल्प है जब प्रतिवादी लिखित कथन दाखिल करने में विफल रहता है जैसा आदेश VIII के नियम 1 अथवा नियम 9 के अधीन आवश्यक है। प्रथम विकल्प तुरन्त निर्णय उद्घोषित करना है जिसका अनुसरण एक डिक्री द्वारा किया जाएगा और दूसरा विकल्प यह है कि न्यायालय वाद के संबंध में ऐसा अन्य आदेश पारित कर सकता है जैसा यह सुयोग्य समझता है। जैसा ऊपर गौर किया गया है, वर्तमान मामले में न्यायालय ने दूसरा विकल्प अपनाया और आदेश दिया था कि यह प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 के विरुद्ध एकपक्षीय रूप से अग्रसर हुआ और अंतत: उनके विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित किया।

12. यह उल्लेखनीय है कि केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और उड़ीसा उच्च न्यायालयों ने क्रमश: **AIR 1988 Kerala 161; AIR 1985 Kant. 77; AIR 1990 Andhra 69** और **AIR 1995 Orissa 45** में अभिनिर्धारित किया है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VIII नियम 10 के अधीन पारित डिक्री एकपक्षीय डिक्री है और इसको अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय है।

13. अत: मैं पाता हूँ कि अपीलीय न्यायालय का निष्कर्ष कि आदेश VIII नियम 10 के अधीन पारित डिक्री को अपास्त करने के लिए आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन पोषणीय नहीं है और इसलिए अपील भी पोषणीय नहीं है, वैध नहीं है और इसलिए इसे संपोषित किया जा सकता है।

14. अब मैं यह विचार करने के लिए अग्रसर हो रहा हूँ कि क्या वर्तमान मामले में पारित एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए याचीगण ने मामला निर्मित किया है? आदेश IX नियम 13 में अंतर्विष्ट प्रावधान दर्शाता है कि न्यायालय दो परिस्थितियों में एकपक्षीय डिक्री अपास्त कर सकता है (i) यदि समन तामील नहीं किए जाने के कारण प्रतिवादी मामले में उपस्थित नहीं हो सका था अथवा (ii) जब मामला सुनवाई के लिए बुलाया गया था, प्रतिवादी को न्यायालय में उपस्थित होने से पर्याप्त कारणों द्वारा रोका गया था।

15. वर्तमान मामले में स्वीकृत रूप से प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 पर समन तामील किया गया था और वे दिनांक 19.2.1990 को वाद में उपस्थित हुए थे और लिखित कथन दाखिल करने के लिए स्थगन के लिए याचिका दाखिल किया था। अत: एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए इस मामले में पहला आधार उपलब्ध नहीं है। किंतु, आदेश IX नियम 13 के अधीन आवेदन में पहली बार कथित किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 1 क्षयरोग से पीड़ित थी और वह दिनांक 14.1.1995 तक बीमार रही जब उसकी मृत्यु हो गयी। यह भी कथित किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 2 मानसिक रोग से पीड़ित था और आवारागर्दी

जीवन बिता रहा था। यह भी कथित किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 1 वस्तुतः प्रतिवादी सं॰ 2 का पैरवीकार था। दोनों अवर न्यायालयों ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के बाद याचीगण द्वारा दिए गए पूर्वोक्त बयानों पर अविश्वास किया था क्योंकि इतने लंबे समय तक प्रतिवादी सं॰ 1 की बीमारी के समर्थन में कोई दस्तावेज नहीं दाखिल किया गया था और यह दर्शाने के लिए भी कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि वह वर्ष 1990 से शैय्यग्रस्त थी। अवर न्यायालयों ने यह निष्कर्ष भी दिया था कि यह दर्शाने के लिए कोई दस्तावेज दाखिल नहीं किया गया था कि प्रतिवादी सं॰ 2 मानसिक रोग से पीड़ित था। विद्वान मुंसिफ ने यह निष्कर्ष भी दिया था कि टाइटल वाद सं॰ 51 वर्ष 1989 में प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा दाखिल वकालतनामा में यह उल्लिखित नहीं किया गया है कि प्रतिवादी सं॰ 2 मानसिक रोगी था और उसके अगले मित्र प्रतिवादी सं॰ 1 के माध्यम से उसका प्रतिनिधित्व किया गया था। तद्नुसार, दोनों अवर न्यायालयों ने तथ्यों पर विचार करने के बाद निष्कर्षित किया कि याचीगण ने पर्याप्त कारण नहीं दर्शाया था जिसने प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 को उपस्थित होने और लिखित कथन दाखिल करने से रोका था जैसा न्यायालय द्वारा निर्देशित किया गया था। तद्नुसार, दोनों अवर न्यायालयों ने मामले के तथ्यों पर विचार करने के बाद आवेदन और अपीलों को खारिज कर दिया था और मैं उक्त निष्कर्षों में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ।

16. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, विद्वान अपीलीय न्यायालय के आदेश का अंश, जिसके द्वारा इसने अभिनिर्धारित किया कि अपील पोषणीय नहीं है, अपास्त किया जाता है। किंतु मैं अवर न्यायालयों के आदेशों में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ जिसके द्वारा उन्होंने अभिनिर्धारित किया कि एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए याचीगण ने कोई मामला नहीं बनाया था। तद्नुसार, इस सिविल पुनरीक्षण को खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

बिजय चौबे

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 1005 of 2008. Decided on 30th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 147/148/149/307/353/124A/120B सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धाराएँ 25 (1-b)/26/35/27 एवं सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 (1)(II)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—उग्रवादियों के लिए अभिकथित रूप से भोजन की व्यवस्था करने के लिए दांडिक अभियोजन—पुलिस के समक्ष दिए गए सह-अभियुक्त के इकबालिया बयान को छोड़कर कोई विधिक साक्ष्य नहीं है—पुलिस याची का संबंध उग्रवादियों के साथ स्थापित करने में विफल रही—निजी बचाव के अधिकार के प्रयोग में याची ने केवल एक बार भोजन दिया था—संज्ञान लेने के आदेश को अपास्त किया गया।

(पैराएँ 4 से 7)

निर्णयज विधि.—2011 (2) JCR 170 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. Shailesh, For the Petitioner; Mr. Md. Hatim, For the State.

आदेश

याची ने दिनांक 24.5.2007 के उस आक्षेपित आदेश के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147/148/149/307/353/124A/120B के अधीन, आयुध अधिनियम की धाराओं 25 (1-b)/26/35/27 के अधीन एवं सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17(1)(II) के अधीन भी पिपरवार पी॰ एस॰ केस सं॰ 18 वर्ष 2006, जी॰ आर॰ सं॰ 347 वर्ष 2006 के तत्सम, में सी॰ जे॰ एम॰, चतरा द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया था।

2. दिनांक 31.5.2006 को भालू बांध वन के निकट दोपहर लगभग 1.30 बजे दर्ज पिपरवार पुलिस थाना के पुलिस अधिकारी, सूचक के स्व-बयान पर दांडिक विधि गति में लायी गयी थी। सूचक ने कथन किया कि जब वह पुलिस दल के साथ भालू बांध के निकट उग्रवादियों (माओवादियों) के विरुद्ध कांबिंग ऑपरेशन में लगा हुआ था, उग्रवादियों द्वारा सूचक और पुलिस दल के सदस्यों पर आक्रमण किया गया था जिसका परिणाम गोलीबारी में हुआ क्योंकि पुलिस ने जवाबी कार्रवाई की थी। किंतु उग्रवादी (माओवादी) नारा लगाते हुए पीछे हट गए और भागने का प्रयास किया किंतु उनमें से कुछ को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था और उनकी तलाशी लिए जाने पर घटनास्थल से भारी मात्रा में हथियार और कारतूस बरामद किए गए थे। उग्रवादियों, जिन्हें पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था, ने अपना दोष संस्वीकार किया और अपराध में सह-अभियुक्तों की सहभागिता को भी प्रकट किया। पुलिस के समक्ष अपनी संस्वीकृति में एक महिला आतंकवादी ने स्वीकार किया कि पिपरवार में उनके रुकने के दौरान याची बिजय चौबे ने उनके लिए भोजन का प्रबंध किया था। पुलिस ने अन्वेषण के बाद याची और अन्य के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री शैलेश ने निवेदन किया कि इस सीमित अभिकथन कि याची ने उनके लिए भोजन का प्रबंध किया था, के साथ सह-अभियुक्त उर्मिला देवी के इकबालिया बयान को छोड़कर याची के विरुद्ध कोई भी विधिक साक्ष्य नहीं था। श्री शैलेश ने आगे निवेदन किया कि सह-अभियुक्त के इकबालिया बयान के आधार पर भी कोई अपराध, संज्ञान आदेश में अभिकथित अपराध की तो बात ही दूर, याची के विरुद्ध नहीं बनाया जा सकता था। याची निर्दोष, स्वच्छ पूर्ववृत्त वाला व्यक्ति था जिसका उग्रवादियों के साथ कोई संबंध नहीं था। याची के विरुद्ध एकमात्र अभिकथन किया था, यद्यपि इससे इनकार किया गया था कि उसने गाँव में उनके रुकने के दौरान एम॰ सी॰ सी॰ के लोगों को भोजन दिया था। याची ने स्वीकार किया कि उसे प्रपीड़ित और आतंकित किया गया था और अपने परिवार के सदस्यों का जीवन बचाने के लिए कोई उपाय नहीं होने के कारण उसे भोजन देने के लिए मजबूर किया गया था और यह याची का स्वैच्छिक कृत्य नहीं था बल्कि अपने जीवन की निजी बचाव के अधिकार के प्रयोग में किया गया कृत्य था और इसलिए सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17(I)(II) के अधीन किसी तरीके का अपराध आकृष्ट नहीं होता है। उक्त अधिनियम का सार इस तथ्य में है कि किसी व्यक्ति ने बैठकों में योगदान/सहायता/भागीदारी किया हो अथवा किसी तरीके से विधि विरुद्ध जमाव को गठित किया हो और लिखित रिपोर्ट में अभिकथित तथ्य की दृष्टि में याची की सह-अपराधिता स्थापित नहीं की जा सकती थी जिसने दी गयी परिस्थितियों के अधीन उग्रवादियों को भोजन देने की बात को स्वीकार किया था। मात्र सह-अभियुक्त की संस्वीकृति पर याची को अभियोजित नहीं किया जा सकता है।

4. अरुप भूइँया बनाम असम राज्य, 2011 (2) JCR 170 (SC) में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

> *''वर्तमान मामले में, अभियोजन मामला मुख्यतः आरक्षी अधीक्षक के समक्ष दिए गए अपीलार्थी के अभिकथित इकबालिया बयान पर विश्वास करता है जो न्यायिकेतर संस्वीकृति है और संपुष्टिकारी सामग्री की अनुपस्थिति है। अतः, हमारा मत है कि अभिकथित इकबालिया बयान के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं होगा।''*

5. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री मो॰ हातिम ने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि सह-अभियुक्त के इकबालिया बयान कि उसने याची के घर में उनके रुकने के दौरान उग्रवादियों को भोजन दिया था, को छोड़कर इस याची के विरुद्ध कोई विधिक साक्ष्य नहीं है किंतु, अब याची ने दबाव के अधीन और अपने जीवन के प्रति खतरे पर भोजन देने की संस्वीकृति किया।

6. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि पुलिस के समक्ष दिए गए सह-अभियुक्त के इकबालिया बयान को छोड़कर कोई विधिक साक्ष्य नहीं था जिसे उसके स्व-बयान को दर्ज करने के पहले सूचक के समक्ष प्रकट किया गया था। पुलिस याची का उग्रवादियों के साथ संबंध स्थापित करने में विफल रही और यदि अभिकथन के मुताबिक अभियोजन मामले को सत्य माना भी जाता है, याची ने निजी बचाव के अधिकार के प्रयोग में एक बार भोजन देने की बात को स्वीकार किया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 96 कहती है कि ''कुछ भी अपराध नहीं है जिसे निजी बचाव के अधिकार के प्रयोग में किया गया है और मैं पाता हूँ कि याची ने विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों के अधीन उसे उग्रवादियों को भोजन देने के लिए मजबूर किया गया था। अभिकथन यह नहीं है कि वह रुटीन तरीके से उनको भोजन दिया करता था और तद्द्वारा जानबूझकर उसने एम॰ सी॰ सी॰ संगठन की गतिविधियों को आगे बढ़ाया जिसने उसके विरुद्ध अभिकथित किसी अन्य अपराध अथवा सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17(I)(II) के अधीन अपराध आकृष्ट किया।

7. इन परिस्थितियों में, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 24.5.2007 के आदेश, जिसके द्वारा इस याची के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित पिपरवार पी॰ एस॰ केस सं॰ 18 वर्ष 2006, जी॰ आर॰ सं॰ 347 वर्ष 2006 के तत्सम, में याची बिजय चौबे के दांडिक अभियोजन को अपास्त किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्तिगण

गणेश भूमिज

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal (Jail) Appeal (DB) No. 1507 of 2003. Decided on 17th June, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 171 वर्ष 1998 में श्री एस॰ एन॰ प्रसाद, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 18 जूलाई, 2003 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–जब मृतक द्वारा अपीलार्थी को फटकारा गया था, उसने सूचक के घर में पड़े सावल से उस पर प्रहार किया–मृतक के शरीर पर दोबारा प्रहार नहीं किया गया था–मृतक की हत्या करने का कोई पूर्वचिंतन अथवा आशय नहीं था–अपीलार्थी ने न तो अनुचित लाभ लिया और न ही क्रूर अथवा असामान्य तरीके से कृत्य किया–मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आता है–दोषसिद्धि को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II के अधीन परिवर्तित किया गया–पहले ही भुगत ली गयी अवधि (14 वर्ष) तक दंडादेश घटाया गया। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mrs. Preety Sinha, *Amicus Curriae,* For the Appellant; Mr. T.N. Verma, For the Respondent.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी के विद्वान न्यायमित्र, श्रीमती प्रीति सिन्हा एवं राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना गया।

2. यह अपील सत्र विचारण सं॰ 171 वर्ष 1998 में श्री एस॰ एन॰ प्रसाद, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 18 जूलाई, 2003 के दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं दंडादेश

के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा एकमात्र अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध करने का दोषी पाया गया है और, तद्द्वारा, उसे आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

3. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि जब इस मामले की सूचक करमी लोहारिन दिनांक 7.11.1997 को रात्रि लगभग 8 बजे अपने घर में थी, अपीलार्थी गणेश भूमिज उसके घर आया और यौन संभोग का प्रस्ताव दिया जिससे उसने इनकार कर दिया और उसको फटकारने लगी। इसी बीच उसका श्वसुर सोनू लोहार वहाँ आया और उसने उसे उक्त तथ्य के बारे में बताया, जिस पर उसने भी अपीलार्थी को फटकारा और अपने घर से चले जाने को कहा, तब अपीलार्थी ने वहाँ रखा लोहे का ''सावल'' उठाया और इससे उसके श्वसुर पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरुप घटनास्थल पर उसकी मृत्यु हो गई। आगे अभिकथित किया गया है कि अभिकथित घटना के एक सप्ताह पहले अपीलार्थी सूचक को ऐसा प्रस्ताव दिया करता था जब भी वह गाँव में उससे मिलता था किंतु उसने सदैव उसको फटकारा था।

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान न्यायमित्र, श्रीमती प्रीति सिन्हा ने निवेदन किया कि अधिकाधिक अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था। उन्होंने यह दर्शाने के लिए शव-परीक्षण रिपोर्ट को निर्दिष्ट किया कि मृतक के मस्तक पर भारी, कड़े और भोथरे वस्तु द्वारा कारित केवल एक उपहति पायी गयी थी।

5. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, श्री टी॰ एन॰ वर्मा ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों में सार प्रतीत होता है कि मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आता है क्योंकि यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि मृतक की हत्या करने का कोई पूर्व चिंतन अथवा आशय था। आगे यह प्रतीत होता है कि जब मृतक द्वारा अपीलार्थी को फटकारा गया था, उसने सूचक के घर में रखे ''सावल'' द्वारा उस पर प्रहार किया था। मृतक के शरीर पर दोबारा प्रहार नहीं किया गया है। यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी ने अनुचित लाभ लिया एवं क्रूर अथवा असामान्य तरीके से कृत्य किया।

7. हमारे मत में, मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आता है। इन परिस्थितियों में, हम दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 से धारा 304, भाग II के अधीन परिवर्तित करने के इच्छुक हैं। तद्नुसार, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि एतद् द्वारा अपास्त की जाती है और अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन अपराध करने का दोषी अभिनिर्धारित किया जाता है।

8. जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी अब तक लगभग 14 वर्षों से अक्टूबर, 1997 से जेल अभिरक्षा में है। उसे उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि के लिए कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में वांक्षित नहीं है।

परिवर्तित दोषसिद्धि वारन्ट जारी करने के लिए संबंधित न्यायालय को आदेश संसूचित किया जा सकता है।

दोषसिद्धि में इस परिवर्तन और दंडादेश में परिवर्तन के साथ इस अपील को खारिज किया जाता है।

कार्यालय द्वारा फैक्स के माध्यम से आदेश संसूचित किया जाए।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

राजेश कुमार सिन्हा उर्फ उदल जी उर्फ शैलेश जी

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 309 of 2011. Decided on 27th June, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 167 (2) एवं 173 (8)—व्यतिक्रम जमानत–आवेदन की खारिजी–जमानत आवेदन प्रस्तुत करने के लिए धारा 167 (2) के अधीन प्रोद्भूत अधिकार अभियुक्त का अजेय अधिकार है यदि 60/90 दिनों के भीतर पुलिस रिपोर्ट दाखिल नहीं किया जा सकता था–किंतु, यह दर्शाते हुए कि अन्य अपराधों के लिए, जिनमें मंजूरी की आवश्यकता थी, याची के विरुद्ध अन्वेषण लंबित था जब आयुध अधिनियम के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अन्वेषण पूरा किए जाने के बाद 60 दिनों के भीतर आरोप-पत्र दाखिल किया जा चुका था, याची की याचिका को अस्वीकार करने में अवर न्यायालय न्यायोचित थे–याचिका खारिज। (पैराएँ 3 से 5)

निर्णयज विधि.–(2009)6 SCC 332—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Jitendra S. Singh, For the Petitioner; Mr. V.S. Sahay, For the State.

आदेश

याची राजेश कुमार सिन्हा उर्फ उदल जी उर्फ शैलेश जी ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 154 वर्ष 2010 में न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 14.2.2011 के आदेश, जिसके द्वारा मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, आई॰/सी॰ राँची द्वारा पारित दिनांक 9.11.2010 के आदेश जिसमें अपनी जमानत के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167 (2) के अधीन याची की ओर से दाखिल याचिका अस्वीकार कर दी गयी थी, को मान्य ठहराया गया था और पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया था, के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब किया है।

2. याची को आयुध अधिनियम की धाराओं 25 (1-b)a और 26, भारतीय दंड संहिता की धारा 121, विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धाराओं 10 और 13 (1) (a) (b) और सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दर्ज लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 161 वर्ष 2010, जी॰ आर॰ सं॰ 3331 वर्ष 2010 के तत्सम, के संबंध में दिनांक 5.8.2010 को रिमान्ड किया गया था। पुलिस ने मामले के अन्वेषण के बाद याची के विरुद्ध अन्य अभिकथित अपराधों में अन्वेषण लंबित दर्शाते हुए केवल आयुध अधिनियम की धाराओं 25 (1-b)a और 26 के अधीन अपराध के लिए दिनांक 1.10.2010 को आरोप-पत्र दाखिल किया था। कथित किया गया है कि याची ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167 (2) के अधीन सी॰ जे॰ एम॰, राँची के न्यायालय के समक्ष जमानत पर अपनी निर्मुक्ति के लिए आवेदन दिया था जिसे अंतत: सी॰ जे॰ एम॰ आई॰/सी॰ राँची द्वारा सुना गया था जिन्होंने दिनांक 9.11.2010 के आदेश के तहत याचिका अस्वीकार कर दिया था। तब याची ने दिनांक 9.11.2010 के आदेश के विरुद्ध न्यायिक कमिश्नर, राँची के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 154 वर्ष 2010 दाखिल किया जिसे भी दिनांक 14.2.2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

3. इस याचिका का मुख्य जोर यह था कि याची के विरुद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 के अधीन दाखिल आरोप-पत्र याची के विरुद्ध अन्य अभिकथित अपराधों के लिए अन्वेषण लंबित दर्शाते हुए केवल आयुध अधिनियम के अधीन अभिकथित अपराध के लिए था और उस तरीके से समस्त तात्विक विशिष्टियों पर अन्वेषण को पूर्ण दर्शाया नहीं गया था जैसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अपेक्षित

है और कि अंतरिम आरोप-पत्र 60 दिनों के परे अभिरक्षा में उसके निरोध के बाद याची के जमानत के अधिकार को विफल करने के लिए दाखिल किया गया था। दिनांक 9.11.2010 को सी॰ जे॰ एम॰ आई॰/सी॰, राँची द्वारा दर्ज आक्षेपित आदेश और दिनांक 14.2.2011 को न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा दर्ज आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दोनों अवर न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में विफल रहे कि धारा 173 (2) के अधीन प्रावधानों के मुताबिक अंतिम रिपोर्ट मामले, और न कि अपराध, का अन्वेषण पूरा करने के बाद दाखिल करना होता है और इसलिए मामले के पूर्ण अन्वेषण के बिना किसी रिपोर्ट का अर्थ विधि के पूर्वोक्त प्रावधानों के निबंधनानुसार अंतिम रिपोर्ट के रूप में नहीं लगाया जा सकता था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए वर्ष 1973 में संशोधन के जरिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167 (2) के प्रावधानों को पुर:स्थापित किया गया था। अवर न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में विफल रहे कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 (8) के प्रावधान बिल्कुल भिन्न थे जिसने मामले, और न कि अपराध का आगे अन्वेषण करने के लिए अन्वेषण एजेन्सी को शक्ति प्रावधानित किया था किंतु वर्तमान मामले में, प्रकटत:, मामले के अन्वेषण को पूरा किया गया दर्शाया नहीं गया था। मैं दिनांक 9.11.2010 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 154 वर्ष 2010 में दिनांक 14.2.2011 को विद्वान न्यायिक कमिश्नर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के परिशीलन से पाता हूँ कि उसमें चर्चा की गयी थी कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 (8) के अधीन मामले के आगे अन्वेषण पर कोई वर्जना नहीं है और विद्वान न्यायिक कमिश्नर ने **(2009)6 SCC 332** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया। जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:–

> *''अन्वेषण के पूरा होने पर धारा 173 (2) के अधीन पुलिस रिपोर्ट दाखिल किए जाने के बाद भी पुलिस को दं० प्र० सं० की धारा 173 (8) के अधीन आगे अन्वेषण करने, किंतु नया अन्वेषण अथवा पुनर्अन्वेषण करने का नहीं, का अधिकार है। इसके अतिरिक्त, आगे अन्वेषण करने के लिए दंडाधिकारी से पूर्व अनुमति लेने की आज्ञा विधि नहीं देती है और आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद भी आगे अन्वेषण करना पुलिस का सांविधिक अधिकार है।*

4. वर्तमान मामले में मैं पाता हूँ कि याची के विरुद्ध मामले का अन्वेषण पूरा हो चुका था जहाँ तक आयुध अधिनियम के अधीन अभिकथन का संबंध है किंतु अन्य अपराधों के लिए अन्वेषण लंबित दर्शाया गया था जिस पर विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ आई॰/सी॰, राँची ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167 (2) के अधीन उसकी जमानत के लिए याची की याचिका को अस्वीकार करते हुए अपने निष्कर्ष में विस्तारपूर्वक विचार किया है।

5. इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि जमानत याचिका दाखिल करने के लिए धारा 167 (2) के अधीन प्रोद्भूत अधिकार अभियुक्त का अजेय अधिकार है यदि सांविधिक प्रावधान के मुताबिक 60/90 दिनों के भीतर पुलिस रिपोर्ट दाखिल नहीं किया जा सका था फिर भी मैं पाता हूँ और संप्रेक्षित करता हूँ कि अन्य अपराधों, जिसमें मंजूरी की आवश्यकता थी, के लिए याची के विरुद्ध अन्वेषण लंबित दर्शाते हुए जब आयुध अधिनियम के अधीन अभिकथित अपराध के लिए मामले का अन्वेषण पूरा करने के बाद 60 दिनों के भीतर आरोप-पत्र दाखिल कर दिया गया था, तब याची की याचिका को अस्वीकार करने में अवर न्यायालय न्यायोचित थे। गुणागुण रहित होने के कारण यह याचिका खारिज की जाती है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

दिल्ली क्लॉथ एंड जेनरल मिल्स कं॰ लि॰ एवं एक अन्य

बनाम

राम अवतार भल्ला एवं एक अन्य

AFAD Nos. 387 of 2004 with I.A. No. 1706 of 2011. Decided on 24th June, 2011.

बेदखली वाद सं॰ 56 वर्ष 1990 में मुंसिफ, राँची द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 29.1.2003 और दिनांक 7.2.2003 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत होते टाइटल अपील सं॰ 78 वर्ष 2003 में अपर न्यायिक कमिश्नर (एफ॰ टी॰ सी॰-III), राँची द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 14.5.2004 और दिनांक 26.5.2004 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध।

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XLI, नियम 27—अतिरिक्त साक्ष्य—अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन केवल तब अनुज्ञात किया जा सकता है जब साक्ष्य जानकारी में नहीं हो अथवा सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बाद भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका था—अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने के लिए अपीलार्थीगण द्वारा इच्छित पत्रों और बैंक ड्राफ्टों को पहले ही उनके द्वारा अवर न्यायालय में दाखिल किया गया था किंतु साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया था—यह नहीं कहा जा सकता है कि उक्त दस्तावेज उनकी जानकारी में नहीं थे—उक्त दस्तावेजों को अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थीगण को अनुमति देना विधिपूर्ण नहीं है। (पैरा 11)

(ख) बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 11 (1) (c)—किराया के भुगतान के व्यतिक्रम और सद्भावपूर्ण निजी आवश्यकता के आधार पर बेदखली डिक्री—सांविधिक अवधि के भीतर तीन माह का किराया नहीं दिया गया था—निजी आवश्यकता, जैसा वादपत्र में कथन किया गया है, पश्चातवर्ती घटनाओं द्वारा निर्वापित नहीं होती है—अपील खारिज। (पैराएँ 15 से 23)

निर्णयज विधि.—AIR 2008 SC 579; 2006 (4) PLJR 54 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.—M/s P.K. Sinha, A.K. Sahani, For the Appellants; M/s P.K. Prasad, Rohit Roy, For the Opp. Parties.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.—यह द्वितीय अपील टाइटल अपील सं॰ 78 वर्ष 2003 में अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ॰ टी॰ सी॰ III, राँची द्वारा पारित दिनांक 14.5.2004 के उस निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने बेदखली वाद सं॰ 56 वर्ष 1990 में विद्वान मुंसिफ, राँची के क्रमशः दिनांक 29.1.2003 और 7.2.2003 के निर्णय और डिक्री को संपुष्ट किया था और अपील खारिज कर दिया था।

2. मामले के तथ्य संक्षिप्त हैं। स्वीकृत रूप से अपीलार्थीगण वाद परिसर के किराएदार हैं जिसके विवरण को वाद पत्र की अनुसूची में वर्णित किया गया है। यह अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थीगण ने दिनांक 1 अप्रिल, 1988 से किराया का भुगतान करने में व्यतिक्रम किया। वादपत्र में यह भी कथित किया गया है कि वादीगण/प्रत्यर्थीगण को वाद परिसर की आवश्यकता है क्योंकि वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 का पुत्र अर्थात् रमेश भल्ला वाद परिसर में बिजली उपकरणों का दुकान खोलना चाहता है। तद्नुसार, वादीगण/प्रत्यर्थीगण ने व्यतिक्रम के आधार पर और निजी आवश्यकता के आधार पर अपीलार्थीगण के बेदखली के लिए प्रार्थना किया।

3. अपीलार्थीगण/प्रतिवादीगण ने लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया। उन्होंने प्रतिवाद किया कि दिनांक 1 अप्रिल, 1988 से लेकर जुलाई, 1988 तक का किराया बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से वादीगण/प्रत्यर्थीगण के पता पर भेजा गया था किंतु उन्होंने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। आगे कथित किया गया है कि तत्पश्चात अपीलार्थीगण ने अगस्त, 1988 में मनीआर्डर के माध्यम से उक्त अवधि का किराया भेजा जिसे भी स्वीकार करने से वादीगण/प्रत्यर्थीगण ने इनकार कर दिया। यह कथित किया गया है कि तत्पश्चात्, अपीलार्थीगण ने सदैव पश्चातवर्ती माहों का किराया मनीआर्डर के माध्यम से भेजा किन्तु इन्हें भी वादीगण/प्रत्यर्थीगण द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया था कि अपीलार्थीगण बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 (इसमें

इसके बाद बी० बी० सी० अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) के अर्थ के अंतर्गत व्यतिक्रमी नहीं है। अत: व्यतिक्रम के आधार पर उनको बेदखल नहीं किया जा सकता है। आगे कथित किया गया है कि रमेश भल्ला कोलकाता और पटना में व्यवसाय कर रहा है। वह बेरोजगार नहीं है। आगे कथित किया गया है कि हिंदुस्तान बिल्डिंग, जिसमें वाद परिसर अवस्थित है, पाँच मंजिला भवन है और उक्त भवन में अनेक दुकान खाली है जिसमें वादीगण/प्रत्यर्थीगण का पुत्र बिजली की दुकान खोल सकता है यदि वह ऐसा चाहता है। निवेदन किया गया है कि वस्तुत: वर्तमान वाद असद्भावपूर्व आशय के साथ दाखिल किया गया है क्योंकि किराया बढ़ाए जाने के लिए किराया नियंत्रक के समक्ष बी० बी० सी० अधिनियम की धारा 5 के अधीन वादीगण/अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल याचिका खारिज कर दी गयी है। तद्नुसार, यह कथित किया गया है कि वादीगण/प्रत्यर्थीगण को वाद परिसर की निजी आवश्यकता नहीं है और इस आधार पर भी अपीलार्थीगण को बेदखल नहीं किया जा सकता है।

4. यह प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों ने अपने मामले के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया है। तब प्रतीत होता है कि विद्वान मुंसिफ ने दिनांक 29.1.2003 के अपने निर्णय के तहत यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अपीलार्थीगण ने दिनांक 1 अप्रिल, 1988 से और इसके आगे किराया का भुगतान करने में व्यतिक्रम किया और वादीगण/प्रत्यर्थीगण के पुत्र को निजी आवश्यकता के लिए वाद परिसर की आवश्यकता थी, वाद डिक्री किया। पूर्वोक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादी ने अपील अर्थात् टाइटल अपील सं० 78 वर्ष 2003 दाखिल किया और उक्त अपील को दिनांक 14.5.2004 के निर्णय के तहत खारिज कर दिया गया था जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

5. इस अपील को विधि के निम्नलिखित सारवान प्रश्नों पर ग्रहण किया गया है:–

(i) क्या दस्तावेजी साक्ष्यों, प्रदर्शों 'डी०', 'डी०/1' और प्रदर्श एच० श्रृंखला पर विचार नहीं किए जाने के कारण व्यतिक्रम पर विद्वान अवर न्यायालयों का निष्कर्ष दूषित हो गया है?

(ii) क्या विद्वान अवर न्यायालयों ने इस पर विचार और चर्चा नहीं करने में गंभीर गलती की है कि क्या उसी भवन में अन्य खाली वास सुविधाएँ मकानमालिक की जरूरत को संतुष्ट करने के लिए उपयुक्त नहीं थे और वाद परिसर की आवश्यकता सद्भावपूर्व और सद्विश्वास में थी और अभिकथित आवश्यकता वादी की इच्छा मात्र नहीं थी?

6. यह उल्लेखनीय है कि इस मामले की अंतिम सुनवाई के क्रम में अपीलार्थी ने अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 27 सह-पठित धारा 51 के अधीन आवेदन दाखिल किया है। उक्त आवेदन का प्रत्युत्तर भी दाखिल किया गया था। अत: इस अपील में विरचित विधि के सारवान प्रश्नों को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर होने के पहले मैं पूर्वोक्त अंतर्वर्ती आवेदन को विनिश्चित करना समुचित समझता हूँ। पूर्वोक्त अंतर्वर्ती आवेदन द्वारा, अपीलार्थीगण दिनांकों 30.4.1988, 8.5.1988 और 19.6.1988 के पत्रों को अभिलेख पर लाना चाहते हैं। वे हरदेव दास भल्ला के पक्ष में दिनांकों 13.4.1988, 5.6.1988 और 15.7.1988 को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा जारी 500/- रुपया प्रत्येक के तीन बैंक ड्राफ्टों की छाया प्रतिलिपियों को भी अभिलेख पर लाना चाहते हैं। इस आवेदन के जरिए, अपीलार्थीगण ने आइ० ए० के परिशिष्ट-3 को साक्ष्य के रूप में अभिलेख पर लाने के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा किसी अजय मारु ने हिन्दुस्तान बिल्डिंग, मेन रोड, राँची में रामअवतार भल्ला के स्वामित्व वाले एक नए स्थापन अर्थात्, लाइटिंग स्टूडियो हिन्द को खोलने के लिए निमंत्रण दिया था।

7. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी० के० सिन्हा द्वारा निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त तीनों पत्रों और ड्राफ्टों को दस्तावेजों की सूची के साथ अपीलार्थीगण द्वारा मुंसिफ के न्यायालय में दाखिल किया

गया था। आगे निवेदन किया गया है कि उक्त दस्तावेजों को अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि वर्तमान मामले में न्याय करने के लिए ये आवश्यक हैं।

8. वादीगण/प्रत्यर्थीगण के लिए उपस्थित वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद निवेदन करते हैं कि आदेश XLI, नियम 27 के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान के मुताबिक, अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए अपीलार्थीगण को मामला निर्मित करने की आवश्यकता है। यह निवेदन किया गया है कि यदि अपीलार्थीगण यह दर्शाने में सक्षम होते हैं कि आदेश XLI नियम 27 (1) (aa) में उल्लिखित अवयवों और पुरोभाव्य शर्तों को संतुष्ट किया गया है, केवल तब उनके द्वारा की गयी प्रार्थना अनुज्ञात की जा सकती है। वर्तमान मामले में, यह निवेदन किया गया है कि आदेश XLI नियम 27 (1) (aa) के अधीन उल्लिखित अवयवों और पुरोभाव्य शर्तों को पूरा नहीं किया गया है, अत: पूर्वोक्त आवेदन को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

9. आदेश XLI, नियम 27 के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान निम्नलिखित हैं:–

*"27. **अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य का पेश किया जाना**.–(1) अपील के पक्षकार अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य चाहे वह मौखिक हो या दस्तावेजी, पेश करने के हकदार नहीं होंगे किन्तु यदि–*

(a) उस न्यायालय ने जिसकी डिक्री की अपील की गई है, ऐसा साक्ष्य ग्रहण करने से इन्कार कर दिया है जो ग्रहण किया जाना चाहिए था, अथवा

[(aa) वह पक्षकार जो अतिरिक्त साक्ष्य पेश करना चाहता है यह सिद्ध कर देता है कि वह सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बावजूद ऐसे साक्ष्य की जानकारी नहीं रखता था या उसे उस समय पेश नहीं कर सकता था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील की गई है, अथवा]

(b) अपील न्यायालय किसी दस्तावेज के पेश किए जाने की या किसी साक्षी की परीक्षा किए जाने की अपेक्षा या तो स्वयं निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए या किसी अन्य सारवान हेतुक के लिए करे, तो अपील न्यायालय ऐसे साक्ष्य का लिया जाना या दस्तावेज का पेश किया जाना या साक्षी का परीक्षा किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा।

(2) जहां कहीं अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने के लिए अपील न्यायालय अनुज्ञा दे देता है वहां न्यायालय ऐसे साक्ष्य के ग्रहण किए जाने के कारणों को लेखबद्ध करेगा।"

10. इस प्रकार, पूर्वोक्त प्रावधानों के सरल पठन पर स्पष्ट है कि यदि अपीलार्थी दर्शाता है कि सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बाद भी साक्ष्य उसकी जानकारी में नहीं थे अथवा सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बाद भी वह इन्हें विचारण न्यायालय में प्रस्तुत नहीं कर सका था, केवल तब अतिरिक्त साक्ष्य के लिए उसका आवेदन अनुज्ञात किया जा सकता है।

11. के॰ आर॰ मोहन रेड्डी बनाम मेसर्स नेटवर्क आई॰ एन॰ सी॰, AIR 2008 SC 579, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 15 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"हमारे मत में, उच्च न्यायालय सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 27 के प्रावधानों को इसके सही परिप्रेक्ष्य में लागू करने में विफल रहा। आदेश XLI के नियम 27 के उपनियम (1) के खंड (a), (aa) और (b) तीन भिन्न स्थितियों को निर्दिष्ट करते हैं। उनके अधीन किसी आदेश को पारित करने की अपीलीय न्यायालय की शक्ति सीमित है। उसके अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अपीलीय न्यायालय को इस निष्कर्ष पर आना होगा कि उसके अधीन संगणित एक अथवा अन्य शर्तों को संतुष्ट किया गया है। अच्छा कारण भी दर्शाना होगा कि साक्ष्य को विचारण न्यायालय में प्रस्तुत क्यों नहीं किया गया।"

वर्तमान मामले में, यह स्वीकृत स्थिति है कि अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने के लिए अपीलार्थीगण द्वारा इच्छित तीन पत्रों और तीन बैंक ड्राफ्टों को उनके द्वारा पहले ही अवर न्यायालय में दाखिल किया गया है किंतु उसके बावजूद, उन्हें अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि उक्त दस्तावेज उनकी जानकारी में नहीं थे। आगे यह प्रतीत होता है कि उन्होंने डिक्री किए जाने के पहले विचारण न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में पूर्वोक्त दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए सम्यक् तत्परता का प्रयोग नहीं किया है। उक्त परिस्थिति के अधीन, इस चरण पर अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में उक्त दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थीगण को अनुमति देना विधिपूर्ण नहीं है। उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं आई॰ ए॰ सं॰ 1706 वर्ष 2011 में गुणागुण नहीं पाता हूँ और तद्नुसार इसे खारिज करता हूँ।

12. <u>विधि का सारवान प्रथम प्रश्न</u>

अब, मैं इस अपील में विरचित विधि के प्रथम सारवान प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हो रहा हूँ। अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ सिन्हा द्वारा निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालयों ने प्रदर्शों 'डी॰', 'डी॰/1' और प्रदर्श 'एच॰ श्रृंखला' पर विचार नहीं किया है जो दर्शाता है कि अप्रिल, मई और जून, 1988 के माहों का किराया बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से भेजा गया था जिसे स्वीकार करने से प्रतिवादीगण ने इनकार कर दिया। यह निवेदन किया गया है कि बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 11(1)(d) अनुध्यात करती है कि यदि दो माह के किराया का भुगतान नहीं किया गया है अथवा वैध रूप से भेजा नहीं गया है, केवल तब यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि किराएदार के पास दो माह का किराया बकाया है। यह निवेदन किया गया है कि प्रदर्श 'D/1', जो अपीलार्थी सं॰ 1 के मुख्य कार्यालय में रखे गए किराया रजिस्टर का उद्धरण है, दर्शाता है कि अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया क्रमश: बैंक ड्राफ्ट सं॰ 264242 दिनांक 13.4.1988; बैंक ड्राफ्ट सं॰ 264333 दिनांक 1.6.1988 और बैंक ड्राफ्ट सं॰ 264396 दिनांक 15.6.1988 के तहत भेजा गया था। वह आगे निवेदन करते हैं कि प्रदर्श 'एच॰ श्रृंखला' लिफाफे हैं जिनमें पूर्वोक्त ड्राफ्टों को भेजा गया था किंतु इन्हें डाकियों ब॰ सा॰ 3 और 4 द्वारा किए गए इनकार के पृष्ठांकन के साथ अपीलार्थीगण द्वारा लौटा दिया गया था। यह निवेदन किया गया है कि उक्त इनकार के बाद अपीलार्थीगण ने स्वयं अगस्त, 1988 माह में तीन माहों के लिए मनीआर्डर भेजा था जिन्हें भी लेने से इनकार कर दिया गया था। यह निवेदन किया गया है कि मामले के इस पहलू पर अवर न्यायालयों द्वारा विचार नहीं किया गया है और इसलिए, व्यतिक्रम के बिंदु पर अवर न्यायालयों द्वारा दिए गए निष्कर्ष को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

13. वादीगण/प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया कि प्रदर्श-D के परिशीलन से यह स्पष्ट नहीं है कि उक्त ड्राफ्टों को कब भेजा गया था और किसके पक्ष में उक्त ड्राफ्टों को तैयार किया गया था। प्रदर्श-D में उक्त ड्राफ्टों की केवल संख्या और तिथियों को दिया गया था। उक्त प्रदर्श-D में भी फॉरवर्डिंग पत्रों के संख्या को उल्लिखित नहीं किया गया है। प्रदर्श-D से यह भी प्रतीत नहीं होता है कि उक्त ड्राफ्टों को किस तिथि को भेजा गया था क्योंकि रजिस्टर के उक्त उद्धरण में यद्यपि ड्राफ्टों की तिथियों को उल्लिखित किया गया था किंतु इसको भेजे जाने की तिथियों को नहीं दिया गया था। अत:, प्रदर्श-D से यह सिद्ध नहीं होता है कि वस्तुत: पूर्वोक्त ड्राफ्टों को भेजा गया था या नहीं। तब निवेदन किया गया है कि प्रदर्श 'एच॰ श्रृंखला' के परिशीलन से स्पष्ट है कि इस पर कोई पता नहीं है। इस प्रकार, तर्कपूर्ण साक्ष्य देकर प्रत्यर्थीगण ने सिद्ध नहीं किया था कि उक्त ड्राफ्टों को प्रदर्श 'एच॰ श्रृंखला' के माध्यम से भेजा गया था। यह निवेदन किया गया है कि ब॰ सा॰ 3 और 4 ने भी लिफाफों (प्रदर्श-एच॰ श्रृंखला) को देखने के बाद स्पष्ट रूप से कथन किया था कि वे नहीं कह सकते थे कि किस पता पर उक्त पत्रों को भेजा गया था। निवेदन किया गया है कि ब॰ सा॰ 4 ने यह भी कथन किया था कि वह नहीं कह सकता था कि उक्त पत्रों को कब भेजा गया था। श्री पी॰ के॰ प्रसाद द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि ब॰ सा॰ 8, जिसने प्रदर्श 'D' को सिद्ध किया है, डी॰ सी॰ एम॰ नयी दिल्ली का अधिकारी था और उसने अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 9 पर कथन किया कि प्रतिवादीगण

ने मार्च, 1988 माह का किराया बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से भेजा था किंतु वादीगण ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। ब॰ सा॰ 8 ने कहीं भी यह कथन नहीं किया कि प्रतिवादीगण ने अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से भेजा था जिसे लेने से प्रति वादीगण ने इनकार कर दिया। वह निवेदन करते हैं कि ब॰ सा॰, 5, जो इस मामले में प्रतिवादी सं॰ 2 है, ने भी ऐसा कथन नहीं किया है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि वस्तुत: यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि समय के किसी बिंदु पर अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से भेजा गया था जिसे लेने से वादीगण/प्रत्यर्थीगण ने इनकार कर दिया था। निवेदन किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रदर्शों 'D' और 'H' पर विचार किया है और निष्कर्ष दिया था कि लिफाफों H श्रृंखला के परिशीलन से यह स्पष्ट नहीं है कि इन्हें किस पता पर भेजा गया था। जहाँ तक प्रदर्श 'D' का संबंध है, इस पर भी विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और इसने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया है क्योंकि इसे प्रतिवादी/अपीलार्थी के कार्यालय में तैयार किया गया था और रखा गया था और इसलिए इसे कोई विश्वसनीयता प्रदान नहीं की जा सकती थी। निवेदन किया गया है कि विद्वान प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख का परिशीलन करने के बाद कथन किया था कि विद्वान मुंसिफ, राँची ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिवादीगण किराया के भुगतान में व्यतिक्रमी हैं। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि दोनों अवर न्यायालय साक्ष्य पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आए कि अपीलार्थीगण/प्रतिवादीगण किराये के भुगतान में व्यतिक्रमी हैं और वे बेदखल किए जाने के दायी हैं।

14. निवेदनों को सुनने के बाद, मैंने प्रदर्शों–D D/1 और एच॰ श्रृंखला का परिशीलन किया है। प्रदर्श D के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि यह डी॰ सी॰ एम॰ कंपनी के किराया रजिस्टर का उद्धरण है। प्रासंगिक पृष्ठ के ऊपर हरदेव दास भल्ला का पता उल्लिखित है। तब यह प्रतीत होता है कि अप्रिल, मई और जून माह के लिए क्रमश: दिनांक 13.4.1988, 1.6.1988 और 15.6.1988 को सं॰ 264242, 264333 और 464396 वाले ड्राफ्टों को तैयार किया गया था। किंतु प्रदर्श 'D' के परिशीलन से यह स्पष्ट नहीं है कि इन्हें कब भेजा गया था। न ही रसीद का पोस्टल नंबर इस पर उल्लिखित है। अत: प्रदर्श 'D' में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अप्रिल, मई और जून, 1988 के माहों का किराया पूर्वोक्त ड्राफ्टों के माध्यम से भेजा गया था।

15. धारा 11, (1)(d) के मुताबिक अगले माह जिसके लिए किराया भुगतान योग्य है, का किराया पिछले माह के अंतिम दिन तक वैध रूप से भेज दिए जाने की आवश्यकता है। अत:, निर्णायक चीज है किराया भेजे जाने की तिथि, न कि ड्राफ्ट तैयार किए जाने की तिथि। जैसा ऊपर गौर किया गया है, प्रदर्श 'D' नहीं दर्शाता है कि कब पूर्वोक्त ड्राफ्टों को भेजा अथवा/और प्रेषित किया गया था। अत: प्रदर्श 'D' से स्पष्ट नहीं है कि ड्राफ्ट भेजा गया है या नहीं। स्वीकृत रूप से, प्रश्नगत विवाद्यक को विनिश्चित करने के लिए प्रदर्श 'D/1' की कोई प्रासंगिकता नहीं है क्योंकि यह वाद दाखिल किए जाने के बाद किराया से संबंधित है। जहाँ तक प्रदर्शों–'H', 'H/1' और 'H 2' का संबंध है, ये तीन लिफाफे हैं जिन पर डाकिया का पृष्ठांकन है कि प्रेषिती ने इन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया। किंतु उक्त लिफाफों के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि उन पर कोई पता नहीं है। अत: प्रदर्श 'H', श्रृंखला से स्पष्ट नहीं है कि उक्त लिफाफों के वादीगण/प्रत्यर्थीगण को भेजा गया था अथवा किसी अन्य को। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि ब॰ सा॰ 3 और 4, जो डाकिया हैं, ने लिफाफों को देखने के बाद स्पष्ट रूप से कथन किया कि वे नहीं कह सकते थे कि उक्त लिफाफों को किन पतों पर भेजा गया था। अत: किसी प्रमाण की अनुपस्थिति में कि उक्त लिफाफों को वादीगण/प्रत्यर्थीगण को भेजा गया था और ये अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया अंतर्विष्ट करते थे, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि वादीगण/प्रत्यर्थीगण को अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया भेजा गया था जिसे स्वीकार करने से उन्होंने इनकार कर दिया।

16. इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि ब॰ सा॰ 8, जो डी॰ सी॰ एम॰ का अधिकारी है और जिसने प्रदर्श 'D' सिद्ध किया, ने अपने मौखिक साक्ष्य में केवल यह कथन किया था कि प्रतिवादीगण ने मार्च, 1988 का ड्राफ्ट भेजा था जिसे स्वीकार करने से वादीगण ने इनकार कर दिया। इस गवाह ने अपने साक्ष्य में कहीं नहीं यह कहा था कि अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया भी ड्राफ्ट के माध्यम से भेजा गया था। जिसे लेने से वादीगण/प्रत्यर्थीगण ने इनकार कर दिया। ब॰ सा॰ 5 जो राँची स्थित डी॰ सी॰ एम॰ शो रूम का प्रबंधक है ने भी इस तथ्य का कथन नहीं किया था।

17. उक्त परिस्थिति के अधीन, प्रदर्शों–'D', 'D/1' और H श्रृंखला पर विचार करने के बाद भी अपीलार्थीगण यह सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुए हैं कि अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया सांविधिक समय के भीतर भेजा गया था और वादीगण द्वारा इन्हें लेने से इनकार किया गया था। अत: अवर न्यायालयों के निष्कर्ष कि अप्रिल, मई और जून, 1988 माह का किराया बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम के अधीन नियत सांविधिक समय के भीतर नहीं भेजा गया है और अपीलार्थीगण व्यतिक्रमी हैं, में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अत: यहाँ ऊपर विरचित विधि के प्रथम सारवान प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया जाता है।

18. <u>विधि का द्वितीय सारवान प्रश्न</u>

वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ सिन्हा द्वारा निवेदन किया गया है कि यह स्वीकृत अवस्था है कि हिन्दुस्तान बिल्डिंग पाँच मंजिला भवन है। वह आगे निवेदन करते हैं कि साक्ष्य में आया है कि उक्त भवन के तीसरे, चौथे और पाँचवें तल पर कुछ दुकानें खाली हैं। अत: यदि बिजली की दुकान खोलने के लिए वादीगण को वस्तुत: विवादित परिसर की आवश्यकता है, वे पूर्वोक्त खाली दुकानों में ऐसा कर सकते हैं। वह आगे निवेदन करते हैं कि वस्तुत: वादीगण को वाद परिसर की आवश्यकता नहीं है और उन्होंने वर्तमान वाद केवल इसलिए दाखिल किया है क्योंकि वे किराया बढ़ाए जाने के लिए किराया नियंत्रण के समक्ष दाखिल मामला हार चुके थे। अत:, निजी आवश्यकता के आधार पर प्रश्नगत वाद डिक्री नहीं किया जा सकता है।

19. दूसरी ओर, श्री पी॰ के॰ प्रसाद निवेदन करते हैं कि वादीगण/प्रत्यर्थीगण थोक एवं खुदरा दोनों प्रकार का बिजली दुकान खोलना चाहते हैं और मेन रोड, राँची पर वाद परिसर का भूतल उनके व्यवसाय के लिए ज्यादा उपयुक्त है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि वादीगण ने प्रत्यर्थीगण (ब॰ सा॰ 5) को चौथे तल पर अपना व्यवसाय ले जाने का प्रस्ताव दिया किंतु उसने इस आधार पर प्रस्ताव स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि चौथे तल पर अवस्थित दुकान उनके व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं है। श्री पी॰ के॰ प्रसाद आगे निवेदन करते हैं कि अपीलार्थीगण का अभिकथन कि वर्तमान वाद मासिक किराया बढ़ाने के लिए असद्भावपूर्व आशय के साथ दाखिल किया गया है, सही नहीं है क्योंकि स्वयं वादीगण ने प्रतिवादीगण को अपना दुकान चौथे तल पर ले जाने का प्रस्ताव दिया है जिसे स्वीकार करने से प्रतिवादीगण ने इनकार कर दिया। निवेदन किया गया है कि अवर न्यायालयों ने इन समस्त पहलूओं पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर आया कि व्यवसाय शुरू करने के लिए वादीगण को वाद परिसर की आवश्यकता है।

20. निवेदनों को सुनने पर, मैंने आक्षेपित निर्णयों का परिशीलन किया है। दोनों अवर न्यायालयों के निर्णयों के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद, अवर न्यायालयों ने निष्कर्ष दिया था कि उसी भवन में खाली वास सुविधा उस व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं थी जो वादी का पुत्र करना चाहता है। दोनों अवर न्यायालयों ने कथन किया था कि ब॰ सा॰ 5, जो राँची स्थित डी॰ सी॰ एम॰ शो रुम का प्रबंधक है, ने अपना व्यवसाय चौथे तल पर ले जाने से इनकार कर दिया है क्योंकि उक्त दुकान खुदरा दुकान के लिए उपयुक्त नहीं है। तद्नुसार अवर न्यायालयों ने निष्कर्षित किया कि यदि उक्त दुकान अपीलार्थीगण/प्रतिवादीगण के व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं है, तब यह कैसे

अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि ये वादीगण/प्रत्यर्थीगण के व्यवसाय के लिए उपयुक्त है। दोनों अवर न्यायालयों का पूर्वोक्त निष्कर्ष **पुष्कर सिंह बनाम अनसूईया,** 2006 (4) PLJR 54 (SC) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पूर्ण समर्थन पाता है। अत:, मैं अवर न्यायालयों के पूर्वोक्त निष्कर्षों में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ।

21. वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ सिन्हा निवेदन करते हैं कि इस अपील के लंबित रहने के दौरान वादीगण/प्रत्यर्थीगण ने भवन के चौथे तल पर हिंद इलेक्ट्रिकल के नाम से बिजली दुकान खोल लिया था जो आई॰ ए॰ सं॰ 1706 वर्ष 2011 के परिशिष्ट 3 से स्पष्ट होगा। वह निवेदन करते हैं कि उक्त घटना पश्चातवर्ती घटना है, अत:, इस पर विचार किया जा सकता है। निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त पश्चातवर्ती घटना की दृष्टि में वादीगण की निजी आवश्यकता, यदि है, निर्वापित हो गयी है। अत:, निजी आवश्यकता के आधार पर भी अपीलार्थीगण को बेदखल नहीं किया जा सकता है।

22. पूर्वोक्त परिशिष्ट-3 के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि किसी अजय मारु ने मेन रोड, राँची में रामअवतार भल्ला और श्री गोविंद भल्ला का नया स्थापन अर्थात् लाइटिंग स्टूडियो हिन्द खोलने का निमंत्रण दिया था। इस निमंत्रण में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि उक्त स्थापन वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पुत्र रमेश भल्ला द्वारा खोला गया था। यह उल्लेखनीय है कि वादपत्र में उल्लिखित किया गया है कि वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 का पुत्र उक्त परिसर में बिजली की दुकान खोलना चाहता है और उक्त प्रयोजन से वादीगण प्रत्यर्थीगण को वाद परिसर खाली करने के लिए कहते हैं। चूँकि लाइटिंग स्टूडियो हिन्द के स्वामी वादी सं॰ 1 और 2 है, जैसा परिशिष्ट-3 से प्रतीत होता है, और न कि वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 का पुत्र रमेश भल्ला, मेरे दृष्टिकोण में, वाद पत्र में कथित निजी आवश्यकता निर्वापित नहीं हुई है। अत:, पश्चातवर्ती घटना, जो इस अपील के लंबित रहने के दौरान हुई, का कोई प्रभाव अवर न्यायालयों के आक्षेपित निर्णय और डिक्री पर नहीं है।

23. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, विधि के द्वितीय सारवान प्रश्न का उत्तर भी अपीलार्थीगण के विरुद्ध दिया जाता है।

24. विधि के पूर्वोक्त दो सारवान प्रश्नों पर मेरे निष्कर्ष की दृष्टि में, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ, तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अर्चना कुमारी एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1630 of 2009. Decided on 11th May, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A/34 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3/4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—क्रूरता—दहेज की मांग—संज्ञान—याचिका के लंबित रहने के दौरान पक्षों के बीच सुलह—पति स्थायी निर्वाह-व्यय के रूप में पत्नी को 4,75,000/- रुपया देगा जो बदले में दांडिक मामला वापस ले लेगी—पक्ष आपसी सहमति के साथ तलाक याचिका दायर करने जा रहे हैं—याचीगण के दांडिक अभियोजन

की अनुमति देना समुचित अथवा सहायक नहीं होगा–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5, 8, 10, 12, 13 और 14)

निर्णयज विधि.–(1988)1 SCC 692; (2003)4 SCC 675—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Kalyan Roy, Ashok Kr., For the Petitioners; Mr. Nilesh Kumar, For the Opp. Party No. 2; Mr. D.K. Prasad, For the State.

आदेश

याचीगण ने दिनांक 17.1.2009 के आदेश जिसके द्वारा नामकुम पी॰ एस॰ केस सं॰ 71 वर्ष 2008, जी॰ आर॰ सं॰ 1445 वर्ष 2008 के तत्सम, में एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/34 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन भी उनके विरुद्ध अभिकथित अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित उनकी दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. सूचक शिवांगी उर्फ जूली अर्थात् वर्तमान विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने नोटिस प्राप्त करने पर वकालतनामा निष्पादित करके उपस्थिति दर्ज किया जिसका प्रतिनिधित्व श्री निलेश कुमार, अधिवक्ता के माध्यम से किया जा रहा है।

3. दिनांक 8.4.2011 के एक अन्य प्रति शपथ पत्र द्वारा पूरित, सूचक विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 और अभियुक्त याचीगण की ओर से एक संयुक्त सुलह याचिका दिनांक 28.3.2011 को दाखिल की गयी है। पुनः दिनांक 6.5.2011 को पक्षों की ओर से संयुक्त सुलह याचिका दाखिल की गयी है और समस्त तीनों याचिकाओं को **(2003)4 Supreme Court Cases 675** में प्रकाशित **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनिश्चित विधि की पृष्ठभूमि में पक्षों की ओर से प्रस्तावित सुलह के विवाद्यक पर विचार करने के लिए साथ-साथ लिया जा रहा है।

4. पुलिस के समक्ष सूचक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का अभियोजन मामला यह था कि उसका विवाह दिनांक 29.4.2007 को याची सं॰ 5 प्रभात रंजन पांडे के साथ हुआ था और विवाह के तुरन्त बाद उसके ससुराल वालों ने उसके विवाह के अवसर पर उसके माता-पिता द्वारा दिए गए समस्त उपहारों और गहनों को छीन लिया गया था। आगे अभिकथित किया गया है कि नियमित रूप से अभियुक्तगण द्वारा उस पर प्रहार किया जाता था और ऐसे प्रहार से कारित उपहतियों के उपचार के लिए वह डॉक्टर की सलाह लिया करती थी। ऐसे प्रहार का कारण नगद में दहेज की मांग को पूरा नहीं किया जाना था। अंततः, अभियुक्तगण द्वारा उसे उसके दांपत्यगृह से निकाल दिया गया था और कि उन्होंने उसके परिवार के सदस्यों पर भी प्रहार किया था। उसकी लिखित रिपोर्ट की प्रस्तुति पर याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/34 के अधीन नामकुम पी॰ एस॰ केस सं॰ 71 वर्ष 2008 दर्ज किया गया था।

5. दिनांक 28.3.2011 को दाखिल सूचक एवं अभियुक्तगण की ओर से दाखिल संयुक्त सुलह याचिका ने उपदर्शित किया कि इस दांडिक विविध याचिका के लंबित रहने के दौरान पक्षों ने सुलह कर लिया और उनमें से कोई भी मामले में अग्रसर होना नहीं चाहता था। सुलह निम्नलिखित निबंधनों में प्रस्तावित किया गया थाः

> *(a) कि सूचक का पति प्रभात रंजन पांडे बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से उसके स्थायी निर्वाह-भत्ता के मद में विपक्षी पक्षकार सं० 2 शिवांगी उर्फ जूली को 4,75,000/- रुपयों का भुगतान करेगा और इसकी प्राप्ति पर वह घोषणा करेगी कि उसके विरुद्ध आगे कोई बकाया नहीं है और अभियुक्तगण में से किसी के विरुद्ध उसका कोई दावा नहीं है।*

(b) कि सूचक शिवांगी उर्फ जूली संपूर्ण राशि की प्राप्ति पर दांडिक मामला नामकुम पी० एस० केस सं० 71 वर्ष 2008 वापस ले लेगी जो एस० डी० जे० एम०, राँची के न्यायालय के समक्ष लंबित एक अन्य मामला नामकुम पी० एस० केस सं० 113 वर्ष 2009 भी उसके द्वारा वापस ले लिया जाएगा जो श्री एस० के० उपाध्याय, न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची के न्यायालय में लम्बित है।

(c) कि दोनों पक्ष अपने-अपने मामले वापस ले लेंगे जिन्हें एक-दूसरे के विरुद्ध दाखिल किया गया था और वे आगे किसी मुकदमा में लिप्त नहीं होंगे।

(d) कि दोनों पक्षकार एक सप्ताह के भीतर प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, राँची के समक्ष पारस्परिक सम्मति से विवाह विच्छेद की एक संयुक्त याचिका दाखिल करेंगे।''

6. दिनांक 8.4.2011 को विपक्षी पक्षकार सं० 2 शिवांगी उर्फ जूली की ओर से पृथक शपथ पत्र दाखिल किया गया है। विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने शपथ पत्र में शपथ पर अपना हस्ताक्षर शिवांगी उर्फ पुष्पा कुमारी उपाध्याय के रूप में करते हुए कथन किया कि संयुक्त सुलह के निबंधनों और शर्तों के मुताबिक उसने पहले ही दो डिमांड ड्राफ्टों पहला 2,00,000/- रुपयों की राशि के लिए पुष्पा कुमारी उपाध्याय के पक्ष में एस० बी० आई० भवनाथपुर पर जारी दिनांक 25.3.2011 के डी० डी० सं० 015937 के तहत और दूसरा 2,75,000/- रुपयों की राशि के लिए पुष्पा कुमारी उपाध्याय के पक्ष में उसी बैंक पर जारी दिनांक 5.4.2011 के डी० डी० सं० 016327 के तहत, को स्वीकार कर लिया है। (डिमांड ड्राफ्टों की छाया प्रतिलिपि संलग्न है।) और एक सप्ताह के भीतर याची सं० 5 के साथ हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन तलाक याचिका दाखिल करने का वचन दिया है।

7. दिनांक 6.5.2011 को आई० ए० सं० 904 वर्ष 2011 के जरिए पक्षों की ओर से दाखिल तृतीय याचिका में सुलह के निबंधनों के समस्त तथ्यों को दोहराया गया है और यह स्वीकार किया गया था कि विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने अपनी संतुष्टि पर 4,75,000/- रु० की कुल राशि के दो डिमांड ड्राफ्टों को स्वीकार करके स्थायी निर्वाह-भत्ता पहले ही प्राप्त कर लिया है और उसने समस्त अन्य मामलों, जिन्हें उसने याचीगण के विरुद्ध दाखिल किया था जो विभिन्न न्यायालयों में लंबित है, को वापस लेने का वचन दिया है और कि उसने याची सं० 5 के साथ हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13B के अधीन याचिका दाखिल किया है। यह अंतर्वर्ती आवेदन उनके अपने-अपने अधिवक्ताओं द्वारा सम्यक् रूप से पहचाने गए, सूचक-विपक्षी पक्षकार सं० 2 शिवांगी उर्फ जूली उर्फ पुष्पा और अभियुक्त याचीगण द्वारा सम्यक् रूप से शपथ लिए गए शपथ पत्रों द्वारा समर्थित किया गया है।

8. अंतर्वर्ती आवेदन पर अंततः लाया गया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अभियुक्त याचीगण की ओर से दाखिल वर्तमान याचिका **बी० एस० जोशी के मामले (ऊपर)** की दृष्टि में उनके दांडिक अभियोजन को अभिखंडित करके अनुज्ञात की जा सकती है।

9. पक्षों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को सुना गया जिन्होंने यहाँ पर निर्दिष्ट समस्त तीन याचिकाओं में अंतर्विष्ट तथ्यों को निष्पक्षतः स्वीकार किया है।

10. माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे, (1988)1 SCC 692, में अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 482 के अधीन अभिखंडन की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को किसी विशेष लक्षण को विचार में लेने की छूट है जो किसी विशेष मामले में सामने आते हैं ताकि यह विचार किया जा सके कि क्या अभियोजन जारी रखने की अनुमति देना समीचीन और न्याय के हित में है। जहाँ, न्यायालय के मत में अंतिम दोषसिद्धि का अवसर क्षीण है और इसलिए दांडिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देकर कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा नहीं किए जाने

की संभावना नहीं है, न्यायालय मामले के विशेष तथ्यों को विचार में लेते हुए कार्यवाही अभिखंडित कर सकता है।

11. बी॰ एस॰ जोशी के मामले (ऊपर) में संप्रेक्षित किया गया था कि वैवाहिक विवादों के वास्तविक समाधान को प्रोत्साहित करने का कर्तव्य भार न्यायालय पर डाला गया है।

12. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि वर्तमान मामले में पक्षों के बीच सुलह खुशीपूर्वक दांपत्य जीवन व्यतीत करने की ओर ले जाने वाले समझौते पर आधारित नहीं है बल्कि वर्तमान मामले में पति और पत्नी ने आपसी सहमति द्वारा तलाक की डिक्री के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन याचिका दाखिल करने के लिए सहमत होते हुए स्थायी निर्वाह-भत्ता के प्रतिफल के विरुद्ध सदा-सदा के लिए अपने वैवाहिक संबंध का विच्छेद करके विवाद सुलझाया।

13. मामले के उस दृष्टिकोण में और **बी॰ एस॰ जोशी के मामले (ऊपर)** में अधिकथित सिद्धांतों पर विश्वास करते हुए अभियुक्तगण अर्थात् वर्तमान याचीगण के दांडिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देना समुचित नहीं होगा।

14. इन परिस्थितियों में, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, राँची के समक्ष लंबित नामकुम पी॰ एस॰ केस सं॰ 71 वर्ष 2008, जी॰ आर॰ सं॰ 1445 वर्ष 2008 के तत्सम, से उद्भूत होने वाले याचीगण (1) अर्चना कुमारी, (2) सुशांत शेखर पांडे उर्फ सुशांत शेखर, (3) पार्बती देवी, (4) शंकर पांडे और (5) प्रभात रंजन पांडे की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

अमर अहमद खान उर्फ अमर अहमद एवं अन्य

बनाम

शमीम अहमद खान उर्फ मो॰ शमीम खान एवं एक अन्य

AFAD No. 98 of 1998 (R). Decided on 7th July, 2011.

टी॰ एस॰ सं॰ 67 वर्ष 1984/43 वर्ष 1987 में सब-जज III, राँची द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 29.6.1989 और 4.7.1989 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत होने वाले टाइटल अपील सं॰ 76 वर्ष 1989 में अष्टम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 20.7.1998 और 27.7.1998 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध।

(क) मोहम्मडन विधि–उत्तराधिकार–इस्लामी विधि के अधीन, मृत मोहम्मडन की संपत्तियों के स्वामित्व की संयुक्तता की कोई अवधारणा नहीं है–मोहम्मडन उत्तराधिकारी अपने विनिर्दिष्ट हिस्सों के स्वतंत्र स्वामी है–उनका दायित्व संपदा में उनके हिस्से की सीमा तक अनुपातिक है–एक शेयरधारक को दूसरे शेयरधारक की संपत्ति अन्य संक्रामित करने का कोई अधिकार, टाइटल और हित नहीं है। (पैरा 10)

(ख) मोहम्मडन विधि–संपत्ति–अन्य संक्रामण–माता अपने अवयस्क संतानों की विधिक अभिभाविका नहीं है–उसे अपने अवयस्क संतानों के हितों को बेचने का कोई अधिकार नहीं है। (पैराएँ 11 एवं 18)

(ग) परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 3(1)—यदि परिसीमा के विवाद्यक पर जोर नहीं भी दिया जाता है, न्यायालय को मामले पर विचार करना होगा और आदेश पारित करना होगा अगर स्वयं वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है। (पैरा 16)

निर्णयज विधि.–AIR 1939 Nagpur 27; AIR 1977 Madras 215—Referred; (1990)4 SCC 672; AIR 1966 SC 792—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s V. Shivnath, Usha Srivastava, For the Appellants; Mr. S. Rahman, For the Respondents.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–यह अपील टाइटल अपील सं॰ 76 वर्ष 1989 में अष्टम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 20 जुलाई, 1989 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने टाइटल वाद सं॰ 67 वर्ष 1984/43 वर्ष 1987 में सब-जज III, राँची के दिनांक 29.6.1989 के निर्णय को मान्य ठहराया जिसके द्वारा संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद डिक्री किया गया था।

2. वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 का मामला यह है कि अपीलार्थीगण के पिता अर्थात् हाजी इमाम बख्श ने दिनांक 20.8.1975 को वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 के पक्ष में 11,750/- रुपयों के प्रतिफल के लिए भूमि के विक्रय के लिए करार निष्पादित किया था जिसका विवरण वाद पत्र की अनुसूची में दिया गया है। आगे कथित किया गया है कि करार के निष्पादन की तिथि पर अपीलार्थीगण के पिता को 8000/- रुपया का भुगतान अग्रिम के रूप में किया गया था। वादी द्वारा आगे कथन किया गया है कि करार के निष्पादन की तिथि पर वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 को वाद संपत्ति का कब्जा सौंप दिया गया था। तब कथित किया गया है कि दिनांक 16.9.1978 को अपीलार्थीगण के पिता ने वादी से 1000/- रुपया की राशि अतिरिक्त अग्रिम के रूप में लिया था और करार के पिछले भाग पर उस प्रभाव का पृष्ठांकन किया गया था और इस पर उसके द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किया गया था। कथित किया गया है कि वर्ष 1978 में अपीलार्थीगण के पिता अर्थात् हाजी इमाम बख्श की मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात वादी ने स्वयं के लिए और अपीलार्थीगण (प्रतिवादी सं॰ 2 से 4) की ओर से, क्योंकि माता होने के नाते वह अपीलार्थीगण की स्वाभाविक अभिभाविका थी, विक्रय विलेख निष्पादित और रजिस्टर्ड करने का अनुरोध प्रतिवादी सं॰ 1/प्रोफॉर्मा प्रत्यर्थी सं॰ 2 से किया। आगे कथित किया गया है कि अपीलार्थीगण की माता विभिन्न बहानों से विक्रय विलेख के निष्पादन से बचती रही, किंतु उसने दिनांक 17.5.1981 को 1000/- रुपयों का अतिरिक्त अग्रिम लिया और पुनः दिनांक 4.1.1983 को 1480/- रुपयों की राशि अग्रिम के रूप में ली गयी थी। आगे कथित किया गया है कि यद्यपि वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने दिनांक 20.8.1975 के करार के संबंध में अग्रिम के रूप में 11480/- रुपयों की कुल राशि का भुगतान किया था किंतु प्रतिवादीगण सक्षम प्राधिकारी से आवश्यक अनुमति प्राप्त करने के बाद विक्रय विलेख निष्पादित नहीं कर रहे हैं। कथित किया गया है कि वादी संविदा के अपने अंश का पालन करने के सदैव तैयार और इच्छुक थे किंतु अपीलार्थीगण और प्रतिवादी सं॰ 1 संविदा के अपने अंश का पालन करने से बच रहे थे। अतः संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद दाखिल किया गया।

3. अभिलेख से प्रकट होता है कि प्रोफॉर्मा प्रत्यर्थी सं॰ 2 जो अपीलार्थीगण की माता है और प्रतिवादी सं॰ 1 ने अवर न्यायालय में लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद नहीं किया है। अतः वाद एकपक्षीय रूप से उसके विरुद्ध अग्रसर हुआ। किंतु अपीलार्थीगण, जो वाद के संस्थापन के समय पर अवयस्क थे, ने न्यायालय द्वारा नियुक्त अपने वादार्थ संरक्षक के माध्यम से वाद का प्रतिवाद किया। लिखित कथन में, अपीलार्थीगण ने कथन किया कि वाद परिसीमा विधि द्वारा वर्जित है और यह पोषणीय नहीं है। यह भी कहा गया है कि अपीलार्थीगण के पिता ने कोई करार निष्पादित नहीं किया था जैसा वाद पत्र में अभिकथित किया गया है, और यदि कोई करार है, ऐसा करार कूटरचित और मनगढ़ंत दस्तावेज है। आगे कथित किया गया है कि उक्त करार पर हाजी इमाम बख्श का हस्ताक्षर नहीं है और ये कूटरचित हस्ताक्षर हैं। अपीलार्थीगण ने यह प्रतिवाद भी किया था कि हाजी इमाम बख्श और/अथवा उनकी माता (प्रतिवादी सं॰ 1) को कोई अग्रिम नहीं दिया गया था। यह भी कथित किया गया है कि मुस्लिम विधि के अधीन माता अवयस्क संतानों की विधिक अभिभाविका नहीं है और इसलिए प्रतिवादी सं॰ 1 अवयस्क

संतानों की संपत्तियों को अन्य संक्रांत नहीं कर सकती थी। तद्नुसार, कथित किया गया है कि वाद खारिज किए जाने का दायी है।

4. यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय में वादी/प्रत्यर्थी सं० 1 ने अपने मामले के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्य दिया था और अपीलार्थीगण ने मौखिक साक्ष्य दिया था। तब यह प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने वादी/प्रत्यर्थी सं० 1 के पक्ष में समस्त विवाद्यकों को विनिश्चित किया और वाद डिक्री किया। टाइटल अपील सं० 76 वर्ष 1989 दाखिल करके उक्त निर्णय और डिक्री को चुनौती दी गयी थी, जिसे अवर न्यायालय की डिक्री में कतिपय परिवर्तन के साथ खारिज कर दिया गया था। उसके विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल किया गया है।

5. इस अपील को विधि के निम्नलिखित सारवान प्रश्न पर ग्रहण किया गया है:–

''क्या स्व० हाजी इमाम बख्श, जिसने वादी/प्रत्यर्थी सं० 1 के पक्ष में विक्रय करार निष्पादित किया था, के अवयस्क संतान (अपीलार्थीगण) को उनकी विधवा माता (प्रत्यर्थी सं० 2) द्वारा अतिरिक्त अग्रिम के जरिए प्रतिफल धन के हिस्से की प्राप्ति द्वारा विधितः बाध्य किया जा सकता है ताकि उनके स्वर्गीय पिता द्वारा निष्पादित संविदा के विनिर्दिष्ट पालन में विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए दायी बनाया जा सके।''

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी० शिवनाथ द्वारा निवेदन किया गया है कि मुस्लिम विधि के अधीन माता अवयस्क संतानों की वैध अभिभाविका नहीं है। अत: अपने अवयस्क संतानों की संपत्ति को अन्यसंक्रांत करने का अधिकार उसे नहीं है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि अचल संपत्ति के अन्य संक्रामण के लिए अपने अवयस्क संतानों की ओर से प्रतिफल धन स्वीकार करने का अधिकार उसे नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण की माता द्वारा लिया गया अग्रिम और करार पर उसके द्वारा किया गया कोई पृष्ठांकन करार को पुनर्जीवित नहीं करेगा, जिसका अवसान पहले ही हो चुका था और जो अपीलार्थीगण के विरुद्ध अप्रवर्तनीय बन गया था। निवेदन किया गया है कि दोनों अवर न्यायालयों ने मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया है और वाद डिक्री कर दिया है, अत: अवर न्यायालयों के निर्णयों और डिक्री को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री शफीक रहमान ने निवेदन किया है कि मोहम्मडन विधि के अधीन मोहम्मडन की मृत्यु पर उसकी संपदा उसके उत्तराधिकारियों पर न्यागत होती है। आगे निवेदन किया गया है कि मोहम्मडन की मृत्यु पर उसके दायित्व भी उसके उत्तराधिकारियों पर न्यागत होते हैं और अपने हिस्सों की सीमा तक उक्त दायित्वों को उन्मोचित करने के लिए वे दायी हैं। निवेदन किया गया है कि मोहम्मडन की मृत्यु पर उसकी पत्नी और संतान मोहम्मडन विधि के अधीन प्रगणित हिस्से की सीमा तक उसकी संपत्तियों को विरासत में पाते हैं। अत:, निवेदन किया गया है कि हाजी इमाम बख्श की मृत्यु पर, करार (प्रदर्श 1/A) निष्पादित करके उसके द्वारा सृजित दायित्व का निर्वहन करना अपीलार्थीगण एवं उनकी माता प्रतिवादी/प्रत्यर्थी सं० 2 का संयुक्त दायित्व है। निवेदन किया गया है कि यद्यपि उक्त करार स्व० हाजी इमाम बख्श द्वारा दिनांक 20.8.1975 को निष्पादित किया गया था किंतु चूँकि सह–अंशधारी में से एक (प्रतिवादी सं० 1/ प्रत्यर्थी सं० 2) ने क्रमश: दिनांक 7.5.1981 और दिनांक 4.1.1983 को 1000/- रुपये और 1480/- रुपये का अग्रिम लेकर करार को अभिस्वीकृत किया था और करार के पृष्ठ भाग पर पृष्ठांकन भी किया था, उक्त करार अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रवर्तनीय बन जाता है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में इस न्यायालय के किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेखों और विषय पर प्रयोज्य विधि का परिशीलन किया है। **एन॰ के॰ मोहम्मद सुलेमान बनाम एन॰ सी॰ मोहम्मद इसमाइल, AIR 1966 SC 792,** में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों की पाँच सदस्यीय/पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि:–

''वसीयत किए बिना मृत मुस्लिम की संपदा उसकी मृत्यु होते ही उसके उत्तराधिकारियों पर मुस्लिम विधि के अधीन न्यागत होती है अर्थात् संपदा स्वीय विधि द्वारा आदेशित (ordained) हिस्सा के अनुपात में प्रत्येक उत्तराधिकारी में तुरन्त निहित होती है और प्रत्येक उत्तराधिकारी का हित पृथक और सुभिन्न होता है। स्वीय विधि के अधीन प्रत्येक उत्तराधिकारी संपदा में अपने हिस्से के अनुपात में कर्ज के हिस्सा की सीमा तक मृतक के कर्जों को चुकता करने का दायी है।''

सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त विधि के कोरे परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि मोहम्मडन की मृत्यु पर उसकी संपत्ति उसके उत्तराधिकारियों में पृथक रूप से उनके हिस्से, जिसके लिए वे स्वीय विधि के अधीन हकदार हैं, की सीमा तक तुरन्त न्यागत होती है। इस प्रकार मोहम्मडन की मृत्यु पर उसका प्रत्येक उत्तराधिकारी तुरन्त अपने हिस्से के अनुपात में संपत्ति का संपूर्ण स्वामी बन जाता है। अत: इस्लामी विधि के अधीन मृतक मोहम्मडन के संपत्तियों के स्वामित्व की संयुक्तता की कोइ अवधारणा नहीं है।

9. मुल्ला रचित मोहम्मडन विधि के सिद्धांत की धारा 43 प्रावधानित करती है कि:–

*''**कर्ज के उत्तराधिकारियों के दायित्व की सीमा.**–प्रत्येक उत्तराधिकारी अपने हिस्से के अनुपात में कर्जों के हिस्सा की सीमा तक मृतक के कर्जों के लिए दायी है।''*

10. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, स्पष्ट है कि मोहम्मडन उत्तराधिकारी अपने विनिर्दिष्ट हिस्सों के स्वतंत्र स्वामी हैं और उनका दायित्व भी संपदा में उनके हिस्सों की सीमा तक का अनुपातिक है। उक्त परिस्थिति के अधीन, एक हिस्सा धारक को दूसरे हिस्सा धारक की संपत्तियों को अन्य संक्रांत करने का कोई अधिकार, टाइटल और हित नहीं है।

11. यह सुनिश्चित है कि मोहम्मडन विधि के अधीन माता अपने अवयस्क संतानों की विधित: संरक्षिका नहीं है और इसलिए अचल संपत्ति में अपने अवयस्क संतानों के हित को बेचने का अधिकार उसे नहीं है और ऐसा संव्यवहार केवल शून्यकरणीय नहीं बल्कि शून्य होगा। इस संबंध में **AIR 1939 नागपुर 27** और **AIR 1977 मद्रास 275** को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

12. अत: यदि माता अपने अवयस्क संतानों की विधिक संरक्षिका नहीं है, तब अपने मृत पति की संपत्ति का एक अंश विरासत में पाकर, मोहम्मडन विधि के अधीन, वह अचल संपत्ति, जो उसके अवयस्क संतानों के हिस्सों में आयी है, को अन्य संक्रांत करने की हकदार नहीं है। तद्नुसार, अपने अवयस्क संतानों की अचल संपत्ति को अंतरित करने के लिए किसी तृतीय पक्ष के साथ करार करने का अधिकार उसे नहीं है।

13. प्रत्यर्थी सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद कि चूँकि प्रतिवादी सं॰ 2 (माता) अपीलार्थीगण की स्वाभाविक संरक्षक है, अत: उसके द्वारा अग्रिम प्रतिफल स्वीकार किया जाना अपीलार्थीगण के विरुद्ध भी संविदा को पुनर्जीवित कर देगा, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। **पी॰ एन॰ वीतिल नारायणी बनाम पथुम्मा बीवी एवं अन्य, (1990)4 SCC 772,** में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि जब किसी मुस्लिम की मृत्यु निर्वसीयत हो जाती है, उत्तराधिकारियों में से एक द्वारा की गयी अभिस्वीकृति अन्य उत्तराधिकारियों पर बाध्यकारी नहीं होगी। इस प्रकार यदि प्रतिवादी सं॰ 1/प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने करार के पृष्ठभाग पर पृष्ठांकन करके वर्ष 1981 और वर्ष 1983 में अतिरिक्त अग्रिम लिया, तब भी यह अपीलार्थीगण के विरुद्ध पुनर्जीवित नहीं होगा।

14. यह उल्लेखनीय है कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 के मुताबिक संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद उस प्रयोजन से नियत तिथि से तीन वर्षों के भीतर दाखिल किए जाने की आवश्यकता है अथवा यदि कोई ऐसी तिथि नियत नहीं की गयी है, जब वादी ने ध्यान में लिया है कि पालन से इनकार किया गया है। वर्तमान मामले में स्वीकृत रूप से दिनांक 20.8.1975 को निष्पादित करार का जीवन एक वर्ष के लिए है। अत: यदि अनुच्छेद 54 के मुताबिक दिनांक 19.8.1976 तक विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया गया है, परिसीमा की अवधि उस तिथि से आरंभ होती है और दिनांक 19.8.1976 से तीन वर्षों के भीतर वाद दाखिल करना वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 के ऊपर बाध्यकारी है। किंतु यदि वादी का बयान कि स्व॰ हाजी इमाम बख्श ने अग्रिम के रूप में 1000/- रुपया लेकर दिनांक 16.9.1978 को अभिस्वीकृति दी थी, सत्य भी मान लिया जाए (यद्यपि अपीलार्थीगण द्वारा इससे इनकार किया गया है), तब भी परिसीमा अधिनियम की धारा 18 के मुताबिक परिसीमा की नयी अवधि अभिस्वीकृति की तिथि अर्थात् दिनांक 16.9.1978 से गिनी जाएगी। उस परिस्थिति में, वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा दिनांक 16.9.1978 से तीन वर्षों के भीतर अर्थात् दिनांक 15.9.1981 तक अपीलार्थीगण के विरुद्ध वाद दाखिल करना आवश्यक है। उक्त परिस्थिति के अधीन स्व॰ हाजी इमाम बख्श द्वारा हस्ताक्षरित करार को अधिकतम दिनांक 15.9.1981 तक अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रवर्तित करने की आवश्यकता है किंतु वर्तमान वाद परिसीमा की अवधि के काफी बाद दिनांक 28.3.1984 को दाखिल किया गया था।

15. परिसीमा अधिनियम की धारा 18 सह-पठित धारा 20 खंड (I) के अधीन अंतर्विष्ट विधि के प्रावधान के मुताबिक चूंकि प्रतिवादी सं॰ 1/प्रत्यर्थी सं॰ 2 अपीलार्थीगण की विधित: संरक्षक नहीं है, अत: किसी अग्रिम प्रतिफल को प्राप्त करके और करार के पृष्ठ भाग पर पृष्ठांकन करके उसके द्वारा की गयी अभिस्वीकृति अपीलार्थीगण के विरुद्ध वाद दाखिल करने के लिए परिसीमा की अवधि को नहीं बढ़ाएगी क्योंकि हाजी इमाम बख्श की मृत्यु के बाद प्रतिवादी सं॰ 1 ने वाद संपत्ति का केवल 1/8 हिस्सा विरासत में पाया है और संपत्तियों, जो अपीलार्थीगण के हिस्सों में न्यागत हुई, के विक्रय के लिए अग्रिम लेने का कोई अधिकार, टाइटल और हित उसे नहीं है। इस प्रकार, प्रतिवादी सं॰ 1/प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा की गयी अभिस्वीकृति और/अथवा लिया गया अग्रिम अपीलार्थीगण पर बाध्यकारी नहीं होगा।

16. किंतु, प्रत्यर्थी सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण ने न तो अवर न्यायालयों में और न ही इस न्यायालय में परिसीमा के विवाद्यक पर जोर दिया था, अत:, उक्त विवाद्यक विनिश्चित करने की छूट इस न्यायालय को नहीं है। प्रत्यर्थी सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया उक्त प्रतिवाद स्वीकार्य नहीं है। इस संबंध में परिसीमा अधिनियम की धारा 3 (i) को उद्धृत करना उपयुक्त है:

> *''परिसीमा द्वारा वर्जन.-(1) धाराएँ 4 से 24 तक (जिनके अन्तर्गत ये दोनों धाराएँ आती है), अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि विहित काल के पश्चात हर संस्थित वाद, की गई अपील और किया गया आवेदन खारिज कर दिया जाएगा, यद्यपि प्रतिरक्षा के तौर पर परिसीमा की बात उठाई न गई हो।''*

इस प्रकार, पूर्वोक्त प्रावधान वाद खारिज करने के लिए न्यायालय पर कर्तव्य डालता है यदि यह परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित है भले ही प्रतिवादीगण द्वारा कोई प्रतिवाद नहीं किया गया है। अत: यदि प्रतिवादीगण/अपीलार्थीगण ने उक्त विवाद्यक पर जोर नहीं दिया था, मामले पर विचार करना और समुचित आदेश पारित करना इस न्यायालय के लिए अनिवार्य है यदि यह पाता है कि वाद स्वयं परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित है।

17. जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है, स्वयं वाद पत्र में कथित स्वीकृत तथ्यों की दृष्टि में यह प्रतीत होता है कि इन अपीलार्थीगण के विरुद्ध विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित है। यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालयों ने मामले पर विचार नहीं किया था और यांत्रिक रूप से निष्कर्षित किया था कि वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित नहीं है। अत:, अवर न्यायालयों के उक्त निष्कर्ष को विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

18. जैसी चर्चा ऊपर की गयी है, मोहम्मडन विधि के अधीन माता अपने अवयस्क संतानों की विधिक अभिभाविका नहीं है और अपने अवयस्क संतानों के अचल संपत्तियों को अन्य संक्रांत करने का कोई अधिकार, टाइटल और हित उसे नहीं है और इसलिए अपीलार्थीगण, जो समय के प्रासंगिक बिन्दु पर अवयस्क थे, की अचल संपत्तियों को अन्य संक्रांत करने के लिए प्रतिवादी/प्रत्यर्थी सं॰ 2 (अपीलार्थीगण की माता) द्वारा लिया गया कोई अग्रिम अपीलार्थीगण पर बाध्यकारी नहीं होगा और उक्त अग्रिम के आधार पर विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए वे दायी नहीं होंगे। तद्नुसार, इस अपील में विरचित विधि के सारवान प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया जाता है।

19. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। अवर न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल वाद खारिज किया जाता है। किंतु पक्षगण अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अशोक कुमार यादव

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (S.J.) No. 1395 of 2007. Decided on 27th June, 2011.

विशेष केस सं॰ 26 वर्ष 2006 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 26.9.2007 और दिनांक 1.10.2007 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग–दोषसिद्धि–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट किया गया–छुरे के नोंक पर उसके साथ बलात्संग किया गया था–पीड़ित लड़की द्वारा न्यायालय में दिया गया बयान संगत है और क्रमबध जो विश्वास उत्पन्न करता है–अपीलार्थी का पूर्व चिंतन था और वह अवयस्क लड़की के साथ बलात्संग करने के अवसर की तलाश कर रहा था–एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ अधिनियम के अधीन आरोप सिद्ध नहीं किया जा सका था किंतु केवल उस आधार पर अपीलार्थी के विरुद्ध संपूर्ण अभियोजन मामले पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है–अपील खारिज। (पैराएँ 5, 6 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Verma, For the Appellant; Mr. Tapas Roy, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–यह अपील गोड्डा पी॰ एस॰ केस सं॰ 288 वर्ष 2006 से उद्भूत विशेष केस सं॰ 26 वर्ष 2006 में श्री सतीश चंद्र सिंह, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा दर्ज दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है। याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने और व्यतिक्रम अनुबंधों के साथ 5000/- रुपया जुर्माना भरने का दंडादेश दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 9.8.2006 को रात्रि लगभग 11 बजे जब सूचक की 12 वर्षीय पुत्री टेरसा सोरेन पेशाब करने बाहर आयी, अपीलार्थी अशोक कुमार यादव द्वारा उसे छुरे की नोक पर पकड़ लिया गया था और अपीलार्थी ने उसका मुँह दबाने के बाद ''चौकी'' पर उसका बलात्कार किया। अपीलार्थी ने अपराध करने के बाद उसको गंभीर परिणामों की धमकी दी यदि उसने मामले के बारे में किसी अन्य को बताया। अपीलार्थी के भाग जाने के बाद वह तुरन्त लौटी और अपने

परिवार के सदस्यों को घटना के बारे में बताया। मामला अपीलार्थी के पिता को बताया गया था जिसने यद्यपि ''पंचायती'' का आश्वासन दिया किंतु सूचक और अन्य सदस्यों को आदिवासी कहकर गाली दी गयी थी। इस संबंध में दिनांक 9.8.2006 को घटी घटना के बारे में दिनांक 30.8.2006 को सी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा के न्यायालय के समक्ष परिवाद दाखिल किया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन परिवाद याचिका को भेजा गया था और तद्नुसार पुलिस केस दर्ज किया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन और एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (i)(xii) के अधीन भी आरोप पत्र दाखिल किया गया था और तद्नुसार, उक्त अपराध का संज्ञान लिया गया था। आरोप विरचित करने के बाद अपीलार्थी को विचारण पर रखा गया था और तत्पश्चात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसका बयान दर्ज किया गया था जिसमें उसका सामना विचारण के क्रम के दौरान उसके विरुद्ध अभिलेख पर लायी गयी अपराध में फँसाने वाली सामग्रियों के साथ करवाया गया था जिसमें उसने अपनी निर्दोषिता व्यक्त किया था।

3. अभियोजन की ओर से कुल मिलाकर छह गवाहों को प्रस्तुत और परीक्षित किया गया था। उसकी आयु लगभग 14 वर्ष निर्धारित करने के बाद पीड़िता अ॰ सा॰ 4 टेरसा सोरेन ने परिसाक्ष्य दिया कि दिनांक 9.8.2006 को रात्रि लगभग 11 बजे जब वह पेशाब करने घर से बाहर गयी और जब वह लौट रही थी, उसे अपीलार्थी द्वारा पीछे से पकड़ लिया गया था जिसने कपड़े से उसका मुँह दबा दिया, उसे उठा लिया और ''चौकी'' पर लाया जहाँ छूरे की नोक पर उसके साथ बलात्कार किया गया था। उसने स्वीकार किया कि वह घटना के समय पर मौन रही किंतु उसने घर वापस आने के तुरन्त बाद अपने माता-पिता, संबंधियों और पड़ोसियों को घटना के बारे में बताया। उसने स्वीकार किया कि उसके कहने पर परिवाद तैयार किया गया था। जिस पर उसने अपना हस्ताक्षर किया था और प्रदर्श 1 सिद्ध किया था। उसने अपीलार्थी को कटघरे में पहचाना। उसने इस सुझाव से इनकार किया कि उस पर अनुचित दबाव डालने के लिए अपीलार्थी और किसी रूपलाल हेम्ब्रम के विरुद्ध झूठा वर्तमान मामला संस्थापित किया गया था। अ॰ सा॰ 2 और 3 पीड़ित के पड़ोसी थे जिन्होंने अनुश्रुत गवाह होना स्वीकार किया जिन्होंने अभियोक्त्री परिवादी से सूचना पाया था। पीड़ित लड़की टेरसा सोरेन की माता अ॰ सा॰ 1 ने परिसाक्ष्य दिया कि स्वीकृत रूप से वह घटना की चश्मदीद गवाह नहीं थी और उसे उसकी पुत्री द्वारा छूरे की नोक पर अपीलार्थी द्वारा उसके साथ बलात्कार किए जाने के बारे में बताया गया था जब वह रात में पेशाब करने घर से बाहर गयी थी और वापस लौट रही थी। उसने आगे परिसाक्ष्य दिया कि उसकी पुत्री (पीड़िता) ने उसके और परिवार के अन्य सदस्यों के समक्ष घटना के बारे में बताया था जिसके लिए ''पंचायती'' भी की गयी थी किंतु कोई समाधान नहीं हो सका था।

4. दिनांक 14.10.2006 को सदर अस्पताल, गोड्डा में अ॰ सा॰ 5 डॉ॰ बनदेवी झा द्वारा पीड़ित लड़की टेरसा सोरेने का परीक्षण किया गया था जिन्होंने निम्नलिखित पाया:

कद-	*141 Cm,*
वजन-	*38 कि० ग्रा०,*
दाँत-	*14/14,*
आयु	*16-17 वर्ष*

अ॰ सा॰ 5 ने आगे परिसाक्ष्य दिया कि लड़की ने कपड़ा बदल लिया था और स्नान भी कर लिया था। उसके पूरे शरीर के परीक्षण पर कोई बाहरी उपहति नहीं पायी गयी थी। आंतरिक परीक्षण के दौरान काले जघनबालों का मर्यादित विकास पाया गया था किंतु उसके गुप्तांगों के इर्द-गिर्द कोई उपहति देखी नहीं गयी थी। कोई बाह्य बाल उपस्थित नहीं था और कि कोई असामान्य डिस्चार्ज भी नहीं पाया गया

था। हायमन पुराना फटा हुआ था। योनि द्वार में दो उंगलियों का प्रवेश आसानी से हो रहा था और योनि स्राव के माइक्रोस्कोपिक परीक्षण पर कोई वीर्य नहीं पाया गया था किंतु एपिथेलियल सेल उपस्थित था। गवाह महिला डॉक्टर के मत में पीड़ित लड़की ने विगत काल में यौन संभोग किया था और कि उन्होंने पीड़िता के चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श-2 को सिद्ध किया। प्रतिपरीक्षण में डॉक्टर ने आगे मत दिया कि टेरसा सोरेन यौन संबंध की अभ्यस्त हो सकती थी।

5. चूँकि मामला एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन संस्थापित किया गया था, इसके विशेष मामला होने के कारण उप आरक्षी अधीक्षक की श्रेणी के पुलिस अधिकारी द्वारा इसका अन्वेषण किया गया था जिसने विशेष न्यायालय के समक्ष अ॰ सा॰ 6 के रूप में अभिसाक्ष्य दिया और गवाहों के बयानों को दर्ज किया था। उसने घटनास्थल का दौरा किया और अभियुक्त अपीलार्थी को गिरफ्तार किया। पीड़िता को उसके चिकित्सीय परीक्षण के लिए भेजा गया था और दिनांक 26.10.2006 को चिकित्सीय रिपोर्ट प्राप्त किया गया था। एस॰ पी॰ द्वारा मामले का पर्यवेक्षण किया गया था और उनके निर्देश पर भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन और एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(i) (xii) के अधीन भी आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। उसने स्वीकार किया कि उसकी गिरफ्तारी के बाद अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा नहीं की गयी थी। उसने प्रति-परीक्षण में आगे परिसाक्ष्य दिया कि ''चौकी'' जिस पर अभिकथित रूप से बलात्कार का अपराध किया गया था, पर बिस्तर नहीं था। अभिकथित घटना दिनांक 9.8.2006 को हुई थी किंतु उसने दिनांक 13.10.2006 को घटना स्थल का दौरा किया था और किसी महत्वपूर्ण चीज को नहीं पाया था। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने निर्णय में विस्तारपूर्वक चर्चा के बाद संप्रेक्षित किया कि एस॰ सी॰/एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(i)(x) के अधीन और धारा 3 (ii) (v) के अधीन भी आरोप को सिद्ध नहीं किया जा सका था और इसलिए अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया गया था किंतु अभियोजन की ओर से दिए गए साक्ष्य का अधिमूल्यन करते हुए और उसके माता पिता के बयानों द्वारा और चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा भी संपुष्ट किए गए अभियोक्त्री के एकमात्र परिसाक्ष्य पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय ने उनके परिसाक्ष्य को स्वाभाविक, विश्वसनीय और विश्वासयोग्य पाया था। स्वीकृत रूप से, पीड़ित लड़की द्वारा दिए गए घटना के चश्मदीद विवरण कि कैसे अपीलार्थी अशोक कुमार यादव द्वारा उसका बलात्कार किया गया था जब वह घटना की रात में पेशाब करने के लिए बाहर आयी थी और वापस घर जा रही थी, को छोड़कर घटना का कोई भी चश्मदीद गवाह नहीं है। मैं पाता हूँ कि अभियोक्त्री टेरसा सोरेन अवयस्क लड़की थी जिसकी आयु विचारण न्यायाधीश द्वारा लगभग 13 वर्ष निर्धारित की गयी थी किंतु इसके विपरीत, महिला डॉक्टर द्वारा उसकी आयु लगभग 17 वर्ष विनिश्चित की गयी थी। छूरे की नोंक पर उसके साथ बलात्कार किया गया था और तद्द्वारा उसे हल्ला करने का कोई अवसर नहीं मिला था, फिर भी तुरन्त बाद उसने घटना के बारे में पिता पतरास सोरेन, माता मेरी हंसदा, चाचा दाउद सोरेन और कई अन्य गवाहों को बताया था और इस संबंध में पंचायती भी की गयी थी किंतु कोई लाभ नहीं हुआ था। पीड़ित लड़की द्वारा विचारण न्यायालय में दिया गया बयान संगत और उस क्रम में प्रतीत होता है जो विश्वास उत्पन्न करता है।

6. विचारण न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध दर्ज दोषमुक्ति के निर्णय और दंडादेश का विरोध करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अभिकथित घटना जो दिनांक 9.8.2006 को हुई थी, के लिए दिनांक 30.8.2006 को परिवाद दाखिल किया गया था और परिवाद दाखिल करने में हुए ऐसे अत्यधिक विलंब के लिए कोई स्पष्टीकरण भी नहीं दिया गया था। यहाँ तक कि कोई स्पष्टीकरण भी नहीं दिया गया था कि मामले के संस्थापन के लिए इसे पुलिस को रिपोर्ट क्यों नहीं किया जा सका था और इसलिए, संपूर्ण अभियोजन मामला संदेहास्पद था जहाँ तक इसका अपीलार्थी अजय कुमार यादव की अंतर्ग्रस्तता के साथ संबंध था। लेडी डॉक्टर, जिसने अभियोक्त्री का परीक्षण किया, विनिर्दिष्ट थी कि वह

यौन संबंधों की आदी थी और उस कारण से उसके गुप्तांग में दो अँगुलियाँ आसानी से जा रही थी। अपीलार्थी निर्दोष था और दिनांक 13.10.2006 से अभिरक्षा में था जो अपील के गुणागुण पर विचार किए जाने की अपेक्षा न्यायालय से करता है। विकल्प में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया कि अपीलार्थी–पर्याप्त रूप से कारा में दंडादेश पहले ही भुगत चुका है और इसलिए न्यायालय के उद्देश्य के लिए अभिरक्षा में उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक उसका दंडादेश परिवर्तित किया जा सकता है।

7. राज्य की ओर से विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना गया, जिन्होंने निवेदन किया कि विचारण न्यायाधीश द्वारा दर्ज दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश स्व–स्पष्टीकृत था और अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और तद्नुसार 7 वर्षों का कठोर कारावास भुगतने के लिए और व्यतिक्रम अनुबंधों के साथ जुर्माना का भुगतान करने के लिए पर्याप्त रूप से दंडादेशित किया गया था जिस अपील में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं थी।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पक्षकारों की ओर से दिए गए निवेदनों को ध्यान में रखने पर, मैं पाता हूँ कि भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप को अपीलार्थी के विरुद्ध अवयस्क लड़की का बलात्कार करने के लिए जब वह रात में अकेली थी और पेशाब करने के लिए बाहर आयी थी, सुसिद्ध किया गया है। यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी का पूर्व चिंतन था और वह अवयस्क लड़की का बलात्कार करने के लिए अवसर खोज रहा था। अभियोजन ने स्पष्ट किया है कि अपीलार्थी के पिता द्वारा बुलायी गयी प्रस्तावित ''पंचायती'' के कारण परिवाद प्रारम्भ की किसी तिथि पर दाखिल नहीं किया जा सका था किंतु विद्वान एस॰ डी॰ पी॰ ओ॰ ने अन्वेषण के बाद अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप–पत्र दाखिल किया था। स्वीकृत रूप से, विशेष अधिनियम के अधीन आरोप सिद्ध नहीं किया जा सका था किंतु केवल इस आधार पर अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप सहित संपूर्ण अभियोजन मामले पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। ऊपर कथित कारणों से और अभियोक्त्री के साक्ष्य और अन्य गवाहों के परिसाक्ष्य का अधिमूल्यन करते हुए, मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप सुसिद्ध था और विद्वान विचारण न्यायाधीश अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित थे। मैं आगे पाता हूँ कि अपीलार्थी को पर्याप्त रूप से दंडादेशित किया गया है जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, तद्नुसार इस अपील को खारिज किया जाता है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं जया रॉय, न्यायमूर्ति

हर्ष वर्धन माथुर

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

L.P.A. No. 440 of 2009. Decided on 17th June, 2011.

(क) झारखंड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005—धाराएँ 8 एवं 10—सिविल न्यायालय की अधिकारिता की समाप्ति–सिविल न्यायालयों में लंबित मामलों का अंतरण अधिकरण को करने के लिए 2005 के अधिनियम में कोई प्रावधान नहीं है–उस तिथि जब से अधिकरण गठित किया गया है, सिविल न्यायालय 2005 के अधिनियम के अधीन आच्छादित प्रकृति के वादों को ग्रहण नहीं कर सकते हैं। (पैरा 12)

(ख) झारखंड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005—धाराएँ 8 एवं 10—परिसीमा अधिनियम, 1963—धाराएँ 5, 14 एवं 29—परिसीमा अधिनियम के अपवर्जन के लिए 2005 के अधिनियम

में कोई प्रावधान नहीं है–अधिकरण वैसे मामलों को ग्रहण कर सकता है जिसके लिए 2005 के अधिनियम के प्रभाव में आने से तीन वर्ष पहले तक भी वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ हो। (पैरा 14)

अधिवक्तागण.–M/s. Ajit Kumar, Sweta Rani, Vikash Kumar, For the Appellant; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस एल॰ पी॰ ए॰ में विधि का संक्षिप्त किंतु महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत होता है। अपीलार्थी–याची ने झारखंड शिक्षा अधिकरण के समक्ष झारखंड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005 के प्रावधानों के अधीन याचिका दाखिल किया और उक्त आवेदन को 2005 के अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (1) के उपखंड (a) में अंतर्विष्ट वर्जना की दृष्टि में खारिज कर दिया गया था जो प्रावधानित करती है कि अधिकरण आवेदन ग्रहण नहीं करेगा जब तक, जिसके संबंध में आवेदन दिया गया है, अधिकरण की स्थापना की तिथि के ठीक पहले के तीन वर्षों की अवधि के दौरान किसी समय पर दिए गए किसी आदेश के कारण द्वारा उद्भूत नहीं हुआ हो। यदि इस आदेश को मान्य ठहराया जाता है जैसा इस न्यायालय की एकल पीठ द्वारा मान्य ठहराया गया है, तब प्रश्न उद्भूत होता है क्या अपीलार्थी को उपचारविहीन कर दिया जाएगा?

3. आरंभ में अपीलार्थी ने जेवियर लेबर रिलेशंस इंस्टिच्यूट, बिष्टुपुर, जमशेदपुर की प्रबंधक कमिटि द्वारा पारित दिनांक 15.4.1994 के उस आदेश को श्रम न्यायालय, जमशेदपुर के समक्ष चुनौती दी है, जिसके द्वारा याची–अपीलार्थी को सेवा से हटा दिया गया था। श्रम न्यायालय, जमशेदपुर ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि शिक्षण संस्थान व्यावसायिक/वाणिज्यिक संस्थान नहीं हैं और इसलिए, दुकान एवं स्थापन अधिनियम, 1953 के अधीन श्रम न्यायालय के समक्ष याची–अपीलार्थी द्वारा आरंभ की गयी कार्यवाही पोषणीय नहीं थी, दिनांक 29.3.2005 को याची का दावा खारिज कर दिया। याची–अपीलार्थी श्रम न्यायालय के दिनांक 29.3.2005 के आदेश से व्यथित होकर रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 4917 वर्ष 2005 दाखिल किया, जिसे उच्च न्यायालय के दिनांक 17.1.2006 के आदेश, जिसके द्वारा श्रम न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.3.2005 के आदेश को मान्य ठहराया गया है, के तहत खारिज कर दिया गया था और अब याची–अपीलार्थी के विरुद्ध निश्चयात्मक रूप से विनिश्चित किया गया है कि रिट याची का दावा ग्रहण करने की अधिकारिता श्रम न्यायालय को नहीं है।

4. दिनांक 17.1.2006 को रिट याचिका की खारिजी के बाद याची ने स्पष्टत: 2005 के अधिनियम की धारा 9 के अधीन झारखंड शिक्षा अधिकरण के समक्ष उसी अनुतोष के लिए जिसके लिए वह श्रम न्यायालय के पास गया था, आवेदन दिया। शिक्षा अधिकरण का दृष्टिकोण यह था कि चूँकि याची–अपीलार्थी को वाद हेतुक दिनांक 15.4.1994 को प्रोद्भूत हुआ था अर्थात् अधिकरण के गठन की तिथि से तीन वर्ष पहले और अधिकरण केवल धारा 9 के अधीन आवेदन ग्रहण कर सकता है जब चुनौती के अधीन आदेश अधिकरण की स्थापना के तुरंत पहले तीन वर्षों के भीतर दिया गया है।

5. याची धारा 9 के अधीन उसके आवेदन को खारिज करते हुए शिक्षा अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 30.11.2006 के आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दाखिल किया और रिट याची की रिट याचिका को इस न्यायालय के एकल पीठ द्वारा खारिज कर दिया गया था। अत: यह एल॰ पी॰ ए॰ दााखिल किया गया है।

6. अपीलार्थी–याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि शिक्षा अधिकरण और विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिकरण द्वारा याची–अपीलार्थी के मूल आवेदन और इस न्यायालय की एकल पीठ द्वारा रिट याचिका खारिज करके और रिट याची को उपचार विहीन करके विधि की गलती की और यदि

आक्षेपित आदेशों को मान्य ठहराया जाता है, तब याची का दावा, जिसे किसी प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित नहीं किया गया है, कहीं भी ग्रहणीय नहीं होगा क्योंकि श्रम न्यायालय को अधिकारिता नहीं है और शिक्षा अधिकरण ने भी अभिनिर्धारित किया है कि इसको भी कोई अधिकारिता नहीं है क्योंकि वाद हेतुक अधिकरण की स्थापना के तीन वर्षों पूर्व प्रोद्भूत हुआ था।

7. याची-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दोहराया कि याची की याचिका पोषणीय थी जबकि प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि 2005 के अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 1 के उपखंड (a) में अंतर्विष्ट स्पष्ट वर्जना की दृष्टि में याची का दावा समय द्वारा वर्जित होने के कारण पोषणीय नहीं था।

8. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और विधि के प्रासंगिक प्रावधानों का परिशीलन किया है।

9. झारखंड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005 को दिनांक 14.8.2005 को अधिनियमित एवं गजट में प्रकाशित किया गया था और इसे सहायता पाने वाले, संबद्ध और निजी शिक्षण संस्थानों के प्रबंधन और समस्त माता-पिता/अभिभावकों/छात्रों, जो शिक्षण संस्थानों की कार्रवाई से प्रभावित हो सकते हैं, की शिकायतों को सुनने के लिए और शिक्षण संस्थानों में सेवा मामलों के संबंध में विवादों को विनिश्चित करने के लिए भी 'अपीलीय अधिकरण' के रूप में ज्ञात होने वाले सांविधिक फोरम के गठन के लिए उपयुक्त प्रावधान बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है। यह प्रतीत होता है कि यह अधिनियम **टी॰ एम॰ ए॰ पाई फाउंडेशन एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, SCC 2002 Vol. VIII** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसरण में अधिनियमित किया गया था।

10. धारा 8 प्रासंगिक है जो झारखंड शिक्षा अधिकरण की अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार को परिभाषित करता है। 2005 के अधिनियम की धारा 8 निम्नलिखित है:–

*"8. **झारखंड शिक्षा अधिकरण की अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार**.–इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा अन्यथा उपबंधित है, उसके सिवाए झारखंड शिक्षा संस्थान नियत तिथि को और से समस्त न्यायालयों (झारखंड उच्च न्यायालय और भारत का सर्वोच्च न्यायालय के सिवाए) द्वारा उस दिन के तुरन्त पहले प्रयोग किए जाने योग्य समस्त अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार का प्रयोग निम्नलिखित के संबंध में करेगाः*

(a) शिक्षण संस्थान के क्रियाकलाप के संबंध में किसी पद पर भर्ती से संबंधित मामले;

(b) शिक्षण संस्थान के कर्मचारीगण के सेवा शर्तों के संबंध में समस्त मामले;

(c) शिक्षण संस्थानों के प्रबंधन के विरुद्ध कर्मचारीगण की शिकायतें;

(d) शिक्षण स्तर, शुल्क संरचना, आधारभूत सुविधाओं, विकास कार्यों और उससे संबंधित सहयोगी मामलों के संबंध में शिक्षण संस्थानों के प्रबंधन के विरुद्ध छात्रों के माता-पिता और अभिभावकों की शिकायतें;

(e) शिक्षण संस्थानों से संबंधित ऐसे मामले जिन्हें राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचना द्वारा अधिकरण को निर्दिष्ट किया जा सकता है।''

11. अधिनियम की धारा 8 के अधीन बनाए गए प्रावधानों की दृष्टि में, यह स्पष्ट है कि झारखंड शिक्षा अधिकरण को नियत तिथि को और से कार्रवाई करने की शक्ति, अधिकारिता और प्राधिकार दिया गया है और वे अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार जो अधिकरण की स्थापना के पहले समस्त न्यायालयों में निहित थे, को अधिकरण में निहित किया गया है। अत:, जब न्यायालयों की समस्त अधिकारिता पर विचार करने के लिए और प्रयोग करने के लिए प्राधिकारी को सशक्त बनाते हुए विशेष अधिनियमन द्वारा बनाया गया विनिर्दिष्ट प्रावधान है, तब यह उन मामलों, जिनके लिए अधिकरण को अधिकारिता दी गयी है, के संबंध में सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करता है। परिणामस्वरुप, उस तिथि को जब उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 17.1.2006 को याची की रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था, सिविल न्यायालय को याची का दावा ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं थी और कि अधिकारिता अधिकरण में निहित है। उक्त की दृष्टि में, किसी अनुतोष को पाने के लिए याची-अपीलार्थी सिविल न्यायालय नहीं जा सकता था।

12. धारा 10 उन मामलों पर प्रयोज्य है जहाँ अधिकरण की स्थापना की तिथि के तुरन्त पहले तीन वर्षों की अवधि के दौरान कोई आदेश पारित किया गया है। वर्ष 2005 के अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो सिविल न्यायालयों में लंबित मामलों को अधिकरण को अंतरित करना प्रावधानित करता हो किंतु सिविल न्यायालय उस दिन से जब अधिकरण गठित किया गया है, वर्ष 2005 के अधिनियम के अधीन आच्छादित वादों को ग्रहण नहीं कर सकता है। किंतु, उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित मामलों पर विचार करते हुए धारा 10 की उपधारा (1) के अधीन उपखंड (b) है जो इस एल० पी० ए० को विनिश्चित करने के लिए प्रासंगिक नहीं है।

13. यह विवादित नहीं है कि याची ने सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी है, यद्यपि उसने श्रम न्यायालय के पास जाकर गलत फोरम के समक्ष ऐसा किया है और वह सिविल न्यायालयों के समक्ष घोषणा और पारिणामिक अनुतोष के लिए वाद दाखिल कर सकता था क्योंकि स्वीकृत रूप से प्रत्यर्थी-संस्थान निजी शिक्षण संस्थान है और न कि राज्य का अभिकरण, और इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता भी याची को उपलब्ध नहीं थी। यदि याची के पास सिविल वाद दाखिल करने का अवसर होता, उसे विलंब की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 का लाभ मिला होता।

14. वर्ष 2005 के अधिनियम के प्रभाव में आने के बाद, जैसा वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 8 की उपधारा 1 से प्रकट है, सिविल न्यायालयों की अधिकारिता अधिकरण में निहित होती है और इसलिए, जैसा ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, सिविल न्यायालयों की अधिकारिता वर्ष 2005 के अधिनियम द्वारा अपवर्जित की गयी है और न केवल अपवर्जित बल्कि इसे अधिकरण में निहित किया गया है और विशेषत: ''सिविल न्यायालयों की अधिकारिता'' अब विनिर्दिष्ट विधि के प्रवर्तन द्वारा अधिकरण में निहित है। अत:, धारा 8 और धारा 10(i)(a) के संयुक्त पठन पर हम अभिनिर्धारित कर सकते हैं कि अधिकरण धारा 8 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सिविल न्यायालयों की तरह उन मामलों को ग्रहण कर सकता है जिसके लिए वाद हेतुक वर्ष 2005 के अधिनियम के प्रभाव में आने से तीन वर्ष के पहले भी उद्‌भूत हुआ और वर्ष 2005 के अधिनियम में भारतीय परिसीमा अधिनियम के अपवर्जन के लिए कोई प्रावधान बनाया नहीं गया है और इसलिए वर्ष 1963 के अधिनियम की धारा 29 की उपधारा (2) वर्ष 2005 के अधिनियम, जो धारा 14 और धारा 5 सम्मिलित करती है के अधीन आवेदन के लिए भारतीय परिसीमा अधिनियम की धाराओं 4 से 24 तक की प्रयोज्यता का ख्याल निश्चय ही कर सकती है।

15. धारा 8 और धारा 10(i)(a) के इस सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन के अलावे कोई अन्य अर्थान्वयन याची की तरह के व्यक्ति को उपचारविहीन इस कारण से बना देगी कि वर्ष 2005 के अधिनियम के प्रवर्तन

द्वारा सिविल न्यायालयों को याची का कोई वाद ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी और धारा 10 की उपधारा (1) के उपखंड (a) के प्रवर्तन द्वारा अधिकरण को भी अधिकारिता नहीं होगी और चूँकि प्रत्यर्थी-शिक्षण संस्थान राज्य का अभिकरण नहीं है, याची भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन सीधे उच्च न्यायालय के पास नहीं जा सकता है, तद्द्वारा याची, जो समय पर न्यायालय के पास आया, उपचारविहीन बना दिया जाएगा क्योंकि वह गलत फोरम के समक्ष अपना मामला ले गया था और इस तथ्य के बावजूद गलत न्यायालय के समक्ष उपचार का अनुसरण करने वाले पक्ष को ऐसी स्थिति से उबारने के लिए भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 को अधिनियमित किया गया है।

16. उक्त कारणों की दृष्टि में, हमारा सुविचारित मत है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 13.12.2007 के आदेश को संपोषित नहीं किया जा सकता है और यह अपास्त किए जाने योग्य है। शिक्षा अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 30.11.2006 के आदेश को भी अपास्त किया जाता है और मामला शिक्षा अधिकरण को वापस भेजा जाता है और दोनों पक्षों को दिनांक 11 जुलाई, 2011 को शिक्षा अधिकरण के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अंजलि कुमारी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M.P. No. 932 of 2010. Decided on 17th June, 2011.

एस॰ सी॰ एवं एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989—धारा 3 (viii)—परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 5—पुनरीक्षण याचिका दाखिल करने में 44 दिनों का विलंब—समय वर्जित होने के कारण पुनरीक्षण याचिका खारिज—विलंब बीमारी के साथ साथ बच्चे के जन्म के कारण हुआ—विलंब के लिए स्पष्टीकरण पर केवल इस आधार पर विचार नहीं किया गया क्योंकि वह अध्यक्ष होने के कारण नगरपालिका की बैठकों में भाग ले रही थी—पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष याची द्वारा दिए गए विलंब के स्पष्टीकरण पर विचार किया जाना चाहिए था—याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.—M/s Sajid Yunus "Warsi", Ranjit Kumar, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. Prabhat Kumar Sinha, For the O.P. Nos 2 to 6.

आदेश

याची ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 243 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 15.2.2010 के आदेश, जिसके द्वारा 44 दिनों के विलंब की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन याची की ओर से दाखिल याचिका को खारिज कर दिया गया था और तद्नुसार समय-वर्जित होने के कारण पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया गया था, के अभिखंडन की प्रार्थना के साथ इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि याची ने सी॰ जे॰ एम॰, हजारीबाग द्वारा पारित संज्ञान के उस आदेश के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण दाखिल किया था जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं

147/341/353/504 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था किंतु याची की ओर से कथन किया गया था कि केस डायरी में अंतर्विष्ट सामग्रियों के बावजूद एस॰ सी॰ एवं एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (viii) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा संज्ञान नहीं लिया जा सकता था जिसके विरूद्ध जब याची को ज्ञात हुआ कि विशेष अधिनियम के अधीन अभिकथित अपराध के लिए कोई संज्ञान नहीं लिया गया था सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा दर्ज आदेश के कुछ समय बाद, उसने विलंब की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन याचिका से समर्थित दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 243 वर्ष 2009 दाखिल किया। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के सदस्यों पर नोटिस तामील किया गया था। वे दांडिक पुनरीक्षण में उपस्थित हुए और अपनी आपत्तियों को भी दाखिल किया। दांडिक पुनरीक्षण में याची द्वारा स्पष्ट किया गया था कि वह दिनांक 4.4.2009 को बीमार थी और इस बीच उसने शिशु को जन्म दिया था और तद्नुसार उसे आराम करने का परामर्श दिया गया था और उसके समर्थन में उसने चिकित्सीय प्रमाण पत्र की छाया प्रतिलिपि को दाखिल किया किंतु उक्त प्रमाण पत्र के साथ कोई चिकित्सीय नुस्खा संलग्न नहीं किया गया था। दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के सदस्यों ने प्रतिवाद का खंडन किया और कथन किया कि याची हजारीबाग नगरपालिका की अध्यक्ष होने के नाते नगरपालिका की अनेक बैठकों में भाग ले रही थी और उसके समर्थन में उन्होंने नगरपालिका कार्यवाही के विवरणों को दाखिल किया है किंतु उन्होंने इनकार नहीं किया था कि याची ने डॉक्टर के मेडिकल केयर के अधीन शिशु को जन्म दिया था।

3. याची की ओर से रंजीत कुमार, अधिवक्ता की सहायता से श्री साजिद युनूस ''वारसी'' और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रभात कुमार सिन्हा और राज्य की ओर से विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री हातिम को सुना गया।

4. मैं सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा दर्ज दिनांक 15.2.2010 के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से पाता हूँ कि यद्यपि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दांडिक पुनरीक्षण देर से दाखिल करने के लिए याची द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण और आधारों पर चर्चा किया था किंतु ऐसे स्पष्टीकरण को केवल इस आधार पर नहीं माना गया था कि ऐसी अवधि के दौरान वह अध्यक्षा होने के नाते नगरपालिका की बैठकों में भाग ले रही थी और मूल चिकित्सीय प्रमाण पत्र को अभिलेख पर नहीं लाया गया था। इसके अतिरिक्त, किसी मेडिकल नुख्सा द्वारा उक्त प्रमाण पत्र की छाया प्रतिलिपि को समर्थित नहीं किया गया था। मैं पाता हूँ कि याची द्वारा शिशु को जन्म दिए जाने को विपक्षी पक्षकार के सदस्यों द्वारा सत्र न्यायाधीश अथवा इस न्यायालय के समक्ष इनकार नहीं किया गया था और उसे आराम करने के लिए कहा गया था। मैं पाता हूँ कि पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष याची द्वारा दिए गए विलंब के स्पष्टीकरण पर विचार किया जाना चाहिए था। तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

5. दिनांक 15.2.2010 का आदेश, जिसके द्वारा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन याची की ओर से दाखिल याचिका को खारिज कर दिया गया था और तद्नुसार दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 243 वर्ष 2009 को भी समय-वर्जित होने के कारण खारिज कर दिया गया था, अपास्त किया जाता है। विलंब को माफ कर दिया गया समझे जाने के चलते सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग को पक्षों को सुनने के बाद दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 243 वर्ष 2009 में गुणागुण पर आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्तिगण

सोना राम करमाली

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 151 of 2002. Decided on 16th June, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 550 वर्ष 1996, गोला पी॰ एस॰ केस सं॰ 31 वर्ष 1996, जी॰ आर॰ केस सं॰ 1381 वर्ष 1996 के तत्सम, में श्री रामेश्वर तिवारी, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 4.12.2001 और दिनांक 6.12.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–तुच्छ मामले पर झगड़े के अनुसरण में अपीलार्थी ने अपने भाई की हत्या कर दी–घटना क्षणिक आवेश में हुई–मृतक ने भी गंदी भाषा में गाली दी–अभियोजन यह सिद्ध करने में अक्षम रहा कि अपीलार्थी की ओर से अपने भाई की हत्या करने का आशय था–अपीलार्थी ने अनुचित लाभ नहीं लिया अथवा असामान्य तरीके से कृत्य नहीं किया–दोषसिद्धि को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 से धारा 304, भाग II में परिवर्तित किया गया–पहले ही भुगत ली गयी अवधि (15 वर्ष) तक के लिए दंडादेश घटाया गया। (पैराएँ 3 से 7)

निर्णयज विधि.–(2009) 14 SCC 771—Referred.

अधिवक्तागण.–Mrs. Chaitali C. Sinha, *Amicus Curiae,* For the Appellant; Mr. S. N. Rajgarhia, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 550 वर्ष 1996 गोला पी॰ एस॰ केस सं॰ 31 वर्ष 1996, जी॰ आर॰ केस सं॰ 1381 वर्ष 1996 के तत्सम, में श्री रामेश्वर तिवारी, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 4.12.2001 और दिनांक 6.12.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश से उद्भूत होती है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और कठोर आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया था।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि सूचक रुकनी देवी (अ॰ सा॰ 1) ने दिनांक 9.8.1996 को प्रातः लगभग 10.45 बजे पुलिस के समक्ष इस प्रभाव का फर्दबयान दिया कि पिछली रात्रि में लगभग 9 बजे जब वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ आराम कर रही थी, तब अपीलार्थी जो उसके पति रूपदेव करमाली का बड़ा भाई है, अपने घर के बाहर आया और जोर से गाली गलौज किया कि क्यों रूपदेव ने उसके आंगन में गंदा पानी फेंका था। रूपदेव ने भी गाली–गलौज की भाषा में आरोप पर विवाद किया। अपीलार्थी क्रोधित हो गया, रूपदेव भी क्रोधित हो गया और गंदी भाषा का इस्तेमाल किया। इस पर अपीलार्थी ने उसे धक्का दिया और थप्पड़–मुक्का से उसे मारने लगा। रूपदेव ने भी गंदी भाषा में अपीलार्थी को गाली दिया। अपीलार्थी अत्यन्त क्रोधित हो गया और उसने रूपदेव के मस्तक पर 'कुदाल' से प्रहार किया जो वहाँ पड़ा हुआ था। अपीलार्थी ने बार–बार उसके मस्तक पर कुदाल से प्रहार किया जिससे रूपदेव की मृत्यु हो गयी। आगे अभिकथित किया गया है कि हल्ला मचाने पर भी कोई मदद करने नहीं आया।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान न्यायमित्र, श्रीमती चैताली सी॰ सिन्हा ने निवेदन किया कि अभियोजन यह सिद्ध करने में सफल नहीं रहा है कि अपने भाई की हत्या करने का अपीलार्थी की ओर से कोई आशय अथवा पूर्व चिंतन था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अभियोजन मामले के मुताबिक

भी, झगड़ा हुआ और क्षणिक आवेश में घटना हुई। मृतक ने भी गंदी भाषा में गाली देना जारी रखा। उन्होंने आगे निवेदन किया कि डॉक्टर ने अन्य उपहतियों के अतिरिक्त मस्तक पर कड़े एवं भोथरे हथियार, जैसे कुदाल का पिछला भाग, से कारित चार उपहतियों को पाया, किंतु यदि अपीलार्थी की ओर से हत्या का आशय होता, वह 'कुदाल' के तीखे भाग का प्रयोग कर सकता था। मस्तक की उपहतियाँ झगड़े के दौरान गिर जाने से कारित हो सकती थी। उन्होंने **(2009)14 Supreme Court Cases 771 (जागृति देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य)** में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि किसी भी स्थिति में अपीलार्थी जेल में लगभग 15 वर्षों से है और दण्ड पुनर्विलोकन कमिटि द्वारा दंडादेश माफ किए जाने की अनुशंसा की गयी है।

4. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर, पी॰ पी॰ श्री एस॰ एन॰ राजगढ़िया ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया।

5. श्रीमती चैताली सी॰ सिन्हा के निवेदनों में सार प्रतीत होता है कि अभियोजन यह सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है कि अपने भाई/मृतक की हत्या करने का अपीलार्थी की ओर से कोई आशय था। अभिकथित घटना झगड़ा होने पर आवेग में हुई थी। यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी ने अनुचित लाभ लिया अथवा असामान्य तरीके से कृत्य किया।

6. इन परिस्थितियों में, हम दोषसिद्धि को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 से भा॰ दं॰ स॰ की धारा 304, भाग II में परिवर्तित करने के इच्छुक हैं। जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी लगभग 15 वर्षों से जेल में रहा है। तद्नुसार, पहले ही भुगत ली गयी अवधि के लिए अपीलार्थी को दंडादेशित किया जाता है।

7. परिणामस्वरुप, दोषसिद्धि और दंडादेश में पूर्वोक्तानुसार परिवर्तन के साथ इस अपील को खारिज किया जाता है।

8. परिवर्तित दोषसिद्धि आदेश जारी करने के लिए इस आदेश की प्रति संबंधित अवर न्यायालय को भेजी जाए ताकि अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त किया जा सके।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

कार्डिनल टेलीस्फोर पी॰ टोप्पो @ टेलीस्फोर पी॰ कार्डिनल टोप्पो

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 239 of 2011. Decided on 16th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 453/295A/298 सह-पठित धारा 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 196, 468(2) (c) एवं 482—धार्मिक विश्वासों पर चोट–समन जारी–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 473 के अधीन विलंब माफ किए बिना पुस्तक के प्रकाशन के बीस वर्षों बाद दंडाधिकारी द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया–न्यायालय ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 196 के अधीन मंजूरी प्राप्त किए बिना अभियुक्तगण को समन जारी करने का निर्देश दिया–समन जारी करने वाले आदेश को अभिखंडित किया गया–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 13)

अधिवक्तागण.–Mr. Deepak Kumar Bharti, For the Petitioner; Mr. Tapas Roy, For the State; Mr. Vishal Tiwary, For the O.P. No.2.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने दिनांक 21.1.2011 के आदेश, जिसके द्वारा विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, राँची ने परिवाद केस सं॰ 1314 वर्ष 2010 में उनके विरुद्ध अग्रसर होने के लिए याचीगण और अन्य के विरुद्ध अभिकथित भारतीय दंड संहिता की धाराओं 453/295A/298 सह-पठित धारा 120B के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध पाया था, के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. परिवाद में कथित अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि परिवादी ''सरना धर्म'' के अनुयायी अनुसूचित जनजाति के सदस्यों का एक संघ था जिसे सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 के अधीन सम्यक् रूप से रजिस्टर्ड किया गया था। ऐसी सोसाइटी ''सरना'' के अनुयायियों अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को सामाजिक, शिक्षण, आर्थिक विकास के स्तर को ऊपर उठाने के लिए साक्षरता, वैज्ञानिकता, पूर्त न्यास और धार्मिक प्रयोजनों से निर्मित की गयी थी। परिवादी ने आगे स्पष्ट किया कि ''सरना'' के अनुयायियों का विरासत एवं उत्तराधिकार के अधिकार सहित धार्मिक और सामाजिक मामलों में स्वयं अपने रीति-रिवाज थे और वे ''पाहन'' के माध्यम से अपने धार्मिक रीति रिवाजों का पालन करवाया करते थे।

3. परिवादी द्वारा अभिकथित किया गया है कि विगत काल में इसाई समुदाय धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के एकमात्र हेतु से ''सरना'' अनुयायियों के धार्मिक विश्वासों में घुसपैठ करके स्वयं को लगातार लिप्त कर रहा था और इसके अनुसरण में इसाई समुदाय उनकी पहचान को हानि पहुँचाने के आशय के साथ ''सरना'' अनुयायियों के धार्मिक विश्वासों की निंदा करते हुए पुस्तकों का लेखन, प्रकाशन और मुद्रण कर रहा था और इस संबंध में उन्होंने अनेक पुस्तकों जैसे ''ट्राइबल मिथ्स'', ''आदिवासी मिस्सा संग्रह'', ''आदिम धर्म एक परिचय'', ''खरिया धर्म और संस्कृति का विश्लेषण'', ''ओराँव संस्कृति'' और ''सौम्य वैक्तित्व की तलाश'' को प्रकाशित किया, जिसके द्वारा उनकी संस्कृति, विश्वासों, उपासना स्थलों और उनके देवी-देवताओं पर प्रत्यक्ष आक्रमण करके ''सरना'' अनुयायियों की एकमात्र पहचान को नुकसान कारित करने का प्रयास अभियुक्तगण ने किया। परिवादी ने आगे अभिकथित किया कि उक्त पुस्तकों के लेखकों, प्रकाशकों और मुद्रकों ने द्वेषपूर्वक ''सरना'' अनुयायियों के धार्मिक विश्वासों को अपमानित करने का प्रयास किया है। अभिकथित किया गया है कि उक्त पुस्तकों की विषयवस्तु समस्त रूप से ''सरना'' के धार्मिक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के प्रति हानिकारक थी जो उक्त पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा विभिन्न समुदायों के लिए सामंजस्य और शांति बनाए रखने के प्रतिकूल थी और ''सरना धर्म'' के अनुयायियों के धार्मिक विश्वासों का अपमान करने के आशय के साथ अभियुक्तगण ने स्वेच्छापूर्वक अपराध किया, अतः, अभियुक्तगण का कृत्य आशयपूर्वक तैयार किया गया था जो घोर रूप से अपमानजनक, अभद्र और घृणित था जो धर्मनिंदा और अनादरकारी की कोटि में आता है जैसा स्पष्ट होगा कि उनके कृत्य मानहानिकारक पुस्तकों के लेखन द्वारा आशयपूर्ण और आदतवश थे। केंद्रीय सरना समिति के अध्यक्ष श्री अजय तिर्के के माध्यम से प्रतिनिधित्व किए गए परिवादी का बयान जाँच के दौरान सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर दर्ज किया गया था और अन्य गवाहों के बयान भी जाँच के दौरान दर्ज किए गए थे।

4. विद्वान अधिवक्ता श्री दीपक कुमार भारती ने आरंभ में निवेदन किया कि परिवाद याचिका में कथित तथ्यों और सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर दर्ज परिवादी के बयान के तथ्यों के बीच महत्वपूर्ण अंतर थे। परिवाद याचिका में याची-कार्डिनल टेलीस्फोर पी॰ टोप्पो उर्फ टेलीस्फोर पी॰ कार्डिनल टोप्पो के विरुद्ध

कोई विनिर्दिष्ट कथन नहीं किया गया था बल्कि परिवादी ने सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर दर्ज अपने बयान में सारवान विकास किया था और कथन किया था कि हैंडबुक ''सौम्य वैक्तित्व की तलाश'' सत्य भारती प्रकाशक, राँची द्वारा प्रकाशित की गयी थी और उक्त पुस्तक याची के अनुदेश के अधीन लिखी गयी थी और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध विभिन्न अभिकथणों को किया गया था।

5. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची को संपूर्ण विश्व में कैथोलिक सम्प्रदाय के धार्मिक प्रमुख रेवरेंड पोप द्वारा सम्मानित किया गया है याची को राँची कैथोलिक आकडायोसीज के 'आर्कबिशप' का सम्मानित पद प्रदान करके अलंकृत किया गया था ये झारखंड में और संपूर्ण भारत में कैथोलिक इसाई धर्म का प्रख्यात धार्मिक व्यक्तित्व है जिन्होंने वेटिकन सिटी, रोम सहित अनेक अंतर्राष्ट्रीय फोरमों में भारत के इसाई समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए भारत के कैथोलिक बिशपों की सभा में अध्यक्ष का पद धारण किया। परिवाद याचिका में उसके विरुद्ध किसी विनिर्दिष्ट कृत्य को अभिकथित किए बिना अंतरस्थ हेतु के साथ द्वेषपूर्वक और आशयपूर्वक वर्तमान मामला संस्थापित किया गया है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि हैंडबुक ''सौम्य व्यक्तित्व की तलाश'' याची के निर्देश के अधीन कभी नहीं लिखा गया था और न ही अपने प्रतिवाद के समर्थन में परिवादी द्वारा कोई साक्ष्य दिया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने जोड़ा कि यह सत्य भारती, जेसुइट संगठन द्वारा सम्यक् रूप से चलायी जा रही पृथक प्रशासनिक कमिटि वाले प्रकाशन के पृथक निकाय द्वारा प्रकाशित की गयी थी जिससे याची का कोई सरोकार नहीं था और न ही उसपर समय के किसी बिंदु पर कोई नियंत्रण था।

7. विद्वान अधिवक्ता श्री भारती ने प्राख्यान किया कि पुस्तक का प्रथम पृष्ठ (पृष्ठ 52 पर परिशिष्ट-3) ने स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि इसे नव ज्योति निकेतन, पटना के निर्देश के अधीन ''राँची धर्म प्रशिक्षण दल'' द्वारा लिखा गया था। अगले पृष्ठ में ''सत्य भारती प्रकाशन'' कैथोलिक प्रेस, राँची में मुद्रित किया गया था जिसने सिद्ध किया कि पुस्तक न तो याची के अनुदेश पर लिखी गयी थी और न ही इसके मुद्रण अथवा प्रकाशन के संबंध में उसके द्वारा कोई निर्देश दिया गया था।

8. श्री भारती ने आगे स्पष्ट किया कि पुस्तक ''सौम्य व्यक्तित्व की तलाश'' के द्वितीय आंतरिक पृष्ठ में याची का नाम ''टेलीस्फोर पी॰ टोप्पो, राँची के आर्क बिशप दिनांक 6.1.1991" के रूप में आता है। शब्द "Imprimatur" का उद्गम लैटिन है जिसका शब्द कोषीय अर्थ'' पुस्तक प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करना'' है। स्वयं पुस्तक से यह स्पष्ट होगा कि ऐसा पृष्ठांकन याची द्वारा दिनांक 6.1.1991 को किया गया था। अधिवक्ता ने जोरदार रूप से प्राख्यान किया कि याची ने उसमें अभिव्यक्त विषयवस्तुओं, अभिव्यक्तियों अथवा किसी प्रकार के दृष्टिकोण को अपना मानने से इनकार कर दिया। उसका नाम केवल कैथोलिक इसाई समुदाय के प्रमुख के रूप में उपयोग किया गया था। न तो परिवाद याचिका में और न ही सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर दर्ज अपने बयान में परिवादी ने अभिकथित किया कि याची पुस्तक का लेखक अथवा प्रकाशक था ताकि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 153A/295A/298 और 120B के अधीन अपराध आकृष्ट किया जा सके और इस प्रकार, यांत्रिक रूप से और न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने संप्रेक्षित किया कि याची एवं अन्यों के विरूद्ध एक प्रथम दृष्टया अपराध निर्मित हुआ था जिसे विधि के अधीन संपोषित किया जा सकता था। दांडिक अभियोजन की पोषणीयता के बिन्दु पर विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त पुस्तक के प्रकाशन की तिथि होने के नाते घटना दिनांक 6.1.1991 को हुई थी, परिवादी द्वारा दिनांक 25.7.2010 को परिवाद दाखिल किया गया था और सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा दिनांक 22.7.2010 को अपराध का संज्ञान लिया गया था जिसके द्वारा मामले का अभिलेख श्री एस॰ एन॰ सिकदर, न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के न्यायालय को

अंतरित किया गया था जिन्होंने हैंडबुक के अभिकथित प्रकाशन और मुद्रण के 20 वर्ष बीत जाने के बाद जाँच के बाद दिनांक 24.1.2011 के आदेश द्वारा प्रथम दृष्टया मामला पाया था जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468 (2) (c) के अधीन समय वर्जित था। भारतीय दंड संहिता की धारा 153A के अधीन अपराध के लिए विहित दंड तीन वर्ष, भारतीय दंड संहिता की धारा 295A के अधीन तीन वर्ष था, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 298 के अधीन एक वर्ष था और यह कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468(2)(C) के अधीन संज्ञान लेने के लिए विहित अधिकतम अवधि अभिकथित घटना की तिथि अर्थात् हैंडबुक ''सौम्य व्यक्तित्व की तलाश'' के मुद्रण और प्रकाशन से केवल तीन वर्ष थी और इसलिए दिनांक 24.1.2011 का आदेश स्वयं परिसीमा द्वारा निराशाजनक रूप से वर्जित था और इसलिए इसे संपोषित नहीं किया जा सकता था। इसी प्रकार से भारतीय दंड संहिता की धाराओं 153A/295A/298/120B के अधीन इसे संपोषित नहीं किया जा सकता था। इसी प्रकार से भारतीय दंड संहिता की धाराओं 153A/295A/298/120B के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 196 के अधीन मंजूरी प्राप्त नहीं की गयी थी। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 196 प्रावधानित करती है:–

"राज्य के विरूद्ध अपराधों के लिए और ऐसे अपराध करने के लिए आपराधिक षड्यंत्र के लिए अभियोजन.–(1) कोई न्यायालय,–

(a) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय 6 के अधीन 153-A [धारा 295-A या धारा 505 की उपधारा (1)] के अधीन दण्डनीय किसी अपराध का; अथवा

(b) ऐसा अपराध करने के लिए आपराधिक षड्यंत्र का; अथवा

(c) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 108-A में यथावर्णित किसी दुष्प्रेरण का, संज्ञान केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं।

[(1-A) कोई न्यायालय.–

(a) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 153-B या धारा 505 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के अधीन दण्डनीय किसी अपराध का, अथवा

(b) ऐसा अपराध करने के लिए आपराधिक षड्यंत्र का, संज्ञान, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं।]

(2) कोई न्यायालय भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 120-B के अधीन दण्डनीय किसी आपराधिक षड्यंत्र के किसी ऐसे अपराध का, जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दो वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कठिन कारावास से दंडनीय [अपराध] करने के आपराधिक षड्यंत्र से भिन्न है, संज्ञान तब तक नहीं लेगा जब तक राज्य सरकार या जिला मजिस्ट्रेट ने कार्यवाही शुरू करने के लिए लिखित सम्मति नहीं दे दी है:

परन्तु जहां आपराधिक षड्यंत्र ऐसा है जिसपर धारा 195 के उपबंध लागू हैं वहां ऐसी कोई सम्मति आवश्यक न होगी।

(3) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, [उपधारा (1) या उपधारा (1-A) के अधीन मंजूरी देने के पूर्व और जिला मजिस्ट्रेट, उपधारा (1-A) के अधीन मंजूरी देने से पूर्व,] और राज्य सरकार या जिला मजिस्ट्रेट, उपधारा (2) के अधीन सम्मति देने के पूर्व, ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा जो निरीक्षक की पंक्ति से नीचे का नहीं है, प्रारम्भिक अन्वेषण किए जाने का आदेश दे सकता है और उस दशा में ऐसे पुलिस अधिकारी की वे शक्तियां होंगी जो धारा 155 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट हैं।''

9. परिवादी-विपक्षी पक्षकार की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री विशाल तिवारी और राज्य-विपक्षी पक्षकार की ओर से विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री तापस रॉय को सुना गया जिन्होंने याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री भारती द्वारा प्राख्यित विधिक अवस्था को विवादित नहीं किया था।

10. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों एवं पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों को ध्यान में रखने पर, मैं पाता हूँ कि दिनांक 21.1.2011 के आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि अभिव्यक्त किया कि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 153A, 295A, 298 और 120B के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध याची एवं अन्य के विरुद्ध पोषणीय था जिसके कारण वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच करने के बाद उनके विरुद्ध परिवाद केस सं॰ 1314 वर्ष 2010 में अग्रसर हुए।

11. मैं इन तर्कों के प्रतिवाद से सहमत हूँ एवं इन तर्कों में बल पाता हूँ कि जाँच के लिए न्यायिक दंडाधिकारी, राँची को अभिलेख अंतरित करते हुए दिनांक 22.7.2010 को सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा लिया गया अपराध का संज्ञान और पुस्तक ''सौम्य व्यक्तित्व की तलाश'' के प्रकाशन के बीस वर्ष बाद याची के विरुद्ध पाए गए प्रथम दृष्टया अपराध के संबंध में पूर्वोक्त न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा दर्ज पश्चातवर्ती आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468(2)(c) के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित है, और इसलिए, वर्तमान मामले में याची और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध दांडिक रूप से अग्रसर नहीं हुआ जा सकता है। यह कहीं नहीं उल्लिखित किया गया है कि न्यायिक दंडाधिकारी ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 473 के अधीन अपने स्वविवेक के प्रयोग में विलंब माफ कर दिया था।

12. इसी प्रकार से, मैं सार पाता हूँ कि न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 196 के अधीन मंजूरी प्राप्त किए बिना मामले में उपस्थित होने के लिए कहते हुए याची और अन्य अभियुक्तगण को अभिकथित अपराध के लिए समन जारी करने का निर्देश दिया था जो न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आता है और विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है।

13. दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, परिवाद केस सं॰ 1314 वर्ष 2010 में याची कार्डिनल टेलीस्फोर पी॰ टोप्पो उर्फ टेलीस्फोर पी॰ कार्डिनल टोप्पो की दांडिक कार्यवाही पोषणीय नहीं थी। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा उनको समन जारी करने का निर्देश दिया गया था, के अंश सहित परिवाद केस सं॰ 1314 वर्ष 2010 में याची की दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है और यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं जया रॉय, न्यायमूर्ति

फैजू यादव उर्फ शिव कुमार यादव

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) (H.B.) No. 425 of 2010. Decided on 24th June, 2011.

बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981—धारा 12(2) सह-पठित धाराएँ 21 एवं 22—निरोध—याची बिहार राज्य में पुलिस सेवा में है—जिला दंडाधिकारी ने और राज्य सरकार ने उन तथ्यों पर विचार नहीं किया है जो प्रासंगिक थे और याची के विरुद्ध आदेश पारित करने के लिए 10-20 वर्ष पुरानी घटनाओं को विचार में लिया—आक्षेपित आदेश अपास्त—याची को निर्मुक्त किया जाएगा। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—M/s A.K. Kashyap, Swami Nath Prasad Roy, For the Petitioner; J.C. to G.P.-III, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.—याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची को बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981 (इसमें इसके बाद वर्ष 1981 के अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) के प्रावधानों के अधीन निरुद्ध किया गया है जिसके अधीन वर्ष 1981 के अधिनियम की धारा 12(2) सह-पठित धाराएँ 21 एवं 22 में दी गयी शक्ति का अवलंब लेते हुए किसी व्यक्ति, जिसका समाज विरोधी गतिविधियों में अपनी अंतर्ग्रस्तता के कारण लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए कारावास के बाहर बने रहना खतरनाक हो सकता है, को एक वर्ष के लिए निरुद्ध किया जा सकता है। याची को कुल 11 दांडिक मामलों के आधार पर जिला दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 26.7.2010 के आदेश द्वारा गिरफ्तार किया गया है और याची का अभ्यावेदन अस्वीकार कर दिया गया था और तत्पश्चात् सलाहकार बोर्ड द्वारा मामले पर विचार किया गया था जिसकी अनुशंसा पर राज्य सरकार ने निरोध आदेश संपुष्ट किया था। याची के अभ्यावेदन की अस्वीकृति के बाद और सलाहकार बोर्ड से अनुशंसा प्राप्त करने के बाद राज्य सरकार ने दिनांक 15.9.2010 के आदेश द्वारा याची का निरोध संपुष्ट किया और दिनांक 25.7.2011 तक याची का निरोध जारी रखा।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जिला दंडाधिकारी के आदेश में उल्लिखित मामलों में से 10 मामलों में याची को पहले ही दोषमुक्त किया जा चुका है और स्वयं आदेश से प्रकट है कि वे मामले वर्ष 1990, 1991, 1993, 1994, 1996 और अंत में 1998 के थे जिनमें याची को दोषमुक्त किया गया था और भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 323, 341, 452, 380, 386, 387 और 307/34 के अधीन वर्ष 2010 में केवल एक मामला लंबित था। अत:, प्राधिकारीगण में से किसी ने तथ्यों के प्रति विवेक का इस्तेमाल नहीं किया कि याची को उन घटनाओं, जो 12 वर्ष पहले हुई थी, के आधार पर निरुद्ध करना इप्सित किया गया था और उन मामलों में याची को पहले ही दोषमुक्त किया जा चुका है और वर्ष 2010 के सिवाय वर्ष 1998 के बाद याची द्वारा किसी अपराध के किए जाने का कोई अभिकथन नहीं है और वह एकमात्र मामला न्यायालय में लंबित है। निवेदन किया गया है कि निरोध का ऐसा कठोर आदेश पारित करते हुए प्राधिकारीगण से प्रासंगिक तथ्यों को विचार में लेने की अपेक्षा की जाती है किंतु इस मामले में, समस्त अप्रासंगिक तथ्यों को विचार में लिया गया है, अत:, आदेश दूषित हो गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि याची के विरुद्ध लंबित मामला विधि और व्यवस्था के बारे में हो सकता है किंतु लोक व्यवस्था के बारे में नहीं।

4. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि न केवल याची का चरित्र बुरा था जो उसके विरुद्ध दर्ज किए गए मामलों से प्रकट है और एक मामला लंबित है, बल्कि याची ने अपना नाम बदलने के बाद पुलिस की सेवा प्राप्त किया और उस तथ्य को भी ध्यान में लिया गया है। किंतु, राज्य के विद्वान अधिवक्ता यह कथन करने की दशा में नहीं हैं कि याची कैसे पुलिस सेवा में रोजगार पा सकता था जब उसके विरुद्ध 11 मामले लंबित थे और कि याची पुलिस सेवा में है, झारखंड राज्य को इसकी जानकारी मिलने के बाद क्या हुआ और अपराध करने के लिए उसे झारखंड राज्य के जेल में भेज दिया गया है।

5. हमारा सुविचारित मत है कि जिला दंडाधिकारी ने और राज्य सरकार ने उन तथ्यों पर विचार नहीं किया है जो प्रासंगिक थे और उन तथ्यों पर विचार किया है, जो अप्रासंगिक थे और याची के विरुद्ध वर्ष 2010 में आदेश पारित करने के लिए 10-20 वर्ष पुरानी घटनाओं को विचार में लिया। अत: दिनांक

26.7.2010 का आदेश और दिनांक 15.9.2010 का संपुष्टकारी आदेश अपास्त किए जाने का दायी है और इन्हें अपास्त किया जाता है। याची को तुरन्त निर्मुक्त किया जाएगा यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं हो।

रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

बिजय कुमार वर्मा उर्फ डॉ॰ बी॰ के॰ वर्मा

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal M.P. No. 78 of 2011. Decided on 27th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 354—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—लज्जा भंग करने का प्रयास–समन जारी–परिवादी याची की कर्मचारी है जो एक प्रसिद्ध डॉक्टर है–घटना अभिकथित रूप से कर्मचारियों से भरे भीड़ वाले नर्सिंग होम में हुई–महिला को छेड़ना लज्जा भंग करने की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आ सकता था ताकि धारा 354 के अधीन अपराध आकृष्ट किया जा सके–यह कहीं नहीं अभिकथित किया गया है कि याची ने कभी भी उसको निर्वस्त्र करने का प्रयास किया और यौन संभोग के लिए अनुरोध किया–परिवादी शुद्ध हृदय से नहीं आयी थी–उसका एक मात्र आशय याची से धन उद्दापित करना था–याची के विरुद्ध धारा 354 के अधीन कोई अपराध निर्मित नहीं हुआ–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित।(पैराएँ 17 से 12)

निर्णयज विधि.–2007 AIR SCW 2198—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Nityanand Pd. Sinha, Rajesh Kumar Mahtha, Kislaya Prasad, For the Petitioner; Mr. D.K. Prasad, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने परिवाद केस सं॰ 2042 वर्ष 2009 जो वर्तमान में श्री तौफीक हुसैन, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची के न्यायालय में लंबित है, में सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा पारित दिनांक 3.12.2009 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था और आरोपों का उत्तर देने के लिए याची को समन जारी करने का निर्देश दिया गया था, के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह था कि दिनांक 17.8.2009 को वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा सी॰ जे॰ एम॰, राँची के समक्ष याची के विरुद्ध परिवाद दाखिल किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कथन किया गया था कि वह एक विधवा है और अपनी माता एवं बहन के साथ चूटिया मुहल्ला, राँची में रह रही थी। अभियुक्त-याची एक प्रसिद्ध डॉक्टर था जिसका अपना नेत्र क्लिनिक-सह-नर्सिंग होम था। पहले परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 डॉ॰ (श्रीमती) रीता वर्मा के क्लिनिक में काम कर रही थी, किंतु बाद में वह नर्स के रूप में अभियुक्त-याची के नर्सिंग होम में काम करने लगी थी। वहाँ कुछ समय तक उसके साथ अच्छा व्यवहार किया गया, किंतु तत्पश्चात अभियुक्त-याची उसे आशयपूर्वक छेड़ने लगा और उसे रात के शिफ्ट में रखा ताकि उसे अकेला पाकर उसे छेड़ सके। अंत में, उसने कथन किया कि अभियुक्त याची उसे धमकी दे रहा था कि यदि उसने उसके छेड़ने के

विरुद्ध विरोध किया, उसे हटा दिया जाएगा। किंतु, वह याची के छेड़ने को सहती रही और अंततः उसने नौकरी छोड़ने का फैसला किया और उसने अनुभव प्रमाण पत्र मांगा जो उसे दिनांक 2.7.2008 को दिया गया था, किंतु, उसी रात याची अनेक असामाजिक तत्वों के साथ उसके घर आया और उसे नौकरी नहीं छोड़ने के लिए और पुनः उसके नर्सिंग होम में काम करने के लिए मनाया। उसने याची के नर्सिंग होम में पदग्रहण किया। इसी बीच, दिनांक 8 फरवरी, 2009 को उसके पति की मृत्यु हो गयी। अभियुक्त याची ने उसको पैसा देने और रखैल बनाकर रखने का प्रलोभन देते हुए अपना दुर्व्यवहार जारी रखा जिस तथ्य को उसने अपनी माता एवं बहन को बताया था। परिवादी ने अभिकथित किया कि याची ने दिनांक 6.5.2009 को अपने चैंबर में उस पर बल प्रयोग किया और जब उसने उसके एडवांसेज से इनकार किया और विरोध किया, उसे नौकरी से हटा दिया गया था। तब वह सामाजिक संगठन ''उज्जवल नारी उत्थान'' के पास गयी और पुलिस प्राधिकारीगण के पास भी गयी किंतु कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी थी और इसलिए, उसने सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष परिवाद दाखिल किया था।

3. दिनांक 7.10.2009 को सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का बयान उसके सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज किया गया था अर्थात् न्यायालय में परिवाद दाखिल करने की तिथि से दो माह से अधिक की अवधि के बाद, जिसमें अभिकथित घटना की किसी तिथि/दिन, माह को निर्दिष्ट नहीं किया था और न ही उसने कोई स्पष्टीकरण दिया था कि क्यों उसने मामला पुलिस को रिपोर्ट नहीं किया था। उसने परिवाद में अथवा सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज अपने बयान में कहीं नहीं कथन किया कि उसने ऐसे अवसरों पर जब याची ने उसे छेड़ा था उसने नर्सिंग होम में शोर मचाया था जहाँ उसके अनुसार हर समय नर्सों और स्टाफ की बृहत संख्या ड्यूटी पर रहते थे। उसने स्वीकार किया प्रत्येक दिन लगभग 60 मरीजों का इलाज किया जाता था। वस्तुतः, याची को लगभग एक माह पूर्व उसके क्रोध, मरीजों के प्रति उसका आचरण और कर्तव्य की उपेक्षा के कारण परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को याची द्वारा हटा दिया गया था जिसके लिए उसने कर्तव्य की अपनी उपेक्षा और याची के साथ रुखे व्यवहार के लिए पश्चाताप पत्र लिखकर माफी मांगी थी और नौकरी में पुनर्बहाल करने के लिए याची से अनुरोध किया था और भविष्य में उद्दंड और अवज्ञाकारी नहीं होने का और मरीजों की ईमानदारीपूर्वक देखभाल करने का वचन दिया था। उक्त वचनबंध (परिशिष्ट-2) पर उसे नर्सिंग होम की सेवा में वापस ले लिया गया था। वस्तुतः, दिनांक 18.9.2009 को वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 और अज्ञात टेलीफोन करने वाले के विरुद्ध याची ने लालपुर पुलिस के पास प्राथमिकी दर्ज किया था जिसमें याची ने अभिकथित किया था कि वह अन्य महिलाओं के साथ दिनांक 17.5.2009 को दोपहर लगभग 12 बजे उसके चैंबर में घुसी थी और महिलाओं को अंतर्ग्रस्त करने वाले झूठे मामले में उसको अंतर्ग्रस्त करने की धमकी दी थी और कि उसने अन्य महिलाओं की उपस्थिति में उससे उद्दापन धन मांगा था अन्यथा गंभीर परिणाम होंगे। उन्होंने याची को परिवादी-विपक्षी पक्षकार के साथ मामला सुलझाने के लिए कहा था जिसमें विफल रहने पर वे समाज में उसको अपमानित करवाएँगी। उसी रात, किसी अज्ञात टेलीफोन करने वाले ने रात्रि लगभग 8 बजे फोन पर उद्दापन धन मांगा था जिसकी सूचना याची ने तुरन्त पुलिस को दी थी जिसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 387/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 और उसके महिला गैंग के विरुद्ध लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 97 वर्ष 2009 (परिशिष्ट-3) दर्ज किया गया था।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री सिन्हा ने निवेदन किया कि तथ्यों और परिस्थितियों में यह सुस्पष्ट है कि परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 शुद्ध हृदय से न्यायालय के समक्ष नहीं

आयी थी क्योंकि उसने सत्य, याची द्वारा उसको सेवा से हटाए जाने का कारण, उसकी लिखित क्षमा याचना और सेवा में पुनर्बहाली के लिए उसके द्वारा दिए गए वचनबंध को दबाया था। याची के विरुद्ध यह मामला दाखिल करने के पीछे परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 का हेतु उसे ब्लैकमेल करना था और समाज में उसकी छवि, नाम और प्रतिष्ठा को धूमिल करने और उसे बदनाम करने की धमकी देकर धन का उद्दापन करना था।

5. अपना तर्क समाप्त करते हुए विद्वान अधिवक्ता, श्री सिन्हा ने आगे निवेदन किया कि विद्वान सी० जे० एम०, राँची संज्ञान लेते हुए इस चौंकाने वाले तथ्य का अधिमूल्यन करने में विफल रहे कि यह एक भीड़ वाले नर्सिंग होम, जो कर्तव्य पर उपस्थित कर्मचारियों से भरा था और जिसमें आने-जाने वाले मरीजों का ताँता लगा हुआ था, में यह नहीं घटित हो सकता था और कि परिवादी ने वहाँ उपस्थित किसी को अभिकथित घटना के बारे में नहीं बताया था जो परिवादी के मामले को न केवल संदेहास्पद और धुंधला बल्कि झूठा भी बनाता है और ऐसे परिवाद पर आधारित अपराध का संज्ञान आधारहीन है, जिसका परिणाम घोर अन्याय में हुआ। सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज बयान में परिवादी विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने कथन किया था कि याची उसको छेड़ा करता था जिसे लज्जा के विधिक भावार्थ के रूप में लेकर गलत अर्थ लगाया था। महिलाओं को छेड़ना लज्जा भंग करने की परिभाषा के अधीन नहीं आएगा ताकि भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के अधीन अपराध आकृष्ट किया जा सके। सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर अपने बयान में उसने शब्द ''छेड़ने'' (teasing) का प्रयोग किया था कि याची-अभियुक्त उसको छेड़ता है जिसे परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 की लज्जा भंग करने वाला अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है।

6. रामकृपाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 AIR SCW 2198, में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के अधीन अपराध गठित करने के लिए आवश्यक अवयवों को प्रगणित किया जो निम्नलिखित हैं:-

"8. इस प्रश्न पर आते हुए कि क्या अधिनियम की धारा 354 की कोई प्रयोज्यता है, यह ध्यान में रखना होगा कि प्रावधान उसकी लज्जा भंग करने के लिए महिला पर प्रहार अथवा दांडिक बल के प्रयोग को दंडनीय बनाता है। भा० दं० सं० की धारा 354 के अधीन अपराध के आवश्यक अवयव निम्नलिखित हैः-

(a) कि प्रहार महिला पर होना चाहिए।

(b) कि अभियुक्त ने उस पर दांडिक बल का प्रयोग किया हो।

(c) कि उसकी लज्जा भंग करने का तद्द्वारा आशय रखते हुए महिला पर दांडिक बल का प्रयोग किया गया था।

9. महिला की लज्जा को भंग करने वाले अवयवों को भा० दं० सं० में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। महिला की लज्जा का सार उसके लिंग में है। अभियुक्त का आपराधिक आशय मामले में निर्णायक है। महिला की प्रतिक्रिया अत्यंत प्रासंगिक है, किंतु इसकी अनुपस्थिति सदैव निर्णायक नहीं है। इस धारा में लज्जा स्त्री समाज के वर्ग के रूप में संबंधित लक्षण है। यह एक गुण है जो उसके लिंग के कारण महिला से संबंधित होता है। औरत को खींचने, उसकी साड़ी खोलने, उससे यौन संभोग करने का अनुरोध ऐसे कृत्य हैं जो महिला की लज्जा को भंग करेंगे, और इस बात की जानकारी, कि लज्जा भंग किए जाने की संभावना है, इसके उद्देश्य के लिए लज्जा का ऐसा भंग करने के सोचे समझे आशय के बिना अपराध गठित करने के लिए पर्याप्त है। जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है, शब्द 'लज्जा' को भा० दं० सं० में परिभाषित नहीं किया गया है। शार्टर ऑक्सफोर्ड शब्दकोश (तृतीय संस्करण) महिला के संबंध में शब्द 'लज्जा' को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करता हैः-

''आचार-व्यवहार में शालीन; आधुनिक अथवा पुरातन नहीं, शीलवान; सती साध्वी।''

7. किंतु, वर्तमान मामले में कहीं नहीं अभिकथित किया गया है कि याची ने कभी भी यौन संभोग के अनुरोध के साथ उसको निर्वस्त्र करने का प्रयास किया था क्योंकि इसे सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर उसके बयान में सिद्ध नहीं किया जा सका था जो इस उपधारणा को उद्भूत करता है कि परिवाद याचिका में उल्लिखित तथ्य सही तथ्य नहीं थे और अपराध की गंभीरता को आवर्धित करके ऐसा मामला जो कभी नहीं घटा था, रंगीन बनाने के लिए काल्पनिक तथ्यों को पुर: स्थापित किया गया था।

8. विद्वान अधिवक्ता ने जोड़ा कि यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच के क्रम के दौरान गवाहों को बुलाए बिना दाखिल परिवाद और सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज बयान के बीच विपुल विरोधाभास के बावजूद केवल परिवादी के बयान पर अपराध का संज्ञान लिया गया था। संज्ञान लेते हुए विद्वान सी० जे० एम० ने दिनांक 3.12.2009 के आक्षेपित आदेश में संप्रेक्षित किया:-

''परिवाद प्राप्त करने के बाद एस० एस० पी०, राँची से जाँच रिपोर्ट मंगायी गयी थी किंतु इसे प्राप्त नहीं किया गया था। तद्नुसार, एस० ए० पर परिवादी का परीक्षण किया गया था, जहाँ उसने प्रकट किया कि अभियुक्त ने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी लज्जा को भंग किया था। यद्यपि परिवाद दाखिल करने में विलंब हुआ है और परिवादी के साक्ष्य के समर्थन में संपुष्टिकारक सामग्री भी नहीं दी गयी है किंतु यह महिला के विरुद्ध अपराध है। अत:, मैं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से महसूस करता हूँ कि वर्तमान मामले में अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। पूर्वोक्त अभियुक्त के विरुद्ध भा० दं० सं० की धारा 354 के अधीन अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है।

तद्नुसार, भा० दं० सं० की धारा 354 के अधीन एतद् द्वारा अभियुक्त विजय कुमार वर्मा के विरुद्ध संज्ञान लिया जाता है।''

9. संज्ञान लेने के लिए सी० जे० एम० द्वारा लिए गए आधारों, जैसा यहाँ पहले निर्दिष्ट किया गया है, को पर्याप्त आधार नहीं माना जा सकता है क्योंकि रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एस० एस० पी० को कोई रिमांइडर नहीं दिया गया था और इसी प्रकार, परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 को अन्य गवाहों को प्रस्तुत करने के लिए नहीं कहा गया था क्योंकि वह एक महिला थी और उसके बयान को किसी संवीक्षा के बिना दैवीय सत्य माना गया था। यहाँ तक कि घटना की अभिकथित तिथि से परिवाद दाखिल करने में हुए दो माह के अत्यधिक विलंब का स्पष्टीकरण भी नहीं दिया गया था। परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने परिवाद में स्वीकार किया कि वह सामाजिक संगठन ''उज्जवल नारी उत्थान'' के पास गयी थी किंतु परिवाद में मौन थी कि उनके द्वारा क्या नोटिस किया गया था।

10. मैं पाता हूँ कि वर्तमान परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 के अवचार के बारे में लालपुर पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी को याची-अभियुक्त द्वारा पहले ही सूचना दी गयी थी, जैसा यहाँ पहले श्री सिन्हा के तर्क में चर्चा की गयी है, और उसके आधार पर उस व्यक्ति, जिसने उसके टेलीफोन नंबर पर धमकी भरा फोन किया था, सहित परिवादी और अन्य के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 387/34 के अधीन दिनांक 18.5.2009 को लालपुर पी० एस० केस सं० 97 वर्ष 2009 दर्ज किया गया था। मैं आगे पाता हूँ कि परिवादी प्रेमवदा देवी ने गवाहों रीना विश्वास और राजू की उपस्थिति में अपने वचनबंध में अपना दोष स्वीकार किया था और भूतकाल में की गयी गलतियों को नहीं दोहराने का वचन दिया था और नौकरी में पुनर्बहाली के लिए अनुरोध किया था। उसके वचनबंध में कहीं नहीं कथन किया गया था

कि उसके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया गया था। इसी प्रकार से, इनफॉरमेटरी के जरिए अथवा प्राथमिकी के संस्थापन के लिए संज्ञेय अपराध का लिखित रिपोर्ट दाखिल करके इस संबंध में पुलिस को अथवा प्रासंगिक समय पर कर्तव्य पर उपस्थित उसके सहयोगियों में से किसी को कोई सूचना नहीं दी गयी थी।

11. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि परिवादी शुद्ध हृदय से इस मामले में नहीं आया था और इस तर्क में प्रथम दृष्टया सार प्रतीत होता है कि उसका एकमात्र आशय याची से धन उद्दापित करना था। स्वीकृत रूप से, वह याची के नेत्र क्लिनिक की कर्मचारी थी और उसके अवचार के कारण उसे नौकरी से हटा दिया गया था। यद्यपि उसके वचनबंध पर उसे पुनर्बहाल किया गया था किंतु उसने अपना रुख नहीं बदला और आनेवाली मुसीबत को महसूस करके उसने याची के विरुद्ध परिवाद दाखिल किया जिस पर परिवाद में तथ्यों और सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर परिवादी के बयान के बीच विरोधाभासों/लोपों पर सचेत रूप से विचार किए बिना और न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना अपराध का संज्ञान लिया गया था और केवल इसलिए कि परिवादी महिला थी और विधि के समक्ष समानता और समान सुरक्षा के सिद्धांतों को भुला दिया गया था। मैं पाता हूँ कि इन तथ्यों और परिस्थितियों में, याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है। यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि परिवाद में उल्लिखित उसके पता पर नोटिस भेजे जाने के बावजूद, वह उपस्थित नहीं हुई और विद्वान अधिवक्ता के अनुसार वह इस याचिका के लंबित रहने के बारे में सचेत थी जिसमें अंतरिम स्थगन प्रदान किया गया था और इसे अवर न्यायालय को संसूचित किया गया था जहाँ वह उपस्थित थी।

12. उक्त कथित कारणों से, मैं पाता हूँ कि याची बिजय कुमार वर्मा उर्फ डॉ॰ बी॰ के॰ वर्मा की दांडिक कार्यवाही, घोर अन्याय की कोटि में आएगी। तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 3.12.2009 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 354 के अधीन उसके विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया है, सहित परिवाद केस सं॰ 2042 वर्ष 2009 में याची विजय कुमार वर्मा उर्फ डॉ॰ बी॰ के॰ वर्मा की दांडिक कार्यवाही दोनों को अभिखंडित किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

सुखलाल पुझार

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal D.B. No. 1919 of 2004. Decided on 29th April, 2011.

सत्र केस सं॰ 123 वर्ष 2002 में श्री अनंत विजय सिंह, सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 15.9.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–अपीलार्थी और मृतक के बीच झगड़े के दौरान घटना हुई क्योंकि दोनों एक ही लड़की से प्रेम करते थे–मस्तक पर केवल एक तेज धार से कटी उपहति थी–अभियोजन ने सिद्ध नहीं किया है कि अपीलार्थी की ओर से मृतक की हत्या करने का कोई पूर्व चिंतन अथवा आशय था–मामला भा॰ दं॰ सं॰

की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आता है–धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II में परिवर्तित कर दी गयी–पहले ही भुगत लिए गए अवधि (9 वर्षों) तक के लिए दंडादेश घटाया गया। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Indu Shekhar Gupta, For the Appellant; Mr. S. N. Rajgarhia, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र केस सं॰ 123 वर्ष 2002 में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए और उसे आजीवन कठोर कारावास का दंडादेश देते हुए श्री अनंत विजय सिंह, सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 15.9.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. पक्षों को सुना गया।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री इंदु शेखर गुप्ता ने निवेदन किया कि यह अधिकाधिक भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन मामला है और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि दोषपूर्ण है।

4. राज्य के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजगढ़िया ने अपीलाधीन निर्णय का समर्थन किया।

5. अ॰ सा॰ 10 जो चश्मदीद गवाह है, के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि घटना अपीलार्थी और मृतक बबनी मुर्मू के बीच झगड़े के दौरान हुई क्योंकि दोनों एक ही लड़की से प्रेम करते थे। अ॰ सा॰ 10 श्यामलाल पुझार और किसी विजय ने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया। किंतु अपीलार्थी ने अ॰ सा॰ 10 के घर से ''दाबिया'' (तेज धार वाला हथियार) लेने के बाद मृतक के मस्तक पर प्रहार किया और भाग गया। यह प्रतीत होता है कि मस्तक पर केवल एक तेज धार से कटी उपहति है। अभियोजन ने सिद्ध नहीं किया है कि मृतक की हत्या करने का अपीलार्थी की ओर से कोई पूर्वचिंतन अथवा आशय था।

6. हमारे मत में, मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आता है।

7. परिणामस्वरुप, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II में परिवर्तित की जाती है।

जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी दिनांक 10.1.2002 से अर्थात् लगभग 9 वर्षों से अभिरक्षा में है। तद्नुसार, अपीलार्थी को उसके द्वारा पहले ही भुगत लिए गए अवधि के लिए दंडादेशित किया जाता है।

8. ऊपर उपदर्शित दोषसिद्धि और दंडादेश में परिवर्तन के साथ इस अपील को खारिज किया जाता है। अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है, यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

पवन कुमार पांडे एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 351 of 2011. Decided on 30th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 406, 384, 120B, 306/511 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—दहेज की

मांग–विवाह पूर्व घटना–विवाह संपन्न नहीं किया जा सका था–इस घोषणा के साथ कि उसने अपनी पुत्री का विवाह भिन्न स्थान पर किया था और अब उसे याचीगण के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है, परिवादी द्वारा संयुक्त सुलह याचिका दाखिल किया गया–परिवादी-याचीगण के विरुद्ध मामला जारी रखने का इच्छुक नहीं है–दांडिक मामला अभिखंडित।(पैराएँ 5 से 7)

निर्णयज विधि.–(2008) 7 SCC 663—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Chandrajit Mukherjee, A.K. Das, For the Petitioners; Mr. D.K. Chakravarty, For the O.P. No.2; Mr. Azimuddin, For the State.

आदेश

याचीगण ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/406/384/120B/306/511 के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए सी॰ पी॰ केस सं॰ 1582 वर्ष 2003 से उद्‌भूत होने वाले धनबाद (सरायधेला) पी॰ एस॰ केस सं॰ 7 वर्ष 2004, जी॰ आर॰ सं॰ 51 वर्ष 2004 के तत्सम, के संबंध में अपनी संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. वर्तमान परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के समक्ष परिवाद प्रस्तुत किया था कि उसने याची सं॰ 2 विशाल चंद्र पांडे के साथ अपनी पुत्री के विवाह के लिए बातचीत किया था और ऐसी बातचीत के दौरान अभियुक्तगण ने 4 लाख रुपया नगद, 20 भर के स्वर्णाभूषण, फ्रिज, कलर टी॰ वी॰, अन्य घरेलूपयोगी वस्तुओं का मांग किया था जिसे पूरा करने में परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने अपनी अक्षमता जाहिर किया था। किंतु अभियुक्तगण द्वारा मांग परिवर्तित की गयी थी जिन्होंने परिवादी को 2 लाख रुपया डिमांड ड्राफ्ट के जरिए और शेष राशि नगद में भुगतान करने का प्रस्ताव दिया था और शर्त रखी गयी थी कि सगाई समारोह लखनउ में आयोजित किया जाएगा। दिनांक 10.8.2003 को अंगूठी समारोह/सगाई का आयोजन किया गया था जिस अवसर पर, उनको बहुमूल्य उपहार दिए गए थे और मांग के मुताबिक परिवादी ने 2 लाख रुपए नगद का भुगतान किया किंतु अभियुक्तगण ने शेष राशि के भुगतान पर जोर डाला। परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दिनांक 22.9.2003 को शेष राशि के डिमांड ड्राफ्ट का प्रबंध किया। दिनांक 5.10.2003 को लखनऊ में ''छेका'' भी आयोजित किया गया था किंतु बाद में अभियुक्तगण विवाह की तिथि नियत करने से बचने लगे और इसके लिए उन्होंने इंडिका कार और 2 लाख रुपया नगद मांगा। जब परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने मांग पूरा करने में असमर्थता अभिव्यक्त किया, उसे अपमानित किया गया था और अंततः उन्होंने विवाह से इनकार कर दिया जिस कारण उसकी पुत्री अवसादग्रस्त हो गयी और अपनी इच्छा व्यक्त किया कि वह अब जीवित रहना नहीं चाहती थी जिस पर परिवादी–वि॰ प॰ सं॰ 2 को आशंका हुई कि उसकी पुत्री आत्महत्या कर लेगी। ऐसी आशंका पर उसने परिवाद मामला दाखिल किया जिसे प्राथमिकी के सत्यापन के लिए और मामले के अन्वेषण के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 156 (3) के अधीन विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के अधीन पुलिस को भेजा गया था।

3. याचीगण का आरंभिक बचाव यह था कि अभिकथित संपूर्ण घटना, लड़के-लड़की की सगाई से ''अंगूठी समारोह'' और छेका तक, लखनऊ की क्षेत्रीय अधिकारिता के अधीन हुई थी और कि विवाह भी लखनऊ में ही तोड़ा गया था, इस प्रकार, अभिकथित घटना का कोई भी भाग सी॰ जे॰ एम॰, धनबाद की क्षेत्रीय अधिकारिता के अधीन नहीं हुआ था, इसलिए सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष दाखिल परिवाद और उस पर लिया गया संज्ञान क्षेत्रीय अधिकारिता द्वारा वर्जित था।

4. वि॰ प॰ सं॰ 2 पर नोटिस तामील किया गया था जो मामले में उपस्थित हुआ और दिनांक 19.5.2011 को सुलह याचिका दाखिल किया जिसमें कथन किया गया है कि याची सं॰ 2 विशाल चंद्र पांडे और वि॰ प॰ सं॰ 2 की पुत्री के बीच विवाह की बातचीत की प्रक्रिया में पक्षों के बीच कतिपय गलतफहमी पैदा होने के कारण परिवाद दाखिल किया गया था। आगे कथन किया गया है कि चूँकि उस तिथि पर परिवादी की पुत्री का विवाह और याची सं॰ 2 का विवाह विभिन्न स्थानों पर पहले ही हो चुका है और अपने-अपने जीवन साथियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपना दांपत्य जीवन बिता रहे थे। परिवादी ने धनबाद स्थित नोटिरी पब्लिक के समक्ष पहले ही घोषित किया था और आरक्षी-अधीक्षक धनबाद को सी॰ जे॰ एम॰ के न्यायालय में दाखिल याचिका के बारे में यह स्पष्ट करते हुए सूचित किया कि वर्तमान मामला कुछ गलतफहमियों के कारण संस्थापित किया गया था किंतु बाद में पक्षों के संबंध मधुर हो गए और अब परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 याचीगण के विरुद्ध संस्थापित वर्तमान मामले में आगे अग्रसर होना नहीं चाहता था। सगे-संबंधियों और मित्रों के मध्यक्षेप से पक्षों के बीच के विवादों का मैत्रीपूर्ण समाधान किया जा चुका है और न्याय के हित में समीचीन होगा कि वर्तमान दांडिक मामला अभिखंडित कर दिया जाए। पक्षों की ओर से दाखिल सुलह याचिका को स्वीकार करने और धनबाद (सरायधेला) पी॰ एस॰ केस सं॰ 7/2004 के संबंध में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने का अनुरोध इस न्यायालय से किया गया था। सुलह याचिका के विषय वस्तु का परिशीलन करने के बाद दोनों पक्षों ने उनकी ओर से दाखिल किए गए पृथक शपथपत्रों पर अंग्रेजी में हस्ताक्षर किया।

5. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री चंद्रजीत मुखर्जी ने निवेदन किया कि परिवाद याचिका के सादे पठन से प्रतीत होगा कि याचीगण के विरुद्ध कोई अपराध, भारतीय दंड संहिता की धारा 384 अथवा 306/511 के अधीन अभिकथित अपराध तो बात ही दूर, आकृष्ट नहीं होता है। इसी प्रकार, दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन कोई अपराध उनके विरुद्ध निर्मित नहीं किया जा सकता था चूँकि परिवादी यह सिद्ध करने में विफल रहा कि उससे धन उद्दापित किया था, किंतु, पक्षों ने अपने विवाद का समाधान कर लिया है और परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने नोटरी पब्लिक के समक्ष की गयी अपनी घोषणा द्वारा समर्थित संयुक्त सुलह याचिका दाखिल करके स्वीकार किया कि कतिपय भ्रम के कारण विवाह संपन्न नहीं किया जा सका था और तत्पश्चात उसने अपनी पुत्री का विवाह भिन्न स्थान पर किया और अब उसे याचीगण के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी। वस्तुतः, वह याचीगण के विरुद्ध मामले में अग्रसर होना नहीं चाहता था।

6. वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री डी॰ के॰ चक्रवर्ती ने निष्पक्षतः स्वीकार किया कि पक्षों ने अपने विवादों का समाधान कर लिया है जो गलतफहमियों के कारण उत्पन्न हुए थे और परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को अब इन याचीगण के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है और इसलिए सुलह याचिका को अनुज्ञात किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने प्राख्यान किया कि तथ्यों और परिस्थितियों में याचीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 384 के अधीन कोई अपराध नहीं बनाया जा सकता था और अन्य अपराध शमनीय प्रकृति के थे। इसी प्रकार याची के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 306/511 के अधीन कोई अपराध नहीं निर्मित हुआ है क्योंकि उसकी पुत्री श्वेता पांडे ने दुष्प्रेरण पर आत्महत्या करने का प्रयास नहीं किया है। श्री डी॰ के॰ चक्रवर्ती ने **(2008)7 SCC 663** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया। **मनोज शर्मा बनाम राज्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांतों को देते हुए प्रतिपादित किया:-

> *''हमारे दृष्टिकोण में, दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से उच्च न्यायालय के इनकार का समर्थन नहीं किया जा सकता है। प्राथमिकी, जिसे परिवादी द्वारा दर्ज किया*

गया था, उपदर्शित करता है कि परिवादी और अभियुक्त के बीच का विवाद निजी प्रकृति का है। निःसंदेह यह सत्य है कि प्राथमिकी पुलिस प्राधिकारीगण द्वारा किए गए अन्वेषण की आधार थी, किंतु पक्षों के बीच का विवाह व्यतिगत प्रकृति का बना रहता है। जब एक बार परिवादी ने मामले में अग्रसर नहीं होने का फैसला कर लिया है, उच्च न्यायालय मामले पर व्यवहारिक दृष्टिकोण अपना सकता था। हम यह नहीं सुझाते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय प्राथमिकी अभिखंडित करने से इनकार नहीं कर सकता था, किंतु हम यह जरूर कहते हैं कि मामले के तथ्यों में उच्च न्यायालय द्वारा अधिक व्यवहारिकता के साथ मामले पर विचार किया जा सकता था। जैसा हमने यहाँ पहले उपदर्शित किया है कि दं० प्र० सं० की धारा 482 अथवा संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति का प्रयोग स्वविवेकी है जिसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों में करना होगा।''

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों को ध्यान में रखते हुए और अभिलेख पर उनके पृथक शपथ पत्रों द्वारा समर्थित परिवादी-वि॰ प॰ सं॰ 2 और याची सं॰ 2 विशाल चंद्र पांडे उर्फ विशाल कुमार पांडे की ओर से दाखिल सुलह याचिका पर विचार करते हुए और यहाँ पहले निर्दिष्ट निर्णय पर विश्वास करते हुए सी॰ पी॰ केस सं॰ 1582 वर्ष 2003 से उद्भूत होने वाले धनबाद (सरायधेला) पी॰ एस॰ केस सं॰ 7 वर्ष 2004 में याचीगण पवन कुमार पांडे, विशाल चंद्र पांडे उर्फ विशाल कुमार पांडे और विकास चंद्र पांडे की दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है और इस याचिका को अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं जया रॉय, न्यायमूर्ति

राम सूरत सिंह

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 185 of 1998 (P). Decided on 14th June, 2011.

सेवा विधि–सेवा निवृत्ति लाभ–नगरपालिका बोर्ड द्वारा दावा की अस्वीकृति–याची नगरपालिका (अधिकारी एवं सेवक) पेंशन नियमावली, 1987 के प्रभाव में आने से पहले सेवा से सेवानिवृत हुआ–वैसे नगरपालिका कर्मचारी, जो वर्ष 1987 की नियमावली के प्रभावी होने के बाद सेवानिवृत्त हुए थे और भविष्य निधि अंशदान की राशि के आधे अथवा पूरे का भुगतान प्राप्त किये थे, पेंशन के लिए पात्र नहीं थे–अपील खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s Kanti Kumar Ojha, Rakesh Kumar, For the Appellant; Mr. Shamim Akhter, For the State.

आदेश

याची-अपीलार्थी दिनांक 31.8.1987 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ और तब उसने पटना उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दाखिल किया जिसे इस तथ्य को ध्यान में लेने के बाद दिनांक 24.3.1995 को निपटाया गया था कि याची ने अपने सेवानिवृत्ति लाभों को पाने के लिए नगरपालिका बोर्ड के समक्ष अभ्यावेदन दाखिल किया था और वह आवेदन नगरपालिका बोर्ड के समक्ष लंबित था, अतः, याची ने नगरपालिका के समक्ष अनुतोष इप्सित करने की स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका को वापस लेने

की अनुमति दिया जाना इप्सित किया था। उक्त रिट याचिका यह संप्रेक्षित करते हुए स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दी गयी थी कि दिनांक 24.3.1995 के आदेश में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है जिसका अर्थ याची के दावा पर मत की अभिव्यक्ति के रूप में लगाया जाना चाहिए। याची ने पटना उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी रिट याचिका में निवेदन किया कि यद्यपि याची ने भविष्य निधि की पूर्ण राशि निकाल लिया है, फिर भी वह नियमावली के अधीन पेंशन लाभों का दावा करने का हकदार है। नगरपालिका बोर्ड ने परिशिष्ट-5 के तहत पेंशन सहित समस्त सेवा निवृत्ति लाभों के संबंध में याची के दावे पर विचार किया और याची के दावे को अस्वीकार कर दिया। तब, याची यह रिट याचिका दाखिल करके इस न्यायालय पास आया।

2. विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षों को सुनने के बाद संप्रेक्षित किया कि नगरपालिका ने सेवानिवृत्ति पश्चात लाभों के भुगतान पर विचार किया है और आदेश परिशिष्ट-5 (ऊपर निर्दिष्ट) से प्रतीत होता है कि याची को उपदान का भुगतान किया गया है और पेंशन और अनुपयोगित अवकाश के लिए उसका दावा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि वह इन कारणों से पेंशन का हकदान नहीं है क्योंकि पेंशन का प्रावधान वर्ष 1991 में प्रभाव में आया, जब कि याची वर्ष 1987 में सेवानिवृत्त हुआ था, और नगरपालिका में अनुपयोगित अवकाश के भुगतान का कोई प्रावधान नहीं है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया है कि पेंशन और अनुपयोगित अवकाश के लिए याची का दावा सही प्रकार से अस्वीकार किया गया है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान वर्ष 1987 की नियमावली अर्थात् नगरपालिका (अधिकारी एवं सेवक) पेंशन नियमावली, 1987 की ओर आकृष्ट किया है और निवेदन किया है कि इस नियमावली को दिनांक 1.4.1986 से प्रभावी बनाया गया था और चूँकि याची दिनांक 31.8.1987 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ था, अत: वह वर्ष 1987 की नियमावली के अधीन आच्छादित था और विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह संप्रेक्षित करने में गलती की कि याची वर्ष 1991 की नियमावली द्वारा आच्छादित नहीं है। यह निवेदन भी किया गया है कि वर्ष 1987 की नियमावली के नियम 4 के उपनियम (1) के अधीन याची ने पेंशन को चुनते हुए अपना विकल्प दिया, अत: याची वर्ष 1987 की नियमावली के अधीन पेंशन का हकदार था।

4. हमने अपीलार्थी-याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और जहाँ तक अपीलार्थी-याची के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद कि विद्वान एकल न्यायाधीश इस उपधारणा पर अग्रसर हुए हैं कि याची का मामला वर्ष 1991 की नियमावली द्वारा आच्छादित था, का संबंध है, यह इस तथ्य की दृष्टि में सही प्रतीत नहीं होता है कि वर्ष 1987 की नियमावली द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से दिनांक 1.4.1986 से नियमावली प्रभाव में आयी जिसकी प्रति परिशिष्ट-A के रूप में पूरक शपथ पत्र के साथ अभिलेख पर लायी गयी है।

5. उक्त की दृष्टि में, याची कतिपय अनुपालन के अध्यधीन वर्ष 1987 की नियमावली के अधीन पेंशन लाभों का पात्र था। नियमावली स्पष्टत: प्रावधानित करती है कि नियमावली दिनांक 1.4.1986 को प्रभाव में आएगी और याची स्वीकृत रूप से नियमावली के प्रभाव में आने के बाद सेवानिवृत्त हुआ जैसा वर्ष 1987 की नियमावली के नियम 3 में प्रावधानित किया गया है। किंतु, इस नियमावली को दिनांक 13.11.1987 को गजट में प्रकाशित किया गया था और उस तिथि के पूर्व याची स्वीकृत रूप से सेवानिवृत्त हो गया था। अत:, याची के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद कि उसने वर्ष 1987 की नियमावली के नियम 4 के उपनियम (1) के अधीन पेंशन चुना था, का संबंध है, यह तर्क पर खरा नहीं उतरता है क्योंकि याची दिनांक 31.8.1987 को अथवा उस तिथि के पहले नहीं जान सकता था कि उसे पेंशन दिया जा सकता है। अत: याची दिनांक 31.11.1987 के बाद पेंशन चुन सकता था और वर्ष 1987 की नियमावली के नियम 4 के उपनियम (i) के मुताबिक वह पेंशन चुन सकता था और वर्ष 1987 की नियमावली के नियम 4 के उपनियम (i) के मुताबिक वह वर्ष 1987 की नियमावली के प्रभाव में आने से 90 दिनों के भीतर अर्थात् दिनांक 13.11.1987 से 90 दिनों के भीतर आवेदन दे सकता था।

6. अपीलार्थी–याची का प्रतिवाद कि उसने दिनांक 18.12.1987 को आवेदन देकर पेंशन के उक्त लाभ के लिए आवेदन दिया था और इसलिए, याची का मामला वर्ष 1987 की नियमावली द्वारा पूर्णत: आच्छादित है। जहाँ तक इस तथ्य का संबंध है कि याची ने दिनांक 18.12.1997 को पेंशन चुना था, सिद्ध नहीं किया गया है क्योंकि अभिकथित विकल्प आवेदन की प्रति विश्वसनीय नहीं है जो किसी पृष्ठांकन के बिना और संबंधित नगरपालिका बोर्ड द्वारा प्रति की प्राप्ति रसीद के बिना है। संबंधित नगरपालिका बोर्ड ने ऐसे आवेदन की प्राप्ति से इनकार किया है और स्वीकृत रूप से याची को भविष्य निधि की राशि का भुगतान किया गया था और अपीलार्थी–याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार याची को भविष्य निधि की कुल राशि का भुगतान नहीं किया गया है, किंतु नियम 4 के उपखंड (ii) के मुताबिक, यह स्पष्ट है कि नगरपालिका कर्मचारी, जो वर्ष 1987 की नियमावली के प्रभावी होने के बाद सेवानिवृत्त हुआ हो और भविष्य निधि अंशदान की राशि का आधा अथवा पूरा भुगतान प्राप्त किया हो, उसको पेंशन का पात्र अभिनिर्धारित नहीं किया गया था। अत:, चूँकि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हो कि याची ने वस्तुत: 1987 की नियमावली के नियम 4 के उपनियम (i) के अधीन विकल्प का आवेदन दाखिल किया था और चूँकि याची भविष्य निधि की राशि प्राप्त कर चुका है, अत:, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि याची पेंशन लाभों का हकदार था और इन्हें देने से याची को गलत रूप से इनकार किया गया था।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम एल॰ पी॰ ए॰ में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और इसे एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

राकेश सरकार उर्फ राकेश कुमार सरकार एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 428 of 2010. Decided on 30th June, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A/34 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3/4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—क्रूरता–नगद और कार की मांग–संज्ञान–आपसी सहमति द्वारा तलाक की डिक्री के अनुसरण में संबंध विच्छेद करके पक्षों के बीच विवाद का समाधान पहले ही कर लिया गया है–अपने पूर्ण और अंतिम संतुष्टि पर सूचक ने 3 लाख रुपयों का स्थायी निर्वाह भत्ता पहले ही प्राप्त कर लिया है–कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा होने की संभावना नहीं है यदि याचीगण के विरुद्ध दांडिक अभियोजन जारी रखने की अनुमति दी जाती है–संज्ञान का आदेश अपास्त। (पैराएँ 4, 6 से 8)

निर्णयज विधि.–(2003) 4 SCC 675—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Vineat Vashistha, For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, For the State; Mr. Vishal Kumar Trivedi, For the O.P. No. 2.

आदेश

याचीगण ने दिनांक 19.8.2009 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498 (A)/34 अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन सी॰

जे॰ एम॰, धनबाद द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित कतरास पी॰ एस॰ केस सं॰ 120 वर्ष 2009, जी॰ आर॰ केस सं॰ 1347 वर्ष 2009 के तत्सम, से उद्‌भूत होने वाले संपूर्ण दांडिक अभियोजन के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दिनांक 9.5.2009 को कतरास थाना के समक्ष यह कथन करते हुए लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया कि दिनांक 9.3.2008 को उसका विवाह याची सं॰ 1 राकेश कुमार सरकार के साथ हुआ था और उसके पिता ने अपनी हैसियत के अनुसार उसके विवाह के अवसर पर उपहार दिया था। किंतु उसके विवाह के तुरन्त बाद, उसके ससुराल वालों और पति ने 3 लाख रुपया नगद और अल्टो कार मांगा। जब उसने अनुरोध किया कि उसको शांति से रहने की अनुमति दी जाय, तो उसकी सास माधुरी सरकार और ननद सोमा रॉय ने इस पर ध्यान नहीं दिया और उसका भोजन रोककर और उसके बालों को पकड़ कर जमीन पर उसे घसीट कर उसे यातना दे रही थी। उसने आगे कथन किया कि जब कभी वह अपने पति को अपनी व्यथा बताती थी, वह भी अपनी माता और बहन का पक्ष लेकर उस पर प्रहार किया करता था। उसका श्वसुर बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ का सेवानिवृत्त कर्मचारी था जिसने उसको दी जा रही गालियों पर ध्यान नहीं दिया और उसे अपनी माता से धन लाने के लिए कहा करता था, जिसमें विफल रहने पर उसकी दुर्गति होती रहेगी। उसका पिता सेवानिवृत्त बैंक कर्मचारी था किंतु अभियुक्तगण उससे उन लाभों, जिन्हें उसने अपनी अधिवर्षिता के बाद पाया था, में से एक अल्टो कार और 3 लाख रुपया नगद मांग रहे थे। उसके जीवन को दु:खदायी बना दिया गया था और उस कारण से वह जीवित रहने की इच्छा गँवा बैठी थी और साथ ही आशंकित थी कि अभियुक्तगण के हाथों उसकी हत्या कर दी जा सकती थी। अंतत: दिनांक 9.5.2009 को उस पर प्रहार करने के बाद याचीगण द्वारा उसे उसके दांपत्य गृह से निकाल दिया गया था। सूचक द्वारा लिखित रिपोर्ट की प्रस्तुति पर दिनांक 9.5.2009 को ही पुलिस मामला संस्थापित किया गया था।

3. सूचक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 डालिया दास को नोटिस भेजा गया था जो अपने अधिवक्ता के माध्यम से इस याचिका में उपस्थित हुई और यह कथन करते हुए प्रति शपथ पत्र दाखिल किया कि उसके और याचीगण के बीच समस्त विवाद समाप्त हो गए हैं और उसे उनके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है चूँकि उसने याची सं॰ 1 से 3 लाख रुपयों का स्थायी निर्वाह भत्ता पहले ही प्राप्त कर लिया है और इसके पश्चात उसने और याची सं॰ 1 राकेश कुमार सरकार ने आपसी सहमति द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन तलाक ले लिया है और इस तरीके से उन्होंने अपना संबंध पूरी तरह विच्छेदित कर लिया है। अभिसाक्षी-वि॰ प॰ सं॰ 2 ने प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ 13 के संदर्भ में कथन किया कि वह याची सं॰ 1 और अन्य के विरुद्ध अनावश्यक मुकदमा में अग्रसर होना नहीं चाहती थी क्योंकि इस तथ्य कि पक्षों के बीच विवाद का समाधान पहले ही किया जा चुका है, की दृष्टि में यह स्वयं उसके हित के विरुद्ध होगा और इसलिए वह याचीगण के विरुद्ध अग्रसर होने की इच्छुक नहीं थी क्योंकि उसकी शिकायत दूर कर दी गयी थी।

4. वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने **(2003)4 SCC 675** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया। **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने उस उद्देश्य को सुनिश्चित किया जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन वैवाहिक विवाद किया गया था और संप्रेक्षित किया कि वैवाहिक विवादों में वास्तविक समाधान को प्रोत्साहित करना न्यायालय का कर्तव्य है और कि कोई हाइपर टेक्नीकल दृष्टिकोण प्रभावहीन होगा और महिला के हित के विरुद्ध और उस उद्देश्य जिसके लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन प्रावधान अधिनियमित किए गए थे, के विरुद्ध कार्य करेगा।

5. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निर्णय दिया जिसका पठन निम्नलिखित है:–

''तथ्यों पर, यह भी ध्यान में लिया गया था कि अपराध के लिए अभियुक्त को दोषसिद्ध किए जाने की कोई युक्तियुक्त संभावना नहीं थी। ऐसे मामले के विचारण का क्या होगा जिसमें पत्नी प्रश्नगत प्रकार की प्राथमिकी में लगाए गए लांछनों का समर्थन नहीं करती है। जैसा पहले गौर किया गया है, अब उसने शपथपत्र दाखिल किया है कि तनुक मिजाजी मतभेदों और विवक्षित लांछनों के कारण उसकी प्रेरणा पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। लांछन का समर्थन नहीं करने के अनेक कारण हो सकते हैं। यह इस कारण से भी हो सकता है कि उसने अपने पति और उसके परिवार के सदस्यों के साथ विवादों का समाधान कर लिया हो और जिसके परिणामस्वरुप वह फिर अपने पति के साथ रहने लगी हो जिसके साथ उसका पहले मतभेद था अथवा उसने स्वेच्छापूर्वक उसका साथ छोड़ दिया हो और स्वयं अपने बलबूते पर प्रसन्नतापूर्वक रह रही हो अथवा पक्षों की सहमति पर तलाक द्वारा पहले विवाह का विघटन हो जाने पर उसने किसी अन्य के साथ विवाह कर लिया हो अथवा कुछ अन्य समरुप आधारों पर अभियोजन का समर्थन करने में विफल रहती हो। क्या तब इस आधार पर अभिखंडन की शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करना समुचित होगा कि यह पक्षों को गैरशमनीय अपराध को शमनित करने की अनुमति देना होगा? उत्तर स्पष्टतः नकारात्मक होगा।''

6. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन आपसी सहमति द्वारा तलाक की डिक्री के अनुसरण में संबंध-विच्छेद करके पक्षों के बीच विवादों का समाधान पहले ही कर लिया गया है। सूचक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि उसने 3 लाख रुपयों का स्थायी निर्वाह भत्ता पहले ही स्वीकार कर लिया है और वह आगे अग्रसर होना नहीं चाहती थी। स्वयं उसके द्वारा प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है और प्रति शपथ पत्र की विषयवस्तु का परिशीलन करने के बाद उसने शपथ कमिश्नर के समक्ष अपने पहचानकर्ता की उपस्थिति में अंग्रेजी में हस्ताक्षर किया।

7. वर्तमान मामले में विशेष लक्षणों को विचार में लेते हुए कि वि॰ प॰ सं॰ 2 ने आपसी सहमति द्वारा तलाक की डिक्री प्राप्त करके याची सं॰ 1 के साथ विवादों का समाधान पहले ही कर लिया है और अपनी पूर्ण और अंतिम संतुष्टि पर 3 लाख रुपयों की राशि के रूप में स्थायी निर्वाह भत्ता पहले ही प्राप्त कर लिया है, मैं इसे वांछनीय और न्यायालय के हित में पाता हूँ कि कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा किये जाने की संभावना नहीं है यदि **बी॰ एस॰ जोशी के मामले (ऊपर)** की दृष्टि में याचीगण के विरुद्ध दांडिक अभियोजन जारी रखने की अनुमति दी जाती है।

8. परिणामस्वरुप, दिनांक 19.8.2009 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा सी॰ जे॰ एम॰, धनबाद द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया है, सहित याचीगण राकेश सरकार उर्फ राकेश कुमार सरकार, कृष्ण कुमार सरकार, माधुरी सरकार और सोमा रॉय का दांडिक अभियोजन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में अभिखंडित किया जाता है। तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं जया रॉय, न्यायमूर्ति

निरंजन प्रसाद देव एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 597 of 2006. Decided on 11th July, 2011.

सेवा विधि–नियुक्ति एवं प्रोन्नति–रिट याचिका की इस आधार पर खारिजी कि 16 से 21 वर्ष पहले जारी प्रत्यर्थीगण की प्रोन्नति/नियुक्ति को याचीगण चुनौती दे रहे हैं और वरीयता का विवाद्यक पहले ही सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित कर दिया गया था–अनुतोष, जिसे पहले ही सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया है, के संबंध में रिट याचिका पोषणीय नहीं है–याचीगण की रिट याचिका विलंब और चूकों से ग्रस्त है–अपीलार्थीगण एल॰ पी॰ ए॰ में सफल नहीं हो सकते हैं–एल॰ पी॰ ए॰ खारिज। (पैराएँ 7 से 13)

निर्णयज विधि.–(2004) 10 SCC 734;—Relied on; (2009)1 SCC 386; (2010)2 SCC 637; (2010) 10 SCC 63; (2011)3 SCC 436—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Shree Prakash Sinha, Satya Prakash Sinha, For the Appellants; Advocate General, For the State; M/s J.P. Gupta, I. Sen Choudhary, S.P. Roy, R.S. Mazumdar, Tapas Kabiraj, Saurav Arun, S. N. Prasad, Rajiv Ranjan, Prabhash Kumar, Manish Mishra, For the Respondents.

प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश.–यह लेटर्स पेटेन्ट अपील डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6629 वर्ष 2005 (अरविंद कुमार एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 14 जुलाई, 2006 के आदेश को चुनौती देने के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा दिनांक 14 दिसंबर, 1987 की अधिसूचना सं॰ 5775 के तहत जारी प्रत्यर्थीगण में से कुछ की प्रोन्नति/नियुक्ति के आदेश को और दिनांक 13 अप्रिल, 1988 की अधिसूचना सं॰ 1671 और दिनांक 10 अगस्त, 1989 की अधिसूचना सं॰ 5001 के तहत जारी अन्य प्रत्यर्थीगण की नियुक्ति के आदेशों को भी चुनौती देने वाली याची की रिट याचिका यह संप्रेक्षण करने के बाद खारिज कर दी गयी थी कि याचीगण 16 से 21 वर्ष पहले जारी प्रत्यर्थीगण एवं अन्य की प्रोन्नति और/अथवा नियुक्ति को चुनौती दे रहे हैं, और जहाँ तक वरीयता के विवाद्यक का संबंध है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **(2004)10 SCC 734** में प्रकाशित **संजय कुमार सिन्हा II बनाम बिहार राज्य** के मामले में दिए गए निर्णय द्वारा सुस्थापित कर दिए जाने के चलते आगे किसी आदेश का दिया जाना आवश्यक नहीं है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी संप्रेक्षित किया कि राज्य सरकार से **संजय कुमार सिन्हा II (ऊपर)** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के निबंधनानुसार कृत्य करने की अपेक्षा की जाती है और यदि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के उल्लंघन में दिनांक 30 नवंबर, 2004 की अनंतिम ग्रेडेशन सूची जारी की गयी है और उसे याचीगण द्वारा प्राधिकारीगण के ध्यान में लाया गया है, राज्य सरकार से ऐसी आपत्ति को शीघ्रतिशीघ्र विनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे संप्रेक्षित किया कि राज्य सरकार उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से चार माह के भीतर वरीयता सूची को अंतिम रूप देगी।

2. दिनांक 14 जुलाई, 2006 के उक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थीगण ने यह लेटर्स पेटेन्ट अपील दाखिल किया है।

3. इस न्यायालय ने दिनांक 16 मई, 2011 को पाया कि वर्तमान लेटर्स पेटेंट अपील में केवल परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन के लिए केवल नोटिसों को जारी किया गया था क्योंकि अपील 107 दिनों के विलंब के बाद दाखिल की गयी थी और चूँकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 14 जुलाई, 2006 के आक्षेपित आदेश के तहत राज्य को **संजय कुमार सिन्हा-II के मामले** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुकूल किसी निर्णय को लेने का निर्देश दिया था, अतः अन्य प्रत्यर्थीगण

पर विलंब की माफी के लिए नोटिस को तामील किए बिना मामले के गुणागुण पर विचार करना समुचित पाया गया था क्योंकि यदि पश्चातवर्ती विकास ने इस अपील को निष्फल बना दिया है, तब तामील नहीं किए गए प्रत्यर्थीगण को नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं है। विद्वान महाधिवक्ता से मामले में न्यायालय की सहायता करने का अनुरोध किया गया था जिस पर विद्वान महाधिवक्ता ने इंगित किया कि पूर्व रिट याचिका में वह रिट याचीगण के अधिवक्ता थे और उस तथ्य को ध्यान में लेने के बाद इस न्यायालय ने विद्वान महाधिवक्ता से केवल मामले की पृष्ठभूमि पर संबोधित करने के लिए न्यायालय की सहायता करने का अनुरोध किया था और जिसके अनुसरण में विद्वान महाधिवक्ता ने हमारा ध्यान **संजय कुमार सिन्हा-II (ऊपर)** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की ओर आकृष्ट किया था जिस निर्णय पर पहले ही विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया है। किंतु, हमने अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक सुना है कि क्या पश्चातवर्ती घटना की दृष्टि में वर्तमान लेटर्स पेटेंट अपील निष्फल बन गया है या नहीं।

4. मामले के तथ्यों को स्मरण करना समुचित होगा। रिट याचीगण ने प्रत्यर्थी सं॰ 9 और 10 की नियुक्ति को चुनौती दिया है जिन्हें प्रतियोगिता परीक्षा में स्पर्धा द्वारा सहायक वन संरक्षक के पद पर वर्ष 1985 में नियुक्त किया गया था और दिनांक 14 दिसंबर, 1987 की अधिसूचना सं॰ 5775 के तहत नियुक्त किया गया था जिस नियुक्ति को सामान्य कोटि के उम्मीदवारों के लिए विज्ञापित सत्रह रिक्तियों के परे दिया गया था और दस उम्मीदवारों अर्थात् प्रत्यर्थी सं॰ 11 से 13 और प्रत्यर्थी सं॰ 14 से 20 की नियुक्ति के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है जिनकी नियुक्ति दो चरणों में दिनांक 13 अप्रिल, 1988 की अधिसूचना सं॰ 1671 के तहत और दिनांक 10 अगस्त, 1989 की अधिसूचना सं॰ 5001 के तहत की गयी थी जिन्हें, याचीगण के अनुसार, किसी विज्ञापन के बिना किया गया था और इन्हें केवल भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे प्रशिक्षण महाविद्यालय में बिहार राज्य को आवंटित रिक्त पदों को भरने के लिए किया गया था। तब याचीगण ने वर्ष 1987 बैच के प्रोमोटी सहायक वन संरक्षकों (प्रत्यर्थीगण सं॰ 21 से 41) को भूतलक्षी प्रभाव से दी गयी वरीयता के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है जिन्हें, याचीगण के अनुसार, पहले ही अविद्यमान सारवान रिक्तियों के विरुद्ध अनियमित रूप से नियुक्त किया गया अभिनिर्धारित किया गया था जैसा **संजय कुमार सिन्हा-II (ऊपर)** के मामले में माननीय न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। तब याचीगण ने आगे प्रत्यर्थी सं॰ 42 की प्रोन्नति और पारिणामिक वरीयता के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है, जिसे मुख्य वन संरक्षक, बिहार के दिनांक 23 सितंबर, 1985 के पत्र, जिसके द्वारा यह पहले ही प्रकट किया गया था कि उक्त प्रोन्नति के लिए कोटा पहले ही नियुक्त व्यक्तियों के स्रोत द्वारा पूर्व अधिभोग में रहा था, के उल्लंघन में बिहार गजट द्वारा 31 दिसंबर, 1985 को सहायक वन संरक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया था। याचीगण वर्ष 1985 की परीक्षा के 25 प्रत्यक्ष तौर पर नियुक्त व्यक्तियों के ऊपर दिनांक 26 जुलाई, 2004 की संकल्प सं॰ 2920 के तहत वन एवं पर्यावरण विभाग, झारखंड सरकार द्वारा वरीयता की सूची में प्रथम स्थान पर प्रत्यर्थी सं॰ 42 की स्थापना के विरुद्ध व्यथित हैं। तब आगे याचीगण ने दिनांक 30 मार्च, 1990 के प्रभाव से प्रोमोटी सहायक वन संरक्षकों (प्रत्यर्थी सं॰ 43 से 48) को दिए गए भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति और पारिणामिक वरीयता के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है, जिसे भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति इस तथ्य के बावजूद दिया गया था कि याचीगण के नामों को दिनांक 3 नवंबर, 1989 की पत्र सं॰ 363 के तहत काफी पहले बिहार लोक सेवा आयोग द्वारा अनुशंसित किया गया था। तब बावजूद इसके कि उन्होंने दिनांक 26 दिसंबर, 1989 के पहले वन प्रशिक्षण में प्रतिष्ठा डिग्री अर्जित किया था सहायक वन संरक्षकों के रूप में बिहार वन सेवा कैडर में प्रत्यर्थी सं॰ 49 और 50 के अधिष्ठापन

के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है क्योंकि यह बिहार वन सेवा नियमावली, 1953 में जोड़े गए नियम 3 (aa) के उल्लंघन में है। तब आगे याचीगण ने दिनांक 30 नवंबर, 2004 की अनंतिम ग्रेडेशन सूची के प्रति अनेक आपत्तियों की दृष्टि में अंतिम ग्रेडेशन सूची को प्रकाशित किए बिना प्रत्यर्थीगण को भारतीय वन सेवा कैडर में अधिष्ठापन अथवा किन्हीं प्रोन्नति लाभों के लिए राज्य वन सेवा कैडर के अधिकारियों के नामों को भेजने से झारखंड सरकार की दिनांक 26 जुलाई, 2004 की संकल्प सं॰ 2920 और अनंतिम ग्रेडेशन सूची पर कार्रवाई करने से **संजय कुमार सिन्हा-II (ऊपर)** के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में दिनांक 30 नवंबर, 2004 की अनंतिम ग्रेडेशन सूची के प्रति आपत्ति को दृष्टि में रखते हुए अंतिम ग्रेडेशन सूची प्रकाशित करने के लिए प्रत्यर्थी-झारखंड राज्य को निर्देशन देने के लिए प्रार्थना किया है।

5. ऊपर निर्दिष्ट अनुतोषों का कोरा परिशीलन स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि याचीगण ने अनेक विभिन्न अनुतोषों के लिए प्रार्थना किया है, जिनका एक-दूसरे के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं हो सकता है, किंतु, चूँकि इस न्यायालय के विद्वान एकल पीठ का दृष्टिकोण था कि 16 से 21 वर्षों बाद प्रत्यर्थीगण की प्रोन्नति/नियुक्ति को दी गयी याचीगण की चुनौती ग्रहण नहीं की जा सकती है और चूँकि, वरीयता से संबंधित विवाद्यक पहले ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है और **संजय कुमार सिन्हा-II (ऊपर)** के मामले के निर्णय में मार्गदर्शक सिद्धांत पहले ही दिए जा चुके हैं, तब राज्य को उक्त मामले में अभिव्यक्त दृष्टिकोणों के अनुकूल कृत्य करना चाहिए और इसलिए हम इस सीमित विवाद्यक का परीक्षण कर सकते हैं कि क्या अपीलार्थीगण ऊपर निर्दिष्ट और अन्य नियुक्ति को चुनौती देने के लिए लेटर्स पेटेंट अपील को पोषित कर सकते हैं और क्या अपीलार्थीगण **संजय कुमार सिन्हा-II के मामले** के प्रकाश में अधिकारियों की वरीयता के उक्त दावा के संबंध में निर्णय लेने के लिए राज्य को निर्देश जारी करवाकर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रदत्त अनुतोष के परे किसी अनुतोष के हकदार हैं।

6. ऊपर निर्दिष्ट तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थीगण ने दिनांक 14 दिसंबर, 1987 की अधिसूचना सं॰ 5775 के तहत की गयी नियुक्ति को चुनौती दिया था और अपीलार्थीगण वर्ष 1990 के नियुक्त व्यक्ति हैं जैसा रिट याचिका के पैराग्राफ-4 में स्वीकार किया गया है। रिट याचीगण वर्ष 1990 बैच के प्रत्यक्ष भर्त्ती हुए व्यक्ति हैं। **संजय कुमार सिन्हा-II** के मामले में 14 दिसंबर, 1987 को की गई नियुक्ति चुनौति के अधीन की एवं मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया एवं **(2004) 10 SCC 734** में प्रकाशित **संजय कुमार सिन्हा-II एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 14 दिसंबर, 1987 के आदेश के तहत की गयी नियुक्ति को दी गयी चुनौती का परीक्षण किया था, जब इसे सेवारत प्रोमोटियों द्वारा चुनौती दी गयी थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार वन सेवा के कैडर की बल और प्रोमोटियों तथा प्रत्यक्ष भर्त्ती हुए लोगों के लिए पद के वितरण पर विचार करने के बाद पैराग्राफ 12 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:-

> *''न्यायिक कार्यवाहियों में दाखिल शपथ पत्रों के जरिए प्रत्यर्थीगण की ओर से की गयी स्वीकृतियों से स्पष्ट है कि वर्ष 1987 में वादों की मंजूर संख्या उपलब्ध नहीं थी जब प्रत्यर्थीगण को ए० सी० एफ० के रूप में प्रोन्नत किया गया था बल्कि अविद्यमान पदों के विरुद्ध प्रोन्नतियाँ की गयी थी। क्या ऐसी प्रोन्नतियाँ विशेषतः अपीलार्थीगण की भाँति सेवा में सम्यक् रूप से नियुक्त अन्य अधिकारियों के अतिरिक्त एवं इससे अधिक संबंधित अधिकारियों को कोई अधिकार प्रदान कर सकती हैं? इस संबंध में हमें गौर करना होगा कि बिहार वन सेवा नियमावली का नियम 35 प्रावधानित करता है कि सेवा*

में नियुक्त अधिकारियों की वरीयता को उनकी सारवान नियुक्ति की तिथि के संदर्भ में विनिश्चित करना होगा। सेवा का सदस्य बनने के लिए संबंधित व्यक्तियों को कम से कम दो शर्तों को संतुष्ट करना होगा,□प्रथमतः नियुक्ति सारवान हैसियत में होनी चाहिए, और द्वितीयतः, नियुक्ति को नियमावली के अनुसार सेवा के पद पर और सारवान रिक्ति के कोटा के भीतर होना होगा। (केशव चंद्र जोशी बनाम भारत संघ के मुताबिक)''।

आगे, पैराग्राफ-13 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:-

''वर्तमान मामले में दो शर्तों में से किसी को भी संतुष्ट नहीं किया गया है। पद जिन पर सारवान नियुक्तियाँ की जानी थी उपलब्ध नहीं थे, अतः, सेवा में नियुक्ति नहीं हो सकती थी जब सेवा में नियुक्ति नहीं हुई है सेवा में सारवान नियुक्ति की तो बात ही दूर, और प्रोमोटियों को उनकी प्रोन्नतियों की तात्पर्यित तिथि के प्रभाव से वरीयता नहीं दी जा सकती थी।''

7. किंतु, यह अभिनिर्धारित करने के बावजूद कि प्रासंगिक समय पर नियुक्ति के लिए पद उपलब्ध नहीं थे जिन पर दिनांक 14 दिसंबर, 1987 के आदेश के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन व्यक्तियों की नियुक्तियाँ को अवैधानिक घोषित नहीं किया एवं न ही उक्त नियुक्ति को अभिखंडित किया था। किंतु, दिनांक 14 दिसंबर, 1987 के आदेश के फलस्वरुप नियुक्त व्यक्ति अर्थात् प्रत्यर्थीगण के ऊपर अपीलार्थीगण की वरीयता के संबंध में अन्य अनुतोष के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार प्रत्यर्थीगण-प्रोमोटियों जिन्हें स्पष्टत: दिनांक 14 दिसंबर, 1987 के आदेश के तहत कोटा और उपलब्ध पदों के आधिक्य में नियुक्त किया गया था, की नियुक्ति को नियमित कर सकती है किंतु साथ ही अभिनिर्धारित किया कि ऐसे प्रत्यर्थीगण को अपीलार्थीगण-याचीगण से अधिक वरीयता नहीं दी जा सकती है। स्पष्टत: प्रत्यक्ष नियुक्त व्यक्ति माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थीगण थे और रिट याचीगण भी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तब दिनांक 24 जुलाई, 1989 की वरीयता सूची को अभिखंडित कर दिया और राज्य सरकार को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुरूप प्रत्यर्थीगण के ऊपर अपीलार्थीगण की वरीयता नियत करते हुए नयी वरीयता सूची जारी करने का निर्देश जारी किया गया था।

8. उक्त की दृष्टि में, दिनांक 14 दिसंबर, 1987 की अधिसूचना द्वारा की गयी नियुक्ति को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती है क्योंकि उक्त विवाद्यक माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित कर दिया गया है, यद्यपि अन्य व्यक्तियों, और न कि याचीगण द्वारा एवं प्रत्यक्ष नियुक्त लोगों द्वारा, चुनौती दिए जाने पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त नियुक्ति को अभिखंडित करने से इनकार कर दिया। अत:, जहाँ तक इस अनुतोष का संबंध है, रिट याचिका पोषणीय नहीं है। केवल यहीं नहीं, इस तथ्य कि विवाद्यक माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है, के अतिरिक्त विद्वान एकल न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में भी सही थे कि याचीगण 16 से 21 वर्षों के विलंब के बाद न्यायालय के पास आए हैं और यह ताथ्यिक रूप से सही है और इसके अतिरिक्त, याचीगण दिनांक 14 दिसंबर, 1987 के आदेश द्वारा की गयी नियुक्ति के आदेश को चुनौती दे रहे हैं जबकि स्वयं उनका कैडर में जन्म केवल वर्ष 1990 में हुआ है और इसलिए यदि उन्हें प्रत्यक्ष भर्ती कोटा अथवा प्रोन्नति कोटा में किसी रिक्ति के हुए बिना नियुक्ति दिए जाने को लेकर शिकायत थी, तब यह तथ्य उनकी जानकारी में था जब उन्होंने आरंभ की गयी उस प्रक्रिया में नियुक्ति इप्सित किया था जिसमें उन्हें स्वयं वर्ष 1990 में चयनित किया गया था, तब भी याचीगण की रिट याचिका विलंब और चूकों से ग्रस्त है जिसे उस अवस्था, जिसे एक दशक पहले

और **संजय कुमार सिन्हा-II (ऊपर)** में वर्ष 2004 में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा सुनिश्चित कर दिया गया है, को अस्त व्यस्त करने के लिए वर्ष 2005 में दाखिल किया गया है। अत:, इसलिए भी याचीगण किसी अनुतोष के हकदार नहीं थे। ऊपर के अतिरिक्त, यदि याचीगण **संजय कुमार सिन्हा-II (ऊपर)** के मामले में दिए गए निर्णय का लाभ लेना चाहते हैं, तब भी ये याचीगण टाल मटोल कर रहे थे और **(2011)3 SCC 436** में प्रकाशित **उड़ीसा राज्य एवं अन्य बनाम ममता मोहंती** के मामले में दिए गए और याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए (यद्यपि भिन्न बिंदु पर) सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में ''याचीगण गहरी निद्रा से जाग नहीं सकते हैं और मामले में, जहाँ कुछ परिश्रमी व्यक्ति युक्तियुक्त समय के भीतर न्यायालय के पास आए थे, निर्णय से संवेज पाने का दावा नहीं कर सकते हैं।''

9. उक्त के अतिरिक्त, याचीगण द्वारा एक अन्य अनुतोष का दावा किया गया है कि प्रत्यर्थीगण जिन्हें अज्ञात कारणों से वरीयता सूची में, जिसके लिए अर्नंतिम वरीयता सूची दिनांक 30 नवंबर, 2004 को प्रकाशित की गयी थी, अपनी आपत्ति दाखिल किया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार वरीयता सूची को अंतिम रूप देने में याचीगण की आपत्तियों पर फैसला करने के लिए बाध्य है। वस्तुत:, अपीलार्थीगण ने उस अनुतोष को पाया था जिसे उनके अंतिम अनुतोष के रूप में रिट याचिका में इप्सित किया गया था। अत:, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी आदेश के आलोक में इन रिट याचीगण-अपीलार्थीगण के लिए लेटर्स पेटेंट अपील दाखिल करने का अवसर नहीं था जैसा ऊपर निर्दिष्ट किया गया है।

10. जहाँ तक अपीलार्थीगण की आरंभिक शिकायत कि याचीगण द्वारा दाखिल अभ्यावेदन के बावजूद राज्य सरकार वरीयता सूची को अंतिम रूप देने में टालमटोल कर रही थी, का संबंध है, उसके लिए अब अंतिम वरीयता सूची घोषित कर दी गयी है जैसा अपीलार्थी-रिट याची द्वारा दिनांक 7 जून, 2011 के पूरक शपथपत्र में स्वीकार किया गया है और याचीगण-अपीलार्थीगण ने स्वीकार किया कि बिहार सरकार ने उच्च स्तरीय कमिटि की दिनांक 29.6.2010 की अनुशंसा को स्वीकार किया और तद्नुसार दिनांक 2 जुलाई, 2010 को अंतिम ग्रेडेशन सूची प्रकाशित किया और जिसकी प्रति पहले ही पूरक प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न परिशिष्ट-E के रूप में बिहार राज्य द्वारा अभिलेख पर लायी गयी है। अपीलार्थीगण के अनुसार, दिनांक 2 जुलाई, 2010 की इस वरीयता सूची द्वारा अपीलार्थीगण को अनुतोष दिया गया है जैसी प्रार्थना पैरा B एवं E में की गई थी किंतु, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि दिनांक 2 जुलाई, 2010 की अंतिम वरीयता सूची को चुनौती देने के लिए अनेक रिट याचिकाएँ और प्रति रिट याचिकाएँ दाखिल की गयी है और वे रिट याचिकाएँ लंबित हैं। इस प्रकार, अंतिम ग्रेडेशन सूची पर विचार करने और प्रकाशित करने के लिए राज्य सरकार को निर्देश देने के लिए रिट याचीगण-अपीलार्थीगण द्वारा इप्सित अनुतोष भी परिपूर्ण कर दिया गया है और यदि, अपीलार्थीगण उक्त सूची के विरुद्ध, संपूर्ण रूप से अथवा अंशत: व्यथित हैं, तब यह एक पृथक और स्वतंत्र वाद हेतुक है और दिनांक 2 जुलाई, 2010 की वरीयता/अंतिम ग्रेडेशन सूची पर न्याय निर्णयन के लिए इस मुकदमें को बढ़ाया नहीं जा सकता है और, इसलिए, वर्तमान लेटर्स पेटेंट अपील निष्फल बन गया है।

11. यह एक अन्य विवाद्यक है कि क्या दिनांक 2 जुलाई, 2010 को बिहार सरकार द्वारा घोषित ग्रेडेशन सूची झारखंड सरकार पर बाध्यकारी है और यदि झारखंड राज्य इस अवस्था को स्वीकार नहीं कर रहा है, जैसा अपीलार्थीगण द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि बिहार राज्य द्वारा प्रकाशित सूची झारखंड राज्य पर बाध्यकारी है, तब यह भी एक पश्चातवर्ती वाद हेतुक है और यह लेटर्स पेटेंट अपील

याचीगण-अपीलार्थीगण और झारखंड राज्य के बीच एक बिल्कुल नए वाद में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, जिसका पक्षों द्वारा अभिवचनित तथ्यों के आलोक में, रिट याचीगण द्वारा दावा किए गए मूल अनुतोषों के साथ कोई संबंध नहीं है।

12. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपने इस प्रतिवाद के समर्थन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों को उद्धृत किया है कि पदों की संख्या के परे की गयी नियुक्ति और अविद्यमान पदों के विरुद्ध की गयी नियुक्ति पूर्णत: गैरकानूनी है और इसे **मुकुल सायकिया एवं अन्य बनाम असम राज्य एवं अन्य, (2009)1 SCC 386; राखी रे बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय एवं अन्य, (2010)2 SCC 637; डॉ॰ एम॰ एस॰ पाटिल बनाम गुलबर्ग विश्वविद्यालय एवं अन्य, (2010)10 SCC 63; उड़ीसा राज्य एवं अन्य बनाम ममता मोहंती, (2011)3 SCC 436** मामलों में दिए गए निर्णयों पर विश्वास करते हुए किसी समय चुनौती दी जा सकती है। किंतु, हमारा सुविचारित मत है कि **संजय कुमार सिन्हा-II (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में ऊपर निर्दिष्ट वर्ष 1987 की नियुक्ति को वर्ष 2005 में दी गयी दूसरी चुनौती संपोषित नहीं की जा सकती है जब एकबार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त चुनौती को ग्रहण करने से इनकार कर दिया था।

13. संक्षेप में और सार में, हमारे मत में, नियुक्ति को दी गयी याचीगण की चुनौती को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सही प्रकार से हमारे द्वारा ऊपर उल्लिखित कारणों से अस्वीकार कर दिया गया था। अपीलार्थीगण लेटर्स पेटेंट अपील में सफल नहीं हो सकते हैं और आगे जहाँ तक उनके अभ्यावेदन पर विचार करने और अंतिम वरीयता सूची को प्रकाशित करने के उनके अनुरोध का संबंध है, यह पहले ही दिया जा चुका है और यदि, अपीलार्थीगण बिहार राज्य द्वारा प्रकाशित सूची, जिसे झारखंड राज्य पर बाध्यकारी नहीं माना गया है, के आधार सहित किसी अन्य आधार पर भी नयी अंतिम वरीयता सूची के विरुद्ध व्यथित हैं, तब यह एक पृथक और स्वतंत्र वाद हेतुक है जिसके लिए इस लेटर्स पेटेंट अपील में और मूल रिट में रिट याचीगण अपीलार्थीगण को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता है। अत:, अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल लेटर्स पेटेंट अपील ऊपर उल्लिखित कारणों से खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

राजेन्द्र पांडे

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 534 of 2008. Decided on 7th July, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 409, 420 एवं 120-B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—लोक सेवक द्वारा न्यास का दांडिक भंग, छल और षडयंत्र—आदिवासी कल्याण प्रोजेक्टों में धन का गबन—विभागीय कार्यवाही में याची को समस्त आरोपों से विमुक्त किया गया—याची को उच्चतर पद पर प्रोन्नत भी किया गया—याची को समस्त आरोपों से विमुक्त किया गया जो प्राथमिकी में अभिकथित अपराधों के बारे में अधिक प्रासंगिक थे—याची का दांडिक अभियोजन न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा—दांडिक कार्यवाही अपास्त। (पैराएँ 6 से 9)

निर्णयज विधि.—1996 SCC (Cri) 897—Relied on.

अधिवक्तागण.—M/s P.P.N. Roy, Satya Prakash Sinha, For the Petitioner; Mrs. Nilu Sinha, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—याची ने अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, खूँटी के समक्ष लंबित भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409, 420 और 120(B) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए खूँटी पी॰ एस॰ केस सं॰ 83/2006, जी॰ आर॰ सं॰ 412/2006 के तत्सम, के संबंध में प्राथमिकी और उसके संपूर्ण दांडिक अभियोजन के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि श्री शत्रुघ्न पाठक, उपनिदेशक, कल्याण, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन, राँची ने खूँटी पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष लिखित रिपोर्ट दाखिल किया और उसमें कथन किया कि आदिवासी कल्याण कमिश्नर, राँची ने दिनांक 31.1.2006 को खूँटी एम॰ इ॰ एस॰ ओ॰ क्षेत्र के अधीन प्रोजेक्ट सं॰ 15/2005-06, 10/2005-06, 8/2005-06, 7/2005-06, 6/2005-06 और 1/2005-06 वाले अनेक प्रोजेक्टों का स्थल निरीक्षण किया और रिपोर्ट किया कि प्रोजेक्टों के एजेन्ट, श्री राजेन्द्र पांडे, कनीय अभियंता, एम॰ ई॰ एस॰ ओ॰ क्षेत्र, खूँटी अर्थात् वर्तमान याची ने दिनांक 5.4.2005 को प्रोजेक्टों में से प्रत्येक में 7500/- रुपये का अग्रिम निकाल लिया था और किए गए काम का माप किए बिना पुनः एक या अन्य प्रोजेक्टों में 60,000/- रुपए, 70,000/- रुपए और 80,000/- रुपए की दूसरी किस्त को निकाल लिया। लिखित रिपोर्ट में आगे अभिकथित किया गया था कि जाँच रिपोर्ट के मुताबिक ऊपर निर्दिष्ट छह प्रोजेक्टों में से प्रत्येक में लगभग 30,000/- रुपए से 40,000/- रुपए तक का गबन किया गया था और तद्नुसार सचिव, कल्याण विभाग, झारखंड सरकार के अनुदेश के अधीन कानूनी कार्रवाई के लिए याची राजेन्द्र पांडे, कनीय अभियंता के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दिया गया था।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय ने आरंभ में निवेदन किया कि इसी आरोप के लिए याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी थी और जाँच के बाद, सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था और सरकार ने जाँच अधिकारी के रिपोर्ट से संतुष्ट होने के बाद, दिनांक 17.3.2008 के आदेश द्वारा याची को उसके विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोपों से विमुक्त कर दिया और उक्त आदेश की प्रति मेमो सं॰ 722 दिनांक 17.3.2008 (परिशिष्ट-2) के तहत याची को अग्रसारित की गयी थी जिसके आधार पर उसे सहायक अभियंता, सिंचाई विभाग, झारखंड सरकार, राँची के पद पर प्रोन्नत किया गया था।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री रॉय ने यहाँ ऊपर निर्दिष्ट याचिका के परिशिष्ट-2 के संदर्भ में आगे स्पष्ट किया कि विभागीय कार्यवाही में याची राजेन्द्र पांडे के विरुद्ध चार आरोपों को विरचित किया गया था, जो प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों के लगभग समरुप थे, किंतु जाँच रिपोर्ट ने उपदर्शित किया कि उसके विरुद्ध आरोपों में से किसी को स्थापित नहीं किया जा सका था और इसलिए, झारखंड सरकार के उपसचिव ने सरकार के अनुदेश के अधीन संप्रेक्षित किया कि याची के विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोपों और संपूर्ण अभिकथनों की संवीक्षा के बाद आरोपों को सिद्ध किया गया नहीं पाया गया था और इसलिए, उसे समस्त आरोपों से विमुक्त कर दिया गया था।

5. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि **पी॰ एस॰ राज्य बनाम बिहार राज्य, 1996 Supreme Court Cases (Cri) 897** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सदृश विवाद्यक विचारार्थ आया था जिसमें सर्वोत्तम न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:-

''आरंभ में ही हम इंगित कर सकते हैं कि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस अवस्था को स्वीकार किया कि किसी दांडिक मामले में दोष स्थापित करने के लिए अपेक्षित प्रमाण का स्तर विभागीय कार्यवाही में दोष स्थापित करने के लिए अपेक्षित प्रमाण के स्तर कहीं अधिक उच्चतर है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वर्तमान मामले में, विभागीय कार्यवाही में और दांडिक कार्यवाही में आरोप एक और वही है। उन्होंने विभागीय कार्यवाही में दिए गए निष्कर्षों और इसके अंतिम परिणाम को भी विवादित नहीं किया था। इन आधारों पर, यदि हम आगे अग्रसर होते हैं, तब अपीलार्थी के मामले को स्वीकार करने में कोई मुश्किल नहीं है। क्योंकि यदि आरोपों, जो सदृश है, को विभागीय कार्यवाही में स्थापित नहीं किया जा सकता था और मूल्यांककों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में स्वीकृत विसंगतियों की दृष्टि में, हमें आश्चर्य होता है कि दांडिक कार्यवाही में अपीलार्थी के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए क्या है।''

सर्वोच्च न्यायालय ने आगे संप्रेक्षित किया,

''दोहराने के जोखिम पर, हम कथन कर सकते हैं कि आरोप को सिद्ध नहीं किया गया था और उस आधार पर अपीलार्थी को विभागीय कार्यवाही में मुक्त कर दिया गया था। इस संबंध में, हम हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल में इस न्यायालय के निर्णय को लाभदायी रूप से उद्धृत कर सकते हैं। इस न्यायालय ने लगभग समस्त पूर्व निर्णयों पर विचार करने के बाद प्राथमिकी अथवा परिवाद के अभिखंडन के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण शक्ति अथवा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित मार्गदर्शक सिद्धांतों को अधिकथित किया है। इस न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित कियाः (SCC पृष्ठ 378-79, पैराएँ 102-3)

''अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण शक्ति अथवा संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों के और अध्याय XIV के अधीन संहिता के अनेक प्रासंगिक प्रावधानों के व्याख्या की पृष्ठभूमि में, जिन्हें हमने ऊपर निकाला और उद्धृत किया है, हम उदाहरणों के जरिए मामलों की निम्नलिखित श्रेणियों को देते हैं जिनमें किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अथवा अन्यथा न्याय का उद्देश्य सुरक्षित करने के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, यद्यपि किसी सटीक, सुपरिभाषित और पर्याप्त रूप से धारामय और अनम्य मार्गदर्शक सिद्धांतों अथवा कठोर फार्मूलों को अधिकथित करना और मामलों के अनेकानेक प्रकारों की सूची देना जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, संभव नहीं हो सकता है।

(1) जहाँ प्राथमिकी अथवा परिवाद में किए गए अभिकथन, यदि उनको ज्यों का त्यों माना जाता है और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाता है, तब भी किसी अपराध को प्रथम दृष्टया गठित नहीं करते हैं अथवा अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहाँ प्राथमिकी में किए गए अभिकथन और प्राथमिकी में संलग्न अन्य सामग्रियाँ, यदि हो, जो संहिता की धारा 155 (2) के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत दंडाधिकारी के आदेश के अधीन के सिवाय संहिता की धारा 156 (1) के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण को न्यायोचित ठहराते हुए संज्ञेय अपराध को प्रकट नहीं करते हैं।

(3) जहाँ प्राथमिकी अथवा परिवाद में किए गए अप्रतिवादित अभिकथन और इनके समर्थन में संग्रहित साक्ष्य किसी अपराध का किया जाना प्रकट नहीं करते हैं और अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहाँ प्राथमिकी में किए गए अभिकथन संज्ञेय अपराध गठित नहीं करते हैं बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध गठित करते हैं जिसमें दंडाधिकारी के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण की अनुमति नहीं दी जाती है जैसा संहिता की धारा 155 (2) के अधीन अनुध्यात किया गया है।

(5) जहाँ प्राथमिकी अथवा परिवाद में किए गए अभिकथन इतने बेतुके हैं और अंतर्निहित रूप से अनधिसंभाव्य हैं कि जिनके आधार पर कोई विवेकशील व्यक्ति इस न्यायोचित निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहाँ कार्यवाही के संस्थापन और जारी रखने को लेकर संहिता के प्रावधानों में से किसी में अथवा संबंधित अधिनियम (जिसके अधीन दांडिक कार्यवाही संस्थापित की गयी है) में अंत:स्थापित अभिव्यक्त विधिक वर्जना है और/अथवा जहाँ संहिता में अथवा संबंधित अधिनियम में व्यथित पक्ष के शिकायत के प्रभावकारी उपचार को प्रावधानित करता विनिर्दिष्ट प्रावधान है।

(7) जहाँ दांडिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से असद्भावपूर्वक आरंभ की गयी है और/अथवा जहाँ अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के अंतरस्थ हेतु के साथ और निजी एवं वैयक्तिक दुश्मनी के कारण उसको अपमानित करने की दृष्टि से कार्यवाही द्वेषपूर्वक संस्थापित की गयी है।

हम इस प्रभाव की सतर्कता की टिप्पणी भी करते हैं कि किसी दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग यदा-कदा और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी विरल से विरलतम मामले में; यह कि न्यायालय प्राथमिकी की अथवा परिवाद में किए गए अभिकथनों की विश्वसनीयता अथवा वास्तविकता अथवा अन्यथा के प्रति जाँच शुरू करने में न्यायोचित नहीं होगा और कि असाधारण अथवा अंतर्निहित शक्तियाँ न्यायालय को अपने सनक अथवा मर्जी के अनुसार कार्य करने के लिए कोई मनमानी अधिकारिता प्रदान नहीं करती हैं।''

6. राज्य विपक्षी पक्षकार की ओर से अन्य बातों के साथ साथ यह प्रतिवाद करते हुए प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है कि अन्वेषण के दौरान, यह पता लगाया जा सका था कि अधिकतर कार्य शारीरिक श्रम के बजाय मशीन के माध्यम से कराया गया था और इस संबंध में विशेष सचिव, आदिवासी कल्याण विभाग, झारखंड सरकार को संबंधित फाइल भेजने के लिए, क्योंकि सत्यापन के लिए यह आवश्यक था, पत्र भेजा गया था किंतु अन्वेषण अधिकारी को अपेक्षित फाइल कभी नहीं भेजा गया था और इसलिए, अन्वेषण लंबित था। राज्य-विपक्षी पक्षकार ने स्वीकार किया कि वर्तमान याची को विभागीय कार्यवाही में विमुक्त कर दिया गया था किंतु दांडिक कार्यवाही में उसके विरुद्ध अन्वेषण अभी भी लंबित था और **पी॰ एस॰ राज्य के मामले (ऊपर)** में अधिकथित सिद्धांत पर विश्वास किया गया है जिसमें यह संप्रेक्षित किया गया था कि दांडिक मामले में दोष स्थापित करने के लिए अपेक्षित प्रमाण का स्तर विभागीय कार्यवाहियों में दोष स्थापित करने के लिए अपेक्षित प्रमाण के स्तर की तुलना में कहीं अधिक था और इसलिए याची, जो कनीय अभियंता था, को उसके दांडिक दायित्व से विमुक्त नहीं किया जा सकता है।

7. मैं पाता हूँ कि राज्य-विपक्षी पक्षकार ने संप्रेक्षण पूरा नहीं किया है जिसे **पी॰ एस॰ राज्य के मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया है जिसमें प्रति शपथ पत्र में निर्दिष्ट संप्रेक्षण के अंश को आगे संप्रेक्षण के साथ पूरा किया गया था कि ''विभागीय कार्यवाहियों में एक दाण्डिक कार्यवाहियों में आरोप एक और वही हैं। उन्होंने विभागीय कार्यवाहियों में दिए गए निष्कर्षों और इसके अंतिम परिणाम

को विवादित नहीं किया था। इन आधारों पर, यदि हम आगे अग्रसर होते हैं, तब अपीलार्थी का मामला स्वीकार करने में कोई मुश्किल नहीं है। क्योंकि यदि आरोप, जो सदृश हैं, को विभागीय कार्यवाहियों में स्थापित नहीं किया जा सका था और मूल्यांककों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों में स्वीकृत विसंगतियों की दृष्टि में हमें आश्चर्य है कि दांडिक कार्यवाहियों में अपीलार्थी के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए आगे क्या है।''

8. मैं पाता हूँ कि राज्य-विपक्षी पक्षकार ने स्वीकार किया है कि तत्कालीन कनीय अभियंता याची को समस्त चारों आरोपों से विमुक्त कर दिया गया है जो उसकी विभागीय कार्यवाही के दौरान उसके विरुद्ध विरचित किए गए थे, जो प्राथमिकी में अभिकथित अपराध के प्रति कहीं अधिक प्रासंगिक थे। मैं पाता हूँ कि याची को झारखंड सरकार के सिंचाई विभाग में सहायक अभियंता के पद पर प्रोन्नत किया गया है और तद्द्वारा उसने लोक सेवक के उच्चतर पद को प्राप्त किया है। **पी॰ एस॰ राज्य के मामले (ऊपर)** पर विश्वास करते हुए और उसमें अधिकथित सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए, मैं पाता हूँ कि याची राजेन्द्र पांडे की दांडिक कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगी।

9. ऊपर चर्चा किए गए कारणों से, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और खूँटी पी॰ एस॰ केस सं॰ 83/2006, जी॰ आर॰ सं॰ 412/2006 के तत्सम से उद्भूत होने वाले याची राजेन्द्र पांडे की दांडिक कार्यवाही प्राथमिकी सहित अभिखंडित की जाती है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

कमल किस्टो प्रधान

बनाम

नेत्रो प्रधान एवं अन्य

WP(C) No. 3111 of 2009. Decided on 26th July, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXVI, नियम 9 सह-पठित धारा 151—प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति—आवेदन की अस्वीकृति—भूमि के सीमांकन को लेकर पक्षों के बीच विवाद है—वाद भूमि के सटीक सीमांकन को अभिनिश्चित करने के लिए प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति करना सदैव न्याय के हित में है—आक्षेपित आदेश अभिखंडित—अवर न्यायालय को सर्वेक्षण ज्ञाता प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति का निर्देश। (पैराएँ 3, 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.—Mr. Milan Kumar Dey, For the Petitioner; Mr. Indrajeet Sinha, For the Respondents.

आदेश

यह रिट आवेदन टाइटल वाद सं॰ 20 वर्ष 2008 में दिनांक 27.6.2009 के आदेश के विरूद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVI, नियम 9 सह-पाठित धारा 151 के अधीन याची के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है।

2. वादी/याची का मामला यह है कि उसने दिनांक 5.3.2004 के दो विक्रय विलेखों सं॰ 402 और 403 द्वारा अनुसूची A में वर्णित भूमि खरीदा था। वादी का आगे मामला यह है कि प्रतिवादीगण ने अनुसूची A भूमि के एक हिस्से का अधिक्रमण कर लिया है क्योंकि उनकी भूमि भी अनुसूची A भूमि के पार्श्व में अवस्थित है। तद्नुसार, वादी/याची ने अनुसूची A भूमि के पूर्वोक्त हिस्से से प्रतिवादीगण की बेदखली के लिए वाद दाखिल किया है। (जिसका विवरण वाद पत्र की अनुसूची B में दिया गया है।)

3. याची/वादी के विद्वान अधिवक्ता, श्री मिलन कुमार डे द्वारा निवेदन किया गया है कि पक्षों के बीच विवाद भूमि के सीमांकन को लेकर है, अतः यह न्याय के हित में है कि अनुसूची A भूमि के

अधिक्रमित हिस्से की सटीक स्थिति अभिनिश्चित करने के लिए प्लीडर कमिश्नर नियुक्त किया जाए। यह निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने उसका आवेदन मुख्यत: इसलिए अस्वीकार कर दिया है क्योंकि पक्षों की ओर से साक्ष्य बन्द कर दिया गया है। यह निवेदन किया गया है कि **एस॰ एल॰ पी॰ सं॰ 7510 वर्ष 2007 (हरियाणा वक्फ बोर्ड बनाम शांति स्वरूप एवं अन्य)** में सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकथित किया था कि यदि भूमि के सीमांकन के संबंध में पक्षों के बीच विवाद है, वाद भूमि के सटीक सीमांकन को अभिनिश्चित करने के लिए प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति करना सदैव न्याय के हित में है।

4. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री इंद्रजीत सिंह निवेदन करते हैं कि प्रति परीक्षण के दौरान कुछ तथ्य प्रतिवादीगण के पक्ष में आए थे और याची ने इससे बचने के लिए प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति करने के लिए आवेदन दाखिल किया। उक्त परिस्थिति के अधीन, इस विलंबित चरण पर, प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति करना न्याय के हित में नहीं है।

5. वर्तमान मामले के वाद पत्र और लिखित कथन, जिसे पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है, के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि पक्षों के बीच वास्तविक विवाद यह है कि क्या अनुसूची B भूमि अनुसूची A भूमि का अभिन्न अंग है। वादी द्वारा वाद पत्र में कहा गया है कि संपूर्ण अनुसूची A भूमि (अनुसूची B भूमि सहित) उसके द्वारा दो विक्रय विलेखों द्वारा खरीदी गयी थी और पूर्वोक्त खरीदी गयी जमीन में से प्रतिवादीगण ने भूमि अधिक्रमित किया जिसका विवरण अनुसूची B भूमि में दिया गया है। लिखित कथन के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि प्रतिवादीगण ने पैराग्राफ 14 में कथन किया है कि अनुसूची B भूमि की यथा तथ्य स्थिति स्पष्ट नहीं है। आगे कथन किया गया है कि यह नहीं बताया गया है कि क्या अनुसूची B भूमि अनुसूची A भूमि का अभिन्न अंग है। इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में, पूर्वोक्त निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित विधि के मुताबिक, वर्तमान मामले में, यह आवश्यक है कि वाद भूमि का यथातथ्य सीमांकन का पता लगाने के लिए और यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या वाद भूमि (अर्थात अनुसूची B संपति) अनुसूची A संपति का अंग है, प्लीडर कमिश्नर नियुक्त किया जाए।

6. तद्नुसार, मैं यह आवेदन अनुज्ञात करता हूँ और आक्षेपित आदेश अभिखंडित करता हूँ और अनुसूची A भूमि, जिसे वादी/याची द्वारा दो विक्रय विलेखों द्वारा खरीदा गया था, के सीमांकन के लिए और यह भी रिपोर्ट करने के लिए कि क्या अनुसूची B भूमि अनुसूची A भूमि का अंग है, सर्वेक्षण ज्ञाता प्लीडर कमिश्नर को नियुक्त करने के लिए अवर न्यायालय को निर्देश देता हूँ।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

विष्णु कुमार दास एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 5188 of 2004. Decided on 12th July, 2011.

बिहार राजकीयकृत प्राथमिक विद्यालय शिक्षकों की प्रोन्नति नियमावली, 1993—नियम 4 एवं 5—बी॰ एस॰ सी॰ प्रशिक्षित वेतनमान पर प्रोन्नति का दावा—याचीगण, जो लंबे समय से प्रोन्नति के अपने दावे के लिए प्रतिवाद कर रहे हैं, को उनको देय राशि से केवल इस बहाना

पर वंचित कर दिया गया कि कैबिनेट ने अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है—सरकार की ओर से निष्क्रियता की अनुमति प्राथमिक शिक्षकों को आर्थिक क्षति पहुँचाने की कीमत पर नहीं दी जा सकती है जो काफी पहले से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान में अपनी प्रोन्नति के हकदार हैं—राज्य सरकार को वास्तविक तिथि, जब उनके पक्ष में प्रोन्नति प्रोद्भूत हुई, के प्रभाव से प्रोन्नति आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.—M/s Jay Prakash Jha, S.P. Jha, A. Prakash, For the Petitioners; Mrs. Nehala Sharmin, For the Respondent-State.

आदेश

इस रिट याचिका में 41 याचीगण है जो बिहार राजकीयकृत प्राथमिक विद्यालय शिक्षकों की प्रोन्नति नियमावली, 1993 (इसमें इसके बाद 'नियमावली' के रूप में निर्दिष्ट) के नियम 4 और 5 के निबंधनानुसार बी॰ एस॰ सी॰ प्रशिक्षित वेतनमान में उनको प्रोन्नति प्रदान नहीं करने की राज्य सरकार की निष्क्रियता को चुनौती दे रहे हैं और उस तिथि से जब से यह शिक्षकों को प्रोद्भूत हुई पारिणामिक लाभों का दावा भी कर रहे हैं। प्रोन्नति का दावा दिनांक 16.9.2003 को अंतिम रूप दिए गए और प्रसारित किए गए ग्रेडेशन सूची के अनुरूप किया जा रहा है। याचीगण को बी॰एस॰सी॰ अर्हता रखने वाले सहायक शिक्षकों के रूप में नियुक्त किया गया था।

2. यह प्रतीत होता है कि जब याचीगण ने प्रोन्नति का दावा किया, राज्य सरकार ने इस आधार पर उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया कि उनकी आरंभिक नियुक्ति विधि की प्रक्रिया का समुचित अनुसरण किए बिना की गयी थी जिसका प्रतिवाद सर्वोच्च न्यायालय तक किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में लिया कि ये शिक्षकगण लगभग वर्ष 1981-82 से लंबे समय से शिक्षा दे रहे थे और इसलिए वे समस्त लाभों के हकदार हैं। तद्नुसार, सर्वोच्च न्यायालय का आदेश पारित किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद नियुक्ति के लिए आवेदनों को आमंत्रित किया गया था। वर्ष 1988 में विज्ञापन के अनुसरण में, सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 7.2.1991 के निर्णय के अनुरूप नियुक्ति की आरंभिक तिथि से लाभों के लिए याचीगण की हकदारी को उपलब्ध करवाया गया था। दोनों निर्णयों को प्रत्युत्तर शपथपत्र के परिशिष्ट-14 और परिशिष्ट-14A के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। द्वितीय विज्ञापन के अनुसरण में की गयी नियुक्ति और जारी नियुक्ति पत्रों ने याचीगण पर इन शर्तों को अधिरोपित किया था कि वर्ष 1988 में उनके चयन पर विचार किए जाने के पहले उन्हें अपना त्यागपत्र देना चाहिए। इस शर्त को भी सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 400 वर्ष 1996 के तहत पटना उच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी। रिट याचिका अनुज्ञात की गयी थी और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रत्यर्थीगण सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में नियुक्ति पाने के लिए सेवा से त्यागपत्र देने के लिए याचीगण को मजबूर नहीं कर सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया था कि याचीगण, जिन्हें पुनर्नियुक्ति दी गयी है, इन लाभों के हकदार होंगे जैसा उक्त आदेश में उल्लिखित किया गया है।

3. विद्वान अधिवक्ता का आगे प्रतिवाद यह है कि याचीगण को उनकी सेवा में बने रहने के दौरान प्रशिक्षण दिया गया था और प्रशिक्षण प्रमाणपत्र के संबंध में कोई विवाद नहीं है, अतः, उन्होंने वर्ष 1993 की नियमावली के अनुरूप प्रोन्नति की हकदारी का दावा किया। नियमावली स्पष्टतः प्रावधानित करती है कि ग्रेड-4 में प्रोन्नति उन प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए है जिन्होंने सेवा का 8 वर्ष पूरा कर दिया है और तत्पश्चात 8 वर्ष पूरा कर लेने पर उन्हें ऐसी प्रोन्नति से इनकार नहीं किया जा सकता है।

4. मैंने नियमावली का परिशीलन किया है और सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अनेक आदेशों, जो वर्तमान रिट याचिका में अभिलेख का हिस्सा हैं, का भी परिशीलन किया है।

5. राज्य के अधिवक्ता ने प्रति शपथ पत्र दाखिल किया है जिसके पैरा 25 में कथन किया गया है कि प्रथम अवसर उन स्नातक प्रशिक्षित शिक्षकों को दिया गया था जिन्होंने ग्रेड-2 में न्यूनतम सेवा का 12 वर्ष पूरा कर लिया है। उक्त पैराग्राफ का परिशीलन स्पष्टत: याचीगण के दावा से संबंधित नहीं है। ग्रेड-2 अथवा ग्रेड-3 में सेवा के लिए न तो उनका मामला है और न ही उनका दावा। प्रार्थना केवल ग्रेड-4 में प्रोन्नति के लिए है चूँकि याचीगण ने स्नातक शिक्षकों का प्रशिक्षण प्राप्त किया है और वे निर्विवादत: वर्ष 1988 से कार्यरत हैं और यदि सेवा समाप्ति और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पहले की उनकी कार्यावधि को जोड़ा जाता है, तो स्पष्टत: सेवावधि प्रोन्नति के लिए अपेक्षित आठ वर्षों से कहीं अधिक है।

6. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मेरा दृष्टिकोण यह है कि याचीगण, जो लंबे समय से अपनी प्रोन्नति के दावा के लिए प्रतिवाद कर रहे हैं, और जिन्हें केवल इस बहाने पर उनके देय से वंचित किया गया है कि कैबिनेट ने अब तक कोई निर्णय नहीं लिया है स्वीकार्य नहीं हो सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि प्राथमिक शिक्षकों जो काफी पहले से स्नातक प्रशिक्षित वेतनमान में अपनी प्रोन्नति के लिए हकदार थे को आर्थिक क्षति की कीमत पर सरकार की ओर से निष्क्रियता की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

7. उपर कथित की दृष्टि में, राज्य सरकार को आज के दिन से छह सप्ताह की अवधि के भीतर समुचित निर्णय लेने और सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशानुसार नियुक्ति की आरंभिक तिथि से उनकी सेवावधि की संगणना करते हुए उनके पक्ष में प्रोद्भूत प्रोन्नति की वास्तविक तिथि के प्रभाव से प्रोन्नति आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता हैं। पारिणामिक लाभों और उनके पारिश्रमिक की भी तद्नुसार संगणना की जाएगी और चार माह की अवधि के भीतर संवितरण किया जाएगा। आगे कोई विलंब नहीं करना होगा, अन्यथा सरकार विशेष व्यय की दायी होगी। चूँकि याचीगण अपना दावा पाए बिना एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय तक दौड़ रहे हैं, वर्तमान आर्थिक ढाँचे में उनको और पीड़ित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

8. मेरे ध्यान में यह भी लाया गया है कि 50 शिक्षकों की रिक्तियाँ बनी हुई हैं और इसलिए स्पष्ट है कि राज्य को कोई समस्या नहीं होगी और पद सृजित करने अथवा मंजूर करने के लिए किसी अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता नहीं है।

9. आदेश राज्य के अधिवक्ता की उपस्थिति में पारित किया गया है। उन्होंने वचन बंध दिया है कि वह सरकार को सूचित करेंगी। इस आदेश की प्रति राज्य के अधिवक्ता को बिना किसी खर्च के दी जाए। याचीगण भी इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ सरकार के पास जाएँगे।

माननीय आर॰ के मेराठिया एवं पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्तिगण

जोहान ओराँव

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 954 of 2003. Decided on 13th July, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 2 वर्ष 1999 में सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 3.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 5.12.2002 के दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—हत्या—कुआँ से मृत शरीर की बरामदगी—आजीवन कारावास–केवल इस आधार पर दोषसिद्धि बनायी रखी नहीं जा सकती है कि अपीलार्थी को मृतक के साथ अंतिम बार देखा गया था—मृत्यु का कारण डूबने से दम घुटना था—यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि मृतक के शरीर पर पाया गया खरोंच मृत्यु का कारण था—साक्ष्य के तात्विक पहलुओं पर विरोधाभास है—परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है—संदेह का लाभ देते हुए दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त—अपील अनुज्ञात।

(पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Bhanu Kumar, *Amicus Curiae,* For the Appellant; Mr. Ravi Prakash, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 2 वर्ष 1999 में सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 3.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 5.12.2002 के दंडादेश के आदेश से उद्भूत होती है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया और आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन अपराध के लिए भी उसे दोषसिद्ध किया गया और छह माह का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया यद्यपि दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सुनीता कुमारी (मृतका) दिनांक 13.9.1998 को अपने परिवार के सदस्यों और मित्रों के साथ 'जीतिया मेला' गयी थी किंतु अपने घर वापस नहीं आयी थी। अगले दिन, सूचक को पता चला कि उसे अपीलार्थी के साथ जाते हुए देखा गया था और लगभग चार दिनों बाद अर्थात दिनांक 17.9.1998 को उसका मृत शरीर कुआँ से बरामद किया गया था। यह संदेह किया जाता है कि प्रेम प्रसंग के कारण अपीलार्थी ने उसकी हत्या कर दी और उसे कुआँ में फेंक दिया।

3. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान न्यायमित्र, श्री भानु कमार ने निवेदन किया कि परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है और केवल इस तथ्य के आधार पर कि अपीलार्थी को मृतक के साथ अंतिम बार जाते हुए देखा गया था, दोषसिद्धि को मान्य ठहराना सुरक्षित नहीं होगा। उन्होंने आगे कथन किया कि साक्ष्यों में तात्विक बिंदुओं पर अनेक विरोधाभास हैं। इस मामले में अन्वेषण पदाधिकारी का परीक्षण तक नहीं किया गया है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के ऐसे मामलों में, बेहतर होगा, यदि अभियोजन ने हेतु सिद्ध किया होता। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि डॉक्टर ने पाया है कि मृत्यु का कारण डूबने से दम घुटना था और उसके पेट और फेफड़ों में पानी पाया गया था और कि कुआँ में गिरने के कारण दो खरोंच संभव थे। अंत में निवेदन किया गया है कि किसी भी स्थिति में, अपीलार्थी अब तक 12 वर्षों से अधिक के लिए जेल में पहले से ही कैद है।

4. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री रवि प्रकाश ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. हम अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान न्यायमित्र, श्री भानु कुमार के निवेदनों में बल पाते हैं कि केवल इस आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि पोषित नहीं की जा सकती है कि दिनांक 13.9.1998 को अपीलार्थी को मृतका के साथ अंतिम बार देखा गया था और लगभग चार दिनों बाद

अर्थात दिनांक 17.9.1998 को उसे कुआँ में मृत पाया गया था। मृत्यु का कारण डूबने से दम घुटना था। डॉक्टर ने मृतका के पेट और फेफड़ों में पानी पाया है। यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि मृतका के शरीर पर पाए गए दो खरोंच मृत्यु का कारण थे। साक्ष्य में तात्विक पहलुओं पर विरोधाभास है।

6. इन परिस्थितियों में, हम अपीलार्थी को संदेह का लाभ प्रदान करने के इच्छुक हैं। अपील अनुज्ञात की जाती है। तद्नुसार, एतद्द्वारा दिनांक 3.12.2002 का दोषसिद्ध को निर्णय और दिनांक 5.12.2002 को दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी जेल में है। उसे तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है। यदि किसी अन्य मामले के संबंध में उसकी आवश्यकता नहीं है।

माननीय प्रकाश तातिया, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं जया रॉय, न्यायमूर्ति

प्रभाश सिंह उर्फ नुनु सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (H.B.) Cr. No. 44 of 2011. Decided on 20th June, 2011.

बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981—धारा 12—निरोध—लोक व्यवस्था के प्रति खतरे की आशंका—याची के विरूद्ध अभिकथन गंभीर अपराधों के संबंध में हैं जिनका प्रत्यक्ष संबंध निरोध करते प्राधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष के साथ है—यदि बंदी को बाहर बने रहने की अनुमति दी जाती है, तब यह लोक व्यवस्था को प्रभावित करेगा और गवाहों का हौसला तोड़ेगा—निरोध आदेश में अवैधता नहीं है—याचिका खारिज। (पैराएँ 13 से 15)

निर्णयज विधि.—(1988) 2 SCC 527—Relied on; AIR 1974 SC 156; 1989 PLJR 492—Distinguished.

अधिवक्तागण.—Mr. P.P.N. Roy, For the Petitioner; A.P.P., For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने आरंभ में यह रिट याचिका उप कमिश्नर-सह-जिला दंडाधिकारी, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर, द्वारा पारित दिनांक 12.1.2011 के आदेश, परिशिष्ट 1 को चुनौती देने के लिए दाखिल किया है जिसके द्वारा जिला दंडाधिकारी ने मत दिया था कि उसको लोक व्यवस्था के प्रतिकूल तरीके से कार्य करने से रोकने के लिए रिट याची का निरोध आवश्यक है और इस आशंका का कारण यह है कि बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981 की धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करके याची को तुरन्त गिरफ्तार किए बिना असामाजिक तत्वों की गतिविधियों को नहीं रोका जा सकता है।

3. यह निवेदन किया गया है कि इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान राज्य सरकार ने उपकमिश्नर-सह-जिला दंडाधिकारी, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर, द्वारा पारित दिनांक 12.1.2011 के आदेश को अनुमोदित करते हुए दिनांक 8.3.2011 को आदेश पारित किया था।

4. याची ने इस अभिवचन के साथ कि दिनांक 8.3.2011 के आदेश द्वारा राज्य सरकार ने उक्त

प्राधिकारी द्वारा पारित अवैध आदेश को अनुमोदित किया है, आई॰ ए॰ सं॰ 882 वर्ष 2011 दाखिल करके उक्त आदेश को चुनौती दिया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर विश्वास किया है कि जमानत प्रदान करने वाले न्यायालय के अपेक्षित आदेश को परिवंचित करने के प्रयोजन से निरोध आदेश पारित नहीं किया जा सकता है और निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को असामाजिक और प्रतिकूल गतिविधियों में लिप्त होने से रोकना है और यह उसको दांडिक मामले में सुकर बनाने के लिए नहीं हो सकता है और न ही यह दांडिक कदम हो सकता है।

6. यह निवेदन किया गया है कि याची को चार दांडिक मामलों में लिप्त हुआ अभिकथित किया गया है जिसमें से तीन दांडिक मामलों में उसे पहले ही जमानत प्रदान कर दिया गया था और चौथे में मूल निरोध प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किए जाने के बाद याची को जमानत दे दिया गया था और आक्षेपित आदेश में स्वयं मूल प्राधिकारी द्वारा स्पष्टत: उल्लिखित किया गया था कि यदि याची को जमानत पर निर्मुक्त किया जाएगा, तब यह अभियोजन के प्रतिकूल हो सकता है और तद्द्वारा याची के विरूद्ध अभियोजन को सुकर बनाने के लिए आदेश पारित किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि दिनांक 12.1.2011 के आक्षेपित आदेश में दिए गए कारण पर्याप्त नहीं हैं और यदि किसी एक आधार को भी गलत पाया जाता है, संपूर्ण आदेश निष्प्रभावी हो जाता है।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त परिवाद के समर्थन में **AIR 1974 SC 156** में प्रकाशित **कुसो साह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले पर विश्वास किया है और 1989 PLJR 492 में प्रकाशित **संतोष कुमार पाठक उर्फ संतोष कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में दिए गए पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है।

8. हमने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में और बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981 में बनाए गए प्रावधानों के प्रकाश में याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है।

9. बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981, जिसे झारखंड सरकार द्वारा अपनाया गया है, राज्य सरकार को धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन किसी व्यक्ति को इस आधार पर निरूद्ध करने के लिए सशक्त करता है कि किसी व्यक्ति को लोक व्यवस्था बनाए रखने के प्रति प्रतिकूल तरीके से कार्य करने से रोका जा सके और इस आशंका का कारण यह है कि ऐसे व्यक्ति को तुरन्त गिरफ्तार करने के सिवाय अन्य प्रकार से असामाजिक तत्वों की गतिविधियों को रोका नहीं जा सकता है।

10. संपूर्ण प्रक्रिया वर्ष 1981 के अधिनियम में प्रावधानित की गयी है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बाल चंद बंसल बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1988)2 SCC 527** के मामले में विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम, 1974 की धारा 3(1) के प्रावधानों के अधीन मामले पर विचार करते हुए और बंदी के अभिवचन को खारिज करते हुए संप्रेक्षित किया कि अपेक्षित जमानत आदेश को परिवंचित करने के प्रयोजन से आदेश पारित नहीं किया जा सकता था और निरोध का उद्देश्य विदेशी मुद्रा संसाधन के संरक्षण के प्रतिकूल गतिविधियों में लिप्त होने से बंदी को रोकना होगा और न कि किसी दांडिक मामले में उसके विचारण को सुकर बनाने और न ही दंडात्मक कदम के रूप में होगा। **बाल चंद बंसल (उपर)** का मामला विदेशी मुद्रा के उल्लंघन से संबंधित मामला था और यदि हम मामले

के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में दिए गए कारणों का परीक्षण करते हैं, तब हमारा दृढ़ मत है कि वर्तमान मामले में तीन मामलों में याची को जमानत दिया गया था और चौथे मामले में अभी तक जमानत नहीं दिया गया था किंतु अंततः इसे प्रदान किया गया था। किसी दांडिक मामले में जमानत प्रदान किया जाना यह अभिनिर्धारित करने का आधार नहीं हो सकता है कि समस्त मामलों में केवल जमानत की परिवंचना के लिए और प्रस्तावित बंदी अथवा बंदी के विरूद्ध दांडिक विचारण को सुकर बनाने के लिए निरोध आदेश पारित किया गया है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। किसी मामले में जब प्रासंगिक तथ्यों को ध्यान में लेने के बाद और बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981 की धारा 12 की उपधारा (1) के अनुकूल निष्कर्ष निकालने के बाद संबंधित प्राधिकारी द्वारा संतुष्टि दर्ज की जाती है और तत्पश्चात यदि यह संप्रेक्षित किया जाता है कि उक्त के अतिरिक्त बंदी द्वारा गवाहों को प्रभावित करने की संभावना हो सकती है, तब प्राधिकारी की संतुष्टि के अध्यधीन उस आशंका के स्वाभाविक परिणाम दूषित नहीं हो सकते हैं।

11. अतः, वर्तमान मामले के तथ्यों ने याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को स्पष्टतः सुभिन्न किया है। यह भी प्रासंगिक है कि **बाल चंद बंसल (उपर)** के मामले में निरोध आदेश को दी गयी चुनौती को उच्च न्यायालय की एकल पीठ और खंडपीठ और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

12. कुसो साह (उपर) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि मामले के तथ्यों का लोक व्यवस्था के प्रति किसी प्रभाव को देखना हम असंभव पाते हैं और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तथ्यों, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष थे, के आधार पर मामले पर विचार करते हुए विधि एवं व्यवस्था/राज्य की सुरक्षा की अवधारणा पर विस्तारपूर्वक विचार किया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों पर भी विचार किया था और इस निष्कर्ष पर आया था कि निरोध आदेश याची को लोक व्यवस्था बनाए रखने के प्रति प्रतिकूल तरीके से कार्य करने से रोकने के लिए पारित किया गया है और पाया कि निरोध प्राधिकारी द्वारा उल्लिखित तीन आधारों में से दो अप्रासंगिक है, अतः संपूर्ण निरोध आदेश अवैध है।

13. यहाँ वर्तमान मामले में, यदि हम निरोध प्राधिकारी द्वारा दिए गए कारणों का परिशीलन करते हैं, यह स्पष्टतः प्रासंगिक है कि उन समस्त मामलों में याची के विरूद्ध अभिकथन गंभीर अपराधों से संबंधित थे और निश्चय ही निरोध प्राधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष के साथ उनका प्रत्यक्ष संबंध था जिसके द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि बंदी को कारा के बाहर बने रहने की अनुमति दी जाती है, तब यह निश्चय ही लोक व्यवस्था और शांति को प्रभावित करेगा और आपराधिक गतिविधियों में वृद्धि होगी और ऐसा संप्रेक्षित करते हुए केवल यह संप्रेक्षित किया गया है कि याची की निर्मुक्ति का परिणाम दांडिक मामलों में गवाहों का मनोबल गिराने में हो सकता है।

14. अतः, यदि मामले के तथ्यों के आलोक में उपर निर्दिष्ट निर्णयों का परीक्षण किया जाता है, हमारा दृढ़ मत है कि निरोध प्राधिकारी द्वारा और राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश में अवैधता नहीं है।

15. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम इस रिट याचिका में कोई गुणागण नहीं पाते हैं और इसे खारिज किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्तिगण

पोन्डे हेम्ब्रम

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 471 of 2002. Decided on 21st June, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 84 वर्ष 1996, सोनुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 22 वर्ष 1995, जी॰ आर॰ केस सं॰ 365 वर्ष 1955 के तत्सम, में श्री बी॰ एन॰ पांडे, सत्र न्यायाधीश, सिंहभूम (प॰), चाइबासा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 29.7.2002 और दिनांक 30.7.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—जादूटोना करने के कारण महिला की हत्या—प्राथमिकी दर्ज करने में विलम्ब इस कहानी को संपुष्ट करने वाला कोई गवाह नहीं है कि मृतका को अंतिम बार अपीलार्थी के घर में देखा गया था—संस्वीकृति के संबंध में विरोधाभासी बयान हैं—मृत शरीर की शिनाख्त सिद्ध नहीं की गयी थी—अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया गया—दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त। (पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.—Mr. Indrajit Sinha, For the Appellant; Mr. T.N. Verma, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील सत्र विचारण सं॰ 84 वर्ष 1996, सोनूआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 22 वर्ष 1995, जी॰ आर॰ केस सं॰ 365 वर्ष 1995 के तत्सम, में अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आजीवन कठोर कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन दो वर्षों का कठोर कारावास का दंडादेश देते हुए श्री बी॰ एन॰ पांडे, सत्र न्यायाधीश, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम के क्रमशः दिनांक 29.7.2002 और दिनांक 30.7.2002 को दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है। दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला निम्नवत है :–

मोरगा हेमब्रम ने दिनांक 19.11.1995 को प्रातः लगभग 6 बजे इस प्रभाव का फर्दबयान दर्ज करवाया कि:–

उसकी पत्नी शांति कुई (मृतका) प्रतिफल के लिए अनेक घरों में दाई और बच्चा जनवाने वाली का काम किया करती थी। तीन सप्ताह पहले अपीलार्थी की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया था। तत्पश्चात तीन दिन बाद उसकी पत्नी के स्तनों में पीब हो गया जिसका उपचार देशी दवा के इस्तेमाल से नहीं किया जा सका था। तब किसी ओझा ने अपीलार्थी को कहा कि ऐसा पीब शांति कुई के जादू-टोना के कारण हुआ है। इस पर अपीलार्थी ने शांति कुई को फटकारा और धमकाया। कुछ समय बाद, उसने शांति कुई और उसके पति मोगरा हेमब्रम (सूचक) को अपने घर छठी समारोह के लिए निमंत्रित किया। सूचक खाना खाने और हड़िया पीने के बाद लगभग लौटने वाला ही था, उसने शांति कुई को भी साथ चलने के लिए कहा। इस पर अपीलार्थी ने कहा कि वह खाना खाने के बाद जाएगी। सूचक लौट आया और सो गया क्योंकि वह नशे में था। अगले दिन जब उसने शांति कुई को अपने घर नहीं पाया, उसने अपीलार्थी से पूछा जिस पर उसे बताया गया था कि वह रात में ही लौट गयी थी। तत्पश्चात वह शांति कुई को खोजने लगा। मनकी (गाँव का मुखिया) उपलब्ध नहीं था। जब दिनांक 18.11.1995 को मनकी आया, सूचक ने उसे संपूर्ण घटना बताया। अपीलार्थी को गाँव की बैठक में बुलाया गया था जिसमें उसने संस्वीकार किया

कि उसने शांति कुई की हत्या कर दी थी और उसके मृत शरीर को डैम में फेंक दिया था क्योंकि उसने उसकी पत्नी पर जादू-टोना किया था। अभियोजन मामले के अनुसार, ऐसी संस्वीकृति पर शांति कुई का बाल सरना स्थल से बरामद किया गया था और उसका कपड़ा अपीलार्थी के घर के पिछवाड़े से बरामद किया गया था और डैम से शांति कुई का मृत शरीर बरामद किया गया था।

3. आ॰ सा॰ 1 रामेश्वर गोप एक ग्रामीण है और अ॰सा॰ 2 लालचंद हेमब्रम गाँव का मनकी है। उन दोनों ने गाँव की बैठक के समक्ष और पुलिस के समक्ष भी अपीलार्थी की संस्वीकृति के संबंध में और ऐसी संस्वीकृति पर शांति कुई के वस्त्र और मृत शरीर की बरामदगी के संबंध में अभियोजन मामले का समर्थन किया है।

4. अ॰ सा॰ 3 डॉक्टर है जिन्होंने शव परीक्षण संचालित किया था। अ॰ सा॰ 4, 5, 6 एवं 7 गाँव वाले हैं जिन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। अ॰सा॰ 8 अन्वेषण अधिकारी है।

5. श्री इंद्रजीत सिन्हा, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अनेक आधारों पर दोषसिद्धि का विरोध किया। उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी संदेह के लाभ का हकदार है। उन्होंने निवेदन किया है कि अपीलार्थी अब तक 16 वर्षों से जेल में है।

6. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री टी॰एन॰ वर्मा ने दोषसिद्धि और दंडादेश का समर्थन किया।

7. हमारे मत में, अपीलार्थी निम्नलिखित कारणों से संदेह के लाभ का हकदार है:–

प्रथमत:, अभियोजन मामला कि शांति कुई दिनांक 11.11.1995 को अपीलार्थी के घर गयी थी और वहाँ उसे अंतिम बार देखा गया था, सूचक जिसकी मृत्यु विचारण के दौरान हो गयी थी और उसका परीक्षण नहीं किया जा सका था, के सिवाय किसी अन्य सामग्री द्वारा समर्थित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह प्रतीत होता है कि दिनांक 11.11.1995 को अपीलार्थी के घर में छठी समारोह था। स्वाभाविकत:, सूचक और मृतका के अतिरिक्त वहाँ अन्य गाँववाले भी होंगे किंतु इस कहानी कि मृतका को अंतिम बार अपीलार्थी के घर में देखा गया था, को संपुष्ट करने के लिए किसी का भी परीक्षण नहीं किया गया था।

द्वितीयत:, यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि सूचक ने किसी गाँव वाले को अपनी पत्नी के बारे में बताया था कि वह अपीलार्थी के घर से उसके लौटने के बाद दिनांक 11.11.1995 की रात्रि में वापस नहीं लौटी थी और वह गायब थी। प्राथमिकी दर्ज करने में हुए विलंब के संबंध में स्पष्टीकरण यह है कि सूचक ने गाँव के मनकी (अ॰ सा॰ 2) जो गाँव से बाहर गया था, की प्रतीक्षा कर रहा था और केवल तब जब वह दिनांक 18.11.1995 को लौटा, उसने संपूर्ण घटना के बारे में बताया था। किंतु सूचक का स्वभाविक आचरण अपनी पत्नी के गायब होने के बारे में अन्य गाँववालों को बताना होता किंतु अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसने दिनांक 12.11.1995 से लगभग एक सप्ताह अर्थात दिनांक 18.11.1995, जब उसने अभिकथित रूप से बताया कि उसकी पत्नी दिनांक 18.11.1995 से गायब थी, तक अपनी पत्नी के गायब होने के बारे में किसी को नहीं बताया था।

तृतीयत:, संस्वीकृति के संबंध में विरोधाभासी साक्ष्य है। एक ओर अ॰ सा॰ 1 और 2 ने अभिकथित संस्वीकृति का समर्थन किया है जबकि अ॰ सा॰ 4 और 6 ने इनकार किया है कि ऐसी कोई संस्वीकृति की गयी थी।

चतुर्थत:, मृत शरीर के पहचान को भी सिद्ध नहीं किया गया है क्योंकि शरीर का उपरी भाग विघटित/तरल रूप में था और मस्तक गायब था।

8. परिणामस्वरूप, अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाता है। उसकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त किया जाता है और उसे तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी जरूरत नही है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

शिव राम लोहरा

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (S.J.) No. 102 of 2002 (R). Decided on 15th December, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 307—हत्या का प्रयास—दोषसिद्धि—विचारण न्यायालय ने अन्य समस्त सह-अभियुक्तगण को दोषमुक्त किया किंतु अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया—अभियोजन द्वारा किसी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया था—ऐसे गवाहों, जिन्होंने एक-दूसरे के प्रति विरोधाभासी बयान दिया है और जिनके बीच दुश्मनी है, के साक्ष्य के आधार पर किसी व्यक्ति को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है—अभियोजन अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा—अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 12)

अधिवक्तागण.—Mr. S. N. Rajgarhia, For the Appellants; Mr. T. N. Verma, For the Opp. Party.

आदेश

अपीलार्थी ने सत्र विचारण सं॰ 475 वर्ष 1996 में श्री बी॰ जेड॰ अंसारी, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 28.2.2002 के उस निर्णय के विरूद्ध वर्तमान अपील दाखिल किया है जिसके द्वारा उन्होंने अपीलार्थी, अर्थात, शिव राम लोहरा को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया है और उसको सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला, जैसा भांद्रा पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी को संबोधित लिखित रिपोर्ट में कहा गया हैं, यह है कि दिनांक 14.6.1995 को प्रातः लगभग 6 बजे सूचक का पुत्र और पौत्र, अर्थात, जलेश्वर लोहरा और कमल लोहरा, अपने घर के सामने मिट्टी की दीवार का निर्माण कर रहे थे। इस बीच, उनके गाँव के मंगरा लोहरा, बंधु लोहरा, शिव राम लोहरा, बिशराम लोहरा और राज कुमार लोहरा आए और उनको गंदी गालियाँ देने लगे। तत्पश्चात, मंगरा लोहरा और बंधु लोहरा ने उसके पुत्र जलेश्वर लोहरा को पकड़ लिया और बिशराम लोहरा और राज कुमार लोहरा ने उसके पुत्र को मुक्का-थप्पड़ मारा। तत्पश्चात, बिशराम लोहरा ने बलुआ से उसके पुत्र की गर्दन पर वार किया जिससे उसका पुत्र घायल हो गया। इस बीच, जब उसका पोता अपने पिता को बचाने आया, बिश राम लोहरा ने बलुआ से उस पर प्रहार किया जिससे उसने अपने बाएँ हाथ पर उपहति प्राप्त किया। इस पर, अनेक गाँववाले वहाँ आए और उक्त लड़ाई पर आपत्ति की। उसने लिखित रिपोर्ट में आगे कथन किया है कि प्रहार का कारण भूमि विवाद था और उसने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त और अन्य व्यक्ति उसके पुत्र की हत्या करने आए थे। उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पाँच व्यक्तियों अर्थात मंगरा लोहरा, बंधु लोहरा, बिशराम लोहरा, राज कुमार लोहरा और शिवराम लोहरा के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147, 148, 149, 323, 324 एवं 307 के अधीन मामला दर्ज किया गया था।

3. अन्वेषण के बाद, पुलिस ने पूर्वोक्त धाराओं के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया और तत्पश्चात आरोप विरचित किया गया था और विचारण के लिए मामला अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लोहरदग्गा के न्यायालय को अंतरित किया गया था।

4. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए नौ गवाहों का परीक्षण किया है, जिनमें से अ॰ सा॰ 1 और 8 दो घायल व्यक्ति अर्थात जलेश्वर लोहरा और कमल लोहरा (दोनों पिता-पुत्र) हैं; अ॰ सा॰ 2 अकबर अंसारी अनुश्रुत गवाह है; अ॰ सा॰ 3 एस॰ के॰ बसारत को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। अ॰ सा॰ 4 विश्वनाथ लोहरा अनुश्रुत किंतु स्वतंत्र गवाह है। अ॰ सा॰ 5 सोमरा लोहरा मामले का सूचक है। अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ बी॰ के पांडे है जिन्होंने घायल व्यक्तियों अर्थात जलेश्वर लोहरा और कमल लोहरा का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 7 और 9 औपचारिक गवाह हैं। अ॰ सा॰ 7 ने लिखित फर्दबयान, जिसे प्रदर्श-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया है, पर एस॰ आई॰ हरि शंकर सिंह के पृष्ठांकन को सिद्ध किया है। अ॰ सा॰ 9 ने औपचारिक प्राथमिकी को सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श-4 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। अभियुक्तगण का बचाव संपूर्ण रूप से इनकार और मामले में झूठा आलिप्त किए जाने का है क्योंकि स्वीकृत रूप से उनके बीच भूमि विवाद है। गवाहों के साक्ष्य पर विचार करने के बाद, विचारण न्यायालय ने समस्त अन्य सह-अपराधियों को उनके विरूद्ध विरचित पूर्वोक्त आरोपों से दोषमुक्त कर दिया है किंतु अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता को धारा 307 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया जैसा ऊपर कहा गया है। अत: केवल अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 5, अ॰ सा॰ 6 और अ॰ सा॰ 8 मुख्य गवाह हैं।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अ॰ सा॰ 1 और 8 घायल व्यक्ति हैं, अ॰ सा॰ 5 वह व्यक्ति है जिसने भांद्रा पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष अपना लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया और अ॰ सा॰ 5 ने स्वयं अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उसका पुत्र (अ॰ सा॰ 1) और पौत्र (अ॰सा॰ 8) कागज पर उसका हस्ताक्षर लेकर पुलिस थाना गए और तत्पश्चात वह पुलिस थाना पहुँचा और उसने अपने साक्ष्य में आगे कथन किया है कि वह नहीं जानता है कि कागज पर क्या लिखा है जिस पर उसने अपना हस्ताक्षर किया है और जिसे उसके पुत्र द्वारा पुलिस थाना ले जाया गया था। उसने अपने साक्ष्य में आगे कथन किया है कि वह नहीं जानता है किसने उसकी ओर से उक्त लिखित फर्दबयान लिखा था।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि ये सारे बयान स्पष्टत: सिद्ध करते हैं कि व्यक्ति, जिसने इस मामले में सूचक के रूप में सूचना दर्ज किया है, लिखित फर्दबयान का विषयवस्तु भी नहीं जानता है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि उसके पुत्र और पौत्र (अर्थात अ॰ सा॰ 1 और 8) घायल थे, फिर भी वे पुलिस थाना गए थे। अत: पुलिस थाना में प्राथमिकी दर्ज करने से उनको निर्बंधित करने वाली परिस्थिति क्या थी जब वे पहले पुलिस थाना पहुँचे थे। नि:संदेह, यह अभियोजन मामला पर संदेह उत्पन्न करता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे इंगित किया है कि अ॰ सा॰ 8, जो घायल व्यक्ति है और जिसने घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया, ने अपने साक्ष्य में स्पष्टत: कथन किया कि प्रात: लगभग 8.30 बजे 10-12 गाँव वाले उसके घर आए और आधे घंटे तक बैठक (पंचायती) की गयी थी किंतु मामले का समाधान नहीं हो सका था। उसने आगे कथन किया है कि उसका और उसके पिता का इलाज डेढ़ माह तक सदर अस्पताल में किया गया था किंतु उसने अपने बयान के समर्थन में उक्त अस्पताल का कोई कागज या प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया है।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री एस॰ एन॰ राजगढ़िया ने इंगित किया है कि उपहति रिपोर्ट, जिसे प्रदर्श-2/1 बनाया गया है, स्पष्टत: दर्शाता है कि डॉक्टर के हस्ताक्षर और तिथि में कुछ छल साधन

किया गया है और उन्होंने आगे कथन किया है कि डॉक्टर ने उस तिथि और समय जब उसने इन दोनों घायलों का परीक्षण किया है, के संबंध में कथन नहीं किया है। यह भी इंगित किया गया है कि यद्यपि डॉक्टर ने वर्णित किया है कि उपहति सं॰ 1 तेज धार वाले हथियार द्वारा गर्दन के दाएं भाग पर 6"x2"x1" अकार वाली है किंतु उपहति की प्रकृति सामान्य है किंतु उपहति का आकार देखते हुए, घायल के लिए पुलिस थाना जाना और तत्पश्चात अस्पताल आना और घटना के बारे में बताना संभव नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने प्रतिवाद किया है कि डॉक्टर ने कथन नहीं किया है कि इन दोनों घायलों का इलाज डेढ़ माह तक सदर अस्पताल में किया गया था। यदि डॉक्टर के अनुसार उपहति सरल प्रकृति की थी तब घायलों द्वारा दिया गया साक्ष्य कि डेढ़ माह तक उनका इलाज किया गया था, बिलकुल झूठा और मनगढ़ंत है। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि अभियोजन मामले के अनुसार स्वीकृत रूप से 10-12 व्यक्ति उपस्थित थे किंत आश्चर्यजनक रूप से अभिकथित घटना के संबंध में साक्ष्य देने के लिए एक भी गवाह सामने नहीं आया है। उन्होंने प्रतिवाद किया है कि प्रदर्श 2/1 स्पष्टत: दर्शाता है कि डॉक्टर ने स्वीकार किया है कि उपहति रिपोर्ट एस॰ एल॰ लोहरदग्गा को भांद्रा पुलिस थाना में मामला दर्ज करने लिए संबोधित की गयी थी किंतु डॉक्टर ने भी अपने साक्ष्य में कथन नहीं किया है कि घायल व्यक्ति कैसे उसके पास आए और किसने इन दोनों घायल व्यक्तियों को परीक्षण के लिए उनके पास भेजा था।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे इंगित किया है कि यद्यपि अ॰सा॰ 5 ने कथन किया है कि अ॰ सा॰ 1 जलेश्वर लोहरा ने कागज पर उसका हस्ताक्षर लिया था और वह पहले पुलिस थाना गया था किंतु अ॰सा॰ 1 ने स्वयं अपने साक्ष्य मं कथन किया कि वह कोई मामला दर्ज करने पुलिस थाना नहीं गया है।

9. राज्य के विद्वान अधिवक्ता, श्री टी॰ एन॰ वर्मा ने निवेदन किया है कि गवाहों के साक्ष्य में लघु विरोधाभास हैं किंतु अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध किया है।

10. मैं पाती हूँ कि अभियोजन द्वारा एक भी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है। अभियोजन के अनुसार, अभिकथित घटना जून माह में प्रात: 6 बजे हुई थी और अनेक गाँव वाले घटना स्थल पर आए थे किंतु एक भी गवाह का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है। गवाहगण अर्थात अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 5, अ॰ सा॰ 6 और अ॰ सा॰ 8 हितबद्ध गवाह हैं और उन्हें विश्वसनीय होना चाहिए।

11. उपर चर्चा किए गए विरोधाभासों पर विचार करते हुए, किसी व्यक्ति को ऐसे गवाहों, जिन्होंने एक-दूसरे के प्रति विरोधाभासी बयान दिया है और जब स्वीकृत रूप से उनके बीच दुश्मनी है, के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है। समग्र रूप से विचार करने पर, मेरे मत में, अभियोजन अपीलार्थी के विरूद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में विफल रहा है।

12. अत: मैं एस॰ टी॰ सं॰ 475 वर्ष 1996 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लोहरदग्गा द्वारा दिनांक 28.2.2002 को पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त करती हूँ और अपीलार्थी को उसके विरूद्ध विरचित आरोप से अपीलार्थी को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त करती हूँ और उसे जमानत बंधपत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है।